तरुचिंतन

वर्ष 2010

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)

मैं भारत गुण–गौरव गाता

मैं भारत गुण–गौरव गाता !
श्रद्धा से उसके कण–कण को
उन्नत माथ नवाता।

प्रथम स्वप्न–सा आदि पुरातन,
नव आशाओं से नवीनतम,
प्राणाहुतियों से युग–युग की
चिर अजेय बलदाता!

आर्य शौर्य धृति, बौद्ध शांति द्युति,
यवन कला स्मिति, प्राच्य कर्म रति,
अमर अमित प्रतिभायुत भारत
चिर रहस्य, चिर ज्ञाता!

वह भविष्य का प्रेम–सूत है,
इतिहासों का मर्म पूत है,
अखिल राष्ट्र का श्रम, संयम, तपः
कर्मजयी, युग त्राता!

मैं भारत गुण–गौरव गाता।

–श्री शमशेर बहादुर सिंह

तरुचिंतन

वर्ष 2010

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

डॉ. गोविन्द सिंह रावत, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक
डॉ. रवीन्द्र कुमार, भा.व.से., उप महानिदेशक (विस्तार),भा.वा.अ.शि.प.
सम्पादक
श्री आर.पी. सिंह, भा.व.से., सहा. महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प.
सहायक सम्पादक
श्री रमाकान्त मिश्र, अनुसन्धान अधिकारी (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प.

प्रसंस्करण

श्री डी.एस. रौथाण, फोरमैन (मुद्रण) (मीडिया एवं प्रकाशन), भा.वा.अ.शि.प

आवरण

मुख आवरण – ता प्रोम मंदिर, कम्बोडिया – परिषद् मंदिर संरक्षण कार्य का संचालन कर रही है।
पृष्ठ आवरण – परिषद् में राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला

प्रकाशक

मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट
देहरादून – 248 006 (उत्तराखण्ड), भारत

संरक्षक की कलम से

डॉ. गोविन्द सिंह रावत
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

राजभाषा हिन्दी विश्व की कुछ ऐसी भाषाओं में सम्मिलित है जो कि अपनी एक समृद्ध गंगा–जमुनी परम्परा की वाहक हैं। यह संस्कृत जैसी पूर्ण वैज्ञानिक भाषा से आविर्भूत होकर अरबी, फारसी, अंग्रेजी जैसी विदेशी और उर्दू, बांग्ला, मराठी, तमिल जैसी भारतीय भाषाओं से मेल–मिलाप करती हुई अवधी और बृज के संयुक्त आधार पर प्रवहमान होते हुए आधुनिक युग के तेवरों से सर्वथा सम्पन्न है। इस भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर लेने की अभूतपूर्व अद्वितीय क्षमता है। यही कारण है कि यह तेजी से गतिशील है और हर वर्ग में अपना स्थान बनाने में सफल रही है।

भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुरुप भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् राजभाषा हिन्दी के चतुर्दिक प्रचार–प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परिषद् अपनी वार्षिक हिन्दी पत्रिका 'तरुचिंतन' का प्रकाशन करती है जिससे जहां एक ओर परिषद् के अधिकारियों, वैज्ञानिकों इत्यादि समस्त संवर्गों के कर्मियों की रचनात्मक प्रतिभा के राजभाषा में प्रस्फुटित होने का सुयोग बनता है वहीं वैज्ञानिक उपलब्धियों को सरल भाषा में सम्प्रेषित करने का यह एक समुचित माध्यम है। मुझे आशा है कि गतांक की भाँति यह अंक भी अपनी पठ्नीयता, ज्ञान संकुलता एवं आकर्षक साज–सज्जा के चलते परिषद् कर्मियों, उनके परिवारजनों एवं अन्य सभी के लिए ज्ञानवर्धन, मनोरंजन और प्रेरणा हेतु सार्थक होगा।

(डॉ. गोविन्द सिंह रावत)

प्रधान सम्पादक की कलम से

डॉ. रवीन्द्र कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

परिषद् राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए कटिबद्ध है और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निरंतर अनेक कार्यक्रमों का संचालन करती है। इसी क्रम में परिषद् की वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' का प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका अपने कलेवर और प्रस्तुतिकरण में अत्यंत सुरूचिपूर्ण और सार्थक है।

हमारा सदैव यह प्रयास रहता है कि आठों संस्थानों समेत परिषद् के समस्त कर्मियों को अपनी रचनाशीलता और कल्पनाशीलता को हिन्दी में प्रकट करने के लिए समुचित मंच प्रदान किया जाए। हमारा यह भी प्रयास रहता है कि राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु प्रयास करते हुए किसी विशिष्ट भाषाई शैली तथा तत्सम शब्दावली को प्रश्रय न देते हुए सरल और सम्प्रेषणीय भाषा तथा सहज और विषय वस्तु के अनुरुप शैली का अनुगमन किया जाए। इस प्रकार किसी भी पूर्वाग्रह से रहित होकर हमने सभी भाषाओं के शब्दों को उचित सम्मान देते हुए पत्रिका की भाषा सहज बोधगम्य रखी है। दूसरी ओर ऐसी किसी भी पत्रिका के प्रकाशन के साथ भाषा के परिष्कार और संस्कार की बात सदैव संपृक्त रहती है। अतः प्रयास रहता है कि भाषा के प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त अल्पप्रचलित शब्दों का भी समुचित मात्रा में सहज समावेश किया जाए जिससे भाषा की गहनता और विस्तार को व्यक्त किया जा सके।

प्रस्तुत अंक में अनेक उपयोगी वैज्ञानिक लेख, कई सार्थक मन को छू लेने वाली कहानियों/कविताओं के साथ राजभाषा के प्रचार–प्रसार पर भी एक खण्ड समर्पित किया गया है। मैं आशा करता हूँ कि यह अंक भी आपका भरपूर मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करेगा।

(डॉ. रवीन्द्र कुमार)

सम्पादक की कलम से

श्री राजपाल सिंह
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं प्रकाशन)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

परिषद् के विभिन्न संस्थान और अनुसन्धान केन्द्र देश के विभिन्न भौगोलिक और भाषाई क्षेत्रों में स्थित हैं। इन सभी संस्थानों और केन्द्रों पर राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए सभी वैज्ञानिक, अधिकारी और अन्य सभी कर्मचारी प्रतिबद्ध हैं। परिषद् की पत्रिका 'तरुचिंतन' इन सभी को एक साथ लेते हुए विविध छटाओं वाली एक रोचक पत्रिका है।

इस पत्रिका के द्वारा राजभाषा हिन्दी के विविध आयामों पर एक सार्थक और सम्प्रेषणीय प्रयास किया जा रहा है। इसमें हिन्दी और अहिन्दी दोनों ही भाषा–भाषी व्यक्तियों की रचनाएं सादर सम्मिलित की जाती हैं। इसमें न केवल परिषद् के कर्मी, अनुसंधान अध्येता वरन उनके परिवार के सदस्य भी अपनी रचनात्मक प्रतिभा का प्राकट्य करते हैं।

पत्रिका को पठ्नीय बनाने का हर सम्भव प्रयास किया गया है तथा साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि सामग्री के स्तर से कोई समझौता न हो। इस बात का पूरा प्रयास किया गया है कि पत्रिका में प्रकाशित सामग्री किसी व्यक्ति विशेष के विश्वास, आस्था, धर्म या भावनाओं को ठेस न पहुँचाए। पत्रिका का उद्देश्य राजभाषा का प्रचार–प्रसार, परिषद् कर्मियों एवं उनके परिवारों की रचनात्मक प्रतिभा का विकास और एक सुरुचिपूर्ण ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करना है।

इस अवसर पर मैं इस पत्रिका के प्रकाशन में पूर्ण सहयोग के लिए आप सभी का हार्दिक धन्यवाद करना चाहता हूँ तथा पत्रिका को और अधिक मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक बनाने हेतु सुझाव आमंत्रित करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि परिषद् कर्मी और उनके परिवार के सदस्य इसी प्रकार भविष्य में भी अपनी रचनाओं से पत्रिका को समृद्ध करते रहेंगे।

(राजपाल सिंह)

विषय सूची

क्र.सं	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		i
	प्रधान सम्पादक की कलम से		ii
	सम्पादक की कलम से		iii
	राजभाषा		
1	परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन	श्री राजपाल सिंह	1–2
2	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर में वर्ष 2009–2010 के दौरान राजभाषा प्रयोग की रिपोर्ट	डॉ. एस.सी. जोशी	3–4
3	उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 1 से 14 सितम्बर 2009 के दौरान आयोजित "हिन्दी पखवाड़ा" की रिपोर्ट	डॉ. असीम कुमार मण्डल	5
4	शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में सम्पन्न हुए 'हिंदी पखवाड़ा' (14–29 सितम्बर 2009) की रिपोर्ट	डॉ. टी. एस. राठौड़	6
5	हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान शिमला में राजभाषा कार्यान्वयन की रिपोर्ट	श्री मोहिन्द्र पाल	7–9
6	"पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण" विषय पर दो दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी	श्रीमती जयश्री आरडे चौहान	10
7	वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान में हिन्दी सप्ताह का आयोजन	श्री शंकर शर्मा	11–12
8	राजभाषा : व्यवहार्यता के परिप्रेक्ष्य में	श्री कैलाश चन्द गुप्ता	13–14
	वानिकी		
9	झारखण्ड में कृषि वानिकी की सम्भावनाएं	श्री एम.पी. सिंह	17–19
10	अन्तर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में वानिकी एवं भारतीय योगदान	श्री विजयराज सिंह रावत	20–22
11	भारत में उत्सर्जन तीव्रता में कटौती–वन व वन उत्पादों का योगदान	डॉ. राजीव पाण्डेय एवं श्री रघू रंजन राय	23–24
12	शीत मरुभूमि स्पीती उपत्यका (हिमाचल प्रदेश) की प्रमुख स्थानीय बहुउद्देशीय पादप जातियां	डॉ. आर.एस.रावत एवं डॉ. वनीत जिस्टु	25–28
13	वनों पर आश्रित मानव जाति	डॉ. सतेन्द्र देव शर्मा	29–30
14	घटते वन– घटती वर्षाः दून घाटी के लिए जल संकट की चेतावनी	डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी रावत	31–32
15	दक्षिण राजस्थान स्थित अरावली पर्वतमाला का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदानः एक अध्ययन	डॉ. प्रदीप चौधरी एवं श्री मनीष मेहरा	33
16	आंवला (*Emblica officinalis*) : नर्सरी निर्माण व रोपण	डॉ. ताराचन्द एवं श्री आलोक यादव	34–35
17	वानिकी विस्तार कार्यक्रमों में जनसहभागिता एवं सामुदायिक गतिशीलता	श्रीमती संगीता त्रिपाठी	36–39

क्र.सं	विषय	लेखक	पृष्ठ
18	हरड़ (हरीतकी): एक औषधीय वृक्ष	डॉ. ताराचन्द एवं श्री आलोक यादव	40–42
19	कृषि वानिकी के लिए उपयोगी प्रजाति : बर्मा ड्रेक (*मेलिया कम्पोसिटा*)–एक परिचय	डॉ. चरण सिंह, श्री अजय गुलाटी, एवं श्रीमती जयश्री आरडे.चौहान	43–45
20	औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि : *ओसिमम सेंक्टम*	डॉ. लोखोपूनी, श्री एम. जेड. सिंहसन एवं श्री एस.आर. बलौच	46–48
21	औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि : *ऐसेपैरेगस रेसीमोसस*	डॉ. लोखोपूनी, डॉ. ए.के.शर्मा एवं श्री एस.आर. बलौच	49–50
22	औषधीय पादपों में होने वाले रोग एवं उनका निवारण	डॉ लोखोपूनी, एवं डॉ एन.एस.के. हर्ष	51–53
23	औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि : *रॉवॉल्फिया सर्पेन्टाईना*	डॉ. लोखोपूनी एवं श्री एस.आर. बलौच	54–56
	विविधा		
24	मनुष्य पृथ्वी का अंश है....	श्री अनूप चौहान	59
25	ई.जर्नल कन्सोर्शिया : पुस्तकालय व सूचना केन्द्रों के लिए एक वरदान	श्रीमती अनुराधा भाटी	60–63
26	चूहे हैं मानव के दुश्मन	श्री संजय पौनीकर	64–65
27	जड़ीबूटियों की रानी–तुलसी	श्री अमीन उल्लाह खान	66–67
28	प्लास्टिक प्रदूषण से दूभर होता जीवन	श्रीमती रोशनी चौहान	68–69
29	यारसा गुम्बा के समुचित दोहन की आवश्यकता	श्री अमित पाण्डेय, डॉ. एन.एस.के. हर्ष एवं श्री वी.के. वार्ष्णेय	70
30	जिंको बाइलोबा का संरक्षण एक आवश्यकता	श्री सुरेश चन्द्र	71
31	खाद्यान्नों के हानिकारक कीट एवं नियंत्रण	डॉ. के.पी. सिंह	72–75
32	आयापान का औषधीय महत्व	श्री एस.आर. बलौच	76
33	केंचुआ खाद (जैविक खाद की तैयारी)	डॉ. पी. के. दास	77–78
34	समान नागरिक संहिता	श्री वी.के. धवन एवं श्रीमती अर्चना धवन	79–81
35	दन्त चिकित्सा में उपयोगी पेड़–पौधे	डॉ.(श्रीमती) माला राठौड़, श्री आर.के.मीणा एवं श्रीमती संगीता त्रिपाठी	82–83
36	गर्म शुष्क क्षेत्रों की लवण प्रभावित मृदाओं में माउण्ड संरचनाओं में नीम की संभाव्यता	डॉ. रंजना आर्या, श्री आर.आर. लोहरा एवं श्रीमती संगीता त्रिपाठी	84–86
37	कीटों का अद्भुत संसार	डॉ. मीता शर्मा	87–88
38	गैर परम्परागत नकदी फसलों की खेती	डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. डी. के. मिश्रा एवं श्री मनीष मेहरा	89–90
39	मानव और पर्यावरण	कुमारी नीलू विश्वकर्मा	91–93
40	ग्लोबल वार्मिंग – समस्या व समाधान	कुमारी शिल्पा एवं श्री दुष्यन्त कुमार	94

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
41	प्राकृतिक रंजक	डॉ. आभा रानी	95–99
42	वन अनुसन्धान संस्थान : फोटो फीचर	श्री तिलकराज कक्कड़	100–103
43	दीमक की अधिकता एवं वितरण को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक	श्री सचिन कुमार एवं श्री विवेक त्यागी	104–105
	लालित्य		
44	संवेदना	डॉ. रवीन्द्र कुमार	109
45	तनहाई	डॉ. रवीन्द्र कुमार	110
46	पर्यावरण ही जीवन	श्री छत्रपाल सिंह सैनी	111
47	वर्षा जल संरक्षण	कुमारी मोनिका त्यागी	112
48	तरूचिंतन	श्री प्रशांत शर्मा	113
49	एक गाँव	श्री प्रशांत शर्मा	113
50	पापा की बेटी	श्रीमती गीता वोहरा	114
51	प्यासे व्यापारी	श्री एस.एल.मीणा	115
52	धरती माता कहती है	श्री संजय पौनीकर	116
53	आतंकवाद	श्री प्रताप सिंह बिष्ट	117
54	पेड़ है जीवन का आधार	श्री जय प्रकाश दाधीच	118
55	हरा पेड़	श्रीमती अफशां ज़ैदी	119
56	गीत	श्रीमती अफशां ज़ैदी	119
57	पश्चाताप	श्रीमती अर्चना जोशी	120–123
58	एक मुलाकात	श्रीमती शिवानी शर्मा	124–125
59	जीवन एक कैनवास	श्रीमती शिवानी शर्मा	126–127
60	अधिकार	श्री रमाकान्त मिश्र एवं श्रीमती रेखा मिश्र	128–131

राजभाषा

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी,
गहि न जाय अस अद्‌भुत बानी।

परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन

श्री राजपाल सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून राजभाषा के प्रचार–प्रसार में निरंतर प्रयत्नशील है। इस दिशा में एक सार्थक प्रयास के रुप में परिषद् ने हिन्दी वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' एवं हिन्दी न्यूज लैटर 'वानिकी समाचार' का प्रकाशन प्रारंभ किया है।

परिषद् के राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में किए जा रहे प्रयासों के अंतर्गत दिनांक 14 से 16 सितम्बर 2009 तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया। इस दौरान विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। हिन्दी सप्ताह समारोह के अंतर्गत विभिन्न प्रतिस्पर्धायें जिनमें वनों का विनाश एवं जलवायु परिवर्तन विषय पर निबंध प्रतियोगिता, टिप्पण प्रतियोगिता एवं स्वरचित काव्यपाठ सम्मिलित हैं, आयोजित की गई। प्रतियोगिताओं में परिषद् कर्मियों ने अत्यंत उत्साह के साथ भाग लिया और इस प्रकार राजभाषा के प्रति अपनी निष्ठा का परिचय दिया।

सप्ताह भर चले इस आयोजन का समापन स्वरचित काव्यपाठ के साथ सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को डॉ. गोविन्द सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के करकमलों से पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान करने के साथ हुआ। इस अवसर पर महानिदेशक महोदय ने अपने विचार व्यक्त करते हुए सभी अधिकारियों एवं

डॉ. गोविन्द सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून प्रतिभागियों को प्रोत्साहित करते हुए

कर्मचारियों को राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने तथा अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने के लिए प्रोत्साहित किया।

राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में आ रही कठिनाइयों के निराकरण एवं राजभाषा के प्रयोग में अभिवृद्धि सुनिश्चित करने के उद्देश्य से एक राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन दिनांक 26 मार्च 2010 को परिषद् सभागार में किया गया। प्रशिक्षण कार्यशाला में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार के राजभाषा विभाग के निदेशक श्री सु. प्र. चौबे तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास) के सचिव और मुख्य आयकर आयुक्त

परिषद् में आयोजित स्वरचित काव्यपाठ का रसास्वादन करते परिषद् कर्मी

कार्यालय, देहरादून के सहायक निदेशक (राजभाषा) डॉ. मुनि राम सकलानी ने प्रशिक्षक और मार्गदर्शक के रुप में भाग लिया।

डॉ. रवीन्द्र कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार) राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला को संबोधित करते हुए

पूरे दिन चले कार्यक्रम का प्रारंभ प्रशिक्षकों के स्वागत एवं परिचय से हुआ। सहायक महानिदेशक (मी. व प्र.) श्री राज पाल सिंह ने आगंतुक प्रशिक्षकों का विधिवत स्वागत किया और उनका परिचय दिया। उन्होने डॉ. शरद सिंह नेगी, निदेशक वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून, श्री एम. एस. गर्ब्याल, उप महानिदेशक (प्रशासन), डॉ. रवीन्द्र कुमार उप महानिदेशक (विस्तार), श्री ओमकार सिंह, उप महानिदेशक (शिक्षा), श्री संदीप त्रिपाठी, निदेशक (अनुसन्धान) इत्यादि वरिष्ठ अधिकारियों का स्वागत करते हुए प्रशिक्षण कार्यशाला के आयोजन में उनके योगदान का उल्लेख किया।

कार्यशाला में बोलते हुए श्री सु. प्र. चौबे, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास की व्याख्या करते हुए राजभाषा के विकास और उसके संघ की राजभाषा बनने के बारे में प्रकाश डाला। उन्होने बताया कि जिन भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप को राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत प्रयोग करने की स्वीकृति दी गई है वे वस्तुतः इंडो–एरेबिक अंक कहे जाते है जो कि मूलतः भारतीय ही है। इससे पूर्व श्री मुनि राम सकलानी, सचिव, नराकास, देहरादून ने बोलते हुए राजभाषा के प्रचार–प्रसार एवं भारत में उसके अतीत और भविष्य पर सारगर्भित विचार व्यक्त किए। इस कार्यशाला में परिषद एवं वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून के 250 से अधिक अधिकारियों, वैज्ञानिकों, लिपिकीय संवर्ग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया।

श्री सु.प्र. चौबे, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार, कार्यशाला को संबोधित करते हुए

परिषद् द्वारा राजभाषा हिन्दी में काम–काज को सुगम बनाने हेतु एक नवीन सॉफ्टवेयर सारांश का परीक्षण चल रहा है। इस सॉफ्टवेयर की उपयोगिता का आकलन करने के लिए समय–समय पर प्रतिपुष्टि प्राप्त की जाती है तथा सॉफ्टवेयर के प्रयोग में आ रही कठिनाइयों के निराकरण हेतु आवश्यक कदम उठायें जाते है।

परिषद्, मुख्यालय एवं देश के विभिन्न प्रांतों में स्थित अपने संस्थानों में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग का सतत मूल्यांकन करती है एवं उनको इस दिशा में समुचित मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसी दिशा में दिनांक 12 मार्च 2010 को हिन्दी की प्रगति की समीक्षा हेतु डॉ. गोविन्द सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. देहरादून की अध्यक्षता में परिषद के संभी संस्थानों का वीडियो सम्मेलन एवं परिषद मुख्यालय के नियंत्रण पदाधिकारियों की एक बैठक आयोजित की गई। सभी संस्थानों के निदेशक अथवा उनके नामित अधिकारी वीडियो सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन के दौरान महानिदेशक महोदय ने सभी संस्थानों के राजभाषा की प्रगति की दिशा में किए जा रहे प्रयासों का आंकलन किया एवं राजभाषा के प्रचार–प्रसार को द्रुत करने हेतु समुचित दिशानिर्देश जारी किए।

विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यशालाएं, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित बैठकों के आयोजन एवं नराकास, देहरादून में भागीदारी आदि के माध्यम से परिषद् राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर में वर्ष 2009-2010 के दौरान राजभाषा प्रयोग की रिपोर्ट

डॉ. एस.सी. जोशी
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर में भारत संघ की राजभाषा नीति का सुचारु रुप से अनुपालन किया जा रहा है और राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली कार्यालय से प्रतिवर्ष जारी होने वाले वार्षिक कार्यक्रम पर अमल किया जाता है। वर्ष 2009–2010 के दौरान राजभाषा विभाग से जारी वार्षिक कार्यक्रम पर अमल करने की दिशा में किये गये उपाय तथा आयोजित कार्यक्रमों का विवरण अधोलिखित है ।

इस अवधि के दौरान निदेशक की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें समय–समय पर आयोजित की गईं और उन बैठकों में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की तिमाही रिपोर्टों की समीक्षा कर राजभाषा के प्रयोग को बढ़ाने में आने वाली कठिनाईयाँ दूर करके संस्थान के नेमी काम–काज में राजभाषा का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाने की दिशा में सकारात्मक प्रयास जारी रखने के लिए अध्यक्ष द्वारा सभी सदस्य अधिकारियों से आग्रह किया गया।

संस्थान में कार्यरत वरिष्ठ अधिकारियों के लिए राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में अपने दायित्व एवं कर्तव्य के प्रति जागरूकता लाने के उद्देश्य से समय–समय पर राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम और अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी में काम करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। इस अवधि के दौरान हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए हिन्दी में टिप्पण एवं आलेखन विषयों पर हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें अधिकतर कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया।

यह संस्थान 'ग' क्षेत्र में स्थित है और यहाँ कार्यरत अधिकतर कर्मचारी वर्ग अहिन्दी भाषी है लेकिन वे सब बोल–चाल की हिन्दी अच्छी तरह समझ सकते हैं और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए निदेशक की अध्यक्षता में आयोजित शीर्षस्थ प्रशासनिक बैठकों एवं राष्ट्रीय पर्व जैसे कि गणतंत्र दिवस एवं स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर भाषण एवं वार्तालाप आदि में राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाता है। इस दौरान संस्थान में आयोजित समारोह, बैठकें एवं कार्यक्रम आदि में राजभाषा हिन्दी का अधिकतर प्रयोग किया गया। इसके साथ–साथ संस्थान ने राजभाषा विभाग के वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार 'ग' क्षेत्र के लिए निर्धारित किये गये हिन्दी पत्राचार के लक्ष्य को हासिल किया तथा हिन्दी में प्राप्त सभी पत्रों का उत्तर अनिवार्य रुप से संस्थान द्वारा हिन्दी में ही दिया गया।

संस्थान में प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को भारत सरकार के निर्देशानुसार हिन्दी दिवस समारोह मनाया जाता है। इस अवसर पर माननीय गृह मंत्री जी द्वारा राजभाषा के प्रयोग एवं प्रचार–प्रसार की दिशा में प्रेषित संदेश को निदेशक मंच के माध्यम से सभी को पढ़कर सुनाया गया। संस्थान में 14 से 28 सितम्बर तक बड़े हर्षोल्लास के साथ हिन्दी पखवाड़ा समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर हिन्दी में विविध प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। दिनांक 12 अक्टूबर 2009 को हिन्दी दिवस समारोह मनाया जिसमें श्री एच.वी. रामचन्द्र राव,पूर्व निदेशक, आकाशवाणी, बंगलौर, मुख्य अतिथि के रुप में सादर आमंत्रित थे। हिन्दी दिवस समारोह के दौरान मुख्य अतिथि ने संस्थान में सृजित हुए हिन्दी के उत्साहवर्धक वातावरण पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त

मुख्य अतिथि श्री एच.वी. रामचन्द्र राव, पूर्व निदेशक, आकाशवाणी, बंगलौर समारोह को संबोधित करते हुए

की और प्रतियोगिता में सफलता प्राप्त तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम में सक्रियता से भाग लिये हुए पदाधिकारियों को अपने करकमलों से पुरस्कार प्रदान किये।

इस संस्थान में राजभाषा में हिन्दी का उत्साहवर्धक वातावरण सृजित किया गया है तथा इस वातावरण को बनाये रखने की दिशा में हर संभव सक्रिय प्रयास जारी है।

"सतर्कता जागरुकता सप्ताह"

निदेशक की अध्यक्षता में दिनांक 3 से 7 नवम्बर 2009 तक सतर्कता जागरुकता सप्ताह आयोजित किया गया। इस दौरान 3 नवम्बर को संस्थान में कार्यरत सभी अधिकारी, वैज्ञानिक एवं अन्य पदाधिकारियों ने अपने कर्तव्यों का सत्य–निष्ठा से पालन करने की प्रतिज्ञा ली।

इस अवसर पर 4 नवम्बर 2009 को "भ्रष्टाचार मुक्त समाज निर्माण में नारी की भूमिका" विषय पर दो समूहों में वाग्मिता प्रतियोगिता का आयोजन किया गया और प्रतियोगियों को कन्नड, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में अपने विचार व्यक्त करने के लिए विकल्प दिया गया। इसमें 11 प्रतिभागियों ने भाग लिया जिसके पहले समूह में वैज्ञानिक एवं अधिकारी वर्ग तथा दूसरे समूह की प्रतियोगिताओं में अनुसन्धान सहायक, तकनीकी सहायक, अतकनीकी वर्ग के पदाधिकारी तथा शोध छात्रों ने भाग लिया। प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किया गया। इस दौरान संस्थान में कार्यरत पदाधिकारियों को जिन्होंने अपने नेमी कर्तव्यों के अलावा अन्य अतिरिक्त कर्तव्यों का भी पूरी निष्ठा से वहन किया उन्हें प्रभाग प्रमुखों एवं समूह समन्वयक (अनुसन्धान) के अनुशंसा पर निदेशक द्वारा सम्मान–पत्र प्रदान किया गया।

सतर्कता जागरुकता सप्ताह का 6 नवम्बर 2009 को समापन समारोह आयोजित किया गया जिसमें मुख्य अतिथि के रुप में श्रीयुत कमल पंत, आई.पी.एस., पुलिस महानिरीक्षक (सेट्रल रेंज), बंगलौर सादर आमंत्रित थे। इस अवसर पर मुख्य अतिथि महोदय ने सतर्कता जागरुकता के बारे में समारोह को संबोधित किया। समारोह में उपस्थित सभी संबंधितों के प्रति आभार के पश्चात् सतर्कता जागरुकता सप्ताह समारोह का समापन किया गया।

अपनी पहुँच बिचारिकै, करतब करिये दौर,
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर।

–वृन्द

उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 1 से 14 सितम्बर 2009 के दौरान आयोजित ''हिन्दी पखवाड़ा'' की रिपोर्ट

डॉ. असीम कुमार मण्डल
उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी निर्देशों की अनुपालना में संस्थान में हिन्दी में कार्य करने का उत्साहित वातावरण तैयार करने तथा हिन्दी में कार्य करने को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से पूर्व की भाँति इस वर्ष भी संस्थान में दिनांक 1 से 14 सितम्बर 2009 के दौरान "हिन्दी पखवाड़ा" का आयोजन किया गया। पखवाड़े के दौरान प्रत्येक कार्यालय दिवस पर भिन्न–भिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। जिनमें हिन्दी प्रश्नोत्तरी, प्रशासनिक शब्दावली एवं टिप्पणी, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का हिन्दी ज्ञान, हिन्दी टंकण (कम्प्यूटर पर), हिन्दी भाषण (विषयः वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियों के प्रचार एवं प्रसार में हिन्दी की भूमिका), हिन्दी निबंध (विषयः आज के वैज्ञानिक युग में हिन्दी का भविष्य), हिन्दी आशुलिपि, हिन्दी व्यवहार, हिन्दी में मौलिक तकनीकी लेख तथा हिन्दी कविता पाठ प्रतियोगिताएं सम्मलित रही।

"हिन्दी पखवाड़े" का शुभारंभ दिनांक 1 सितम्बर 2009 को हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता से हुआ। इसी दौरान संस्थान के निदेशक द्वारा संस्थान में हिन्दी में स्वप्रेरणा, स्वेच्छा तथा दृढ़ संकल्प से कार्य करने के आशय की अपील भी जारी की गई।

दिनांक 14 सितम्बर 2009 को "हिन्दी पखवाड़" का समापन समारोह आयोजित किया गया। जिसमें काव्यपाठ प्रतियोगिता भी सम्पन्न हुई। समापन समारोह का आयोजन सुप्रसिद्ध कवयित्री सुश्री अंबर प्रियदर्शी के मुख्य आतिथ्य में हुआ। समापन समारोह में हिन्दी अधिकारी डॉ. मौहम्मद यूसुफ ने संस्थान में हिन्दी की प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा तकनीकी क्षेत्रों में लेखन और अभिव्यक्ति में अधिकाधिक प्रयोग का आह्वान किया। निदेशक ने अपने संबोधन में कहा कि संस्थान में हिन्दी में सराहनीय कार्य हो रहा है। शोध कार्य, वैज्ञानिक तथा तकनीकी जानकारी, हिन्दी भाषा में जनसाधारण तक पहुँचाने के प्रयास भी हो रहे है। मुख्य अतिथि कवयित्री सुश्री अंबर प्रियदर्शी ने भी हिन्दी कार्यक्रम की सराहना करते हुए हिन्दी भाषा के सहज प्रयोग तथा इसकी उत्तरोत्तर प्रगति के लिए अपनी लगन और प्रयास से हिन्दी को अपनाये जाने का आग्रह किया।

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह एवं काव्य पाठ प्रतियोगिता के अवसर पर डॉ असीम कुमार मंडल, निदेशक, उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर एवं कवयित्री सुश्री अम्बर प्रियदर्शी

समापन समारोह में हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। इसी अवसर पर राजभाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने हेतु लागू प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत वर्ष 2008–09 के हिन्दी में किए गए कार्य हेतु 10 कर्मचारियों को नियमानुसार नकद राशि के पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र भी प्रदान किए गए।

समापन समारोह के अंत में संस्थान के नियंत्रक एवं राजभाषा अधिकारी द्वारा आभार ज्ञापन जारी किया गया।

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में सम्पन्न हुए 'हिन्दी पखवाड़ा' (14-29 सितम्बर 2009) की रिपोर्ट

डॉ. टी. एस. राठौड़
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सरकारी कामकाज में राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा दिए जाने हेतु विनिर्दिष्ट प्रावधानों तथा निर्देशों की अनुपालना में शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में 'हिन्दी पखवाडा' आयोजित किया गया जिसकी शुरुआत 'हिन्दी दिवस' (14 सितम्बर) पर प्रश्नोतरी प्रतियोगिता से हुई। संस्थान के निदेशक डॉ. टी.एस. राठौड़ द्वारा इस अवसर पर अनुसन्धान कार्यकलापों में हिन्दी का प्रयोग अधिकाधिक करने का आह्वान किया गया तथा 'अपील' जारी की गई।

पखवाड़ा के दौरान हिन्दी वर्तनी, वैज्ञानिक/तकनीकी हिन्दी प्रश्नोतरी, हिन्दी निबंध, हिन्दी टिप्पणी–आलेखन एवं कार्यालयीन शब्दावली, कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण, कामकाजी हिन्दी ज्ञान तथा काव्यपाठ प्रतियोगिताएं सम्मिलित की गई थी। पखवाड़ा के दौरान ही दिनांक 22 सितम्बर 2009 को विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक एवं दिनांक 25 सितम्बर 2009 को मंत्रालयिक स्टाफ हेतु एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला भी आयोजित हुई ।

हिन्दी पखवाड़ा का समापन दिनांक 29 सितम्बर 2009 को आकाशवाणी, जोधपुर के कार्यक्रम कार्यपालक डॉ. कालूराम परिहार के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। संस्थान के हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने इस अवसर पर संस्थान की राजभाषा प्रगति का प्रतिवेदन वर्ष 2008–09 पढ़ा तथा राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु उठाये जा रहे कदमों का जिक्र किया तथा हिन्दी को प्रवाहमान भाषा बताते हुए समय, काल, परिस्थिति के अनुरुप सामंजस्य रख चुनौतियों को स्वीकार करने वाली भाषा कहा। श्री अशोक कुमार, भा.व.से., समूह समन्वयक (अनुसन्धान) ने सूचना एवं प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से हिन्दी में कार्य करने को आसान बताते हुए हिन्दी कार्यो में उनकी व्यवहार्यता को जरुरी बताया। वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. एस.आई. अहमद ने हिन्दी में काम करने हेतु स्वप्रेरणा को प्रभावी आधार बताया। संस्थान के निदेशक डॉ. टी.एस. राठौड़ ने हिन्दी के माध्यम से संस्थान के शोध कार्यो तथा विस्तार गतिविधियों को जनसामान्य तक पहुंचाने में हो रहे हिन्दी के प्रयोग को सराहा तथा इस दिशा में निरन्तर प्रयास करते रहने का आह्वान किया। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. परिहार ने भाषा के विकास में बाजार, मीडिया, प्रौद्योगिकी को मौजूदा दौर में अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया।

हिन्दी पखवाड़ा का समारंभ सत्र

समापन समारोह के दौरान वर्ष 2008–09 के मंत्रालयिक एवं तकनीकी कार्यो हेतु हिन्दी से संबंधित राजभाषा पुरस्कार तथा हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार तथा प्रमाण–पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया। संस्थान के हिन्दी अधिकारी द्वारा आभार व्यक्त किया गया।

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला में राजभाषा कार्यान्वयन की रिपोर्ट

श्री मोहिन्द्र पाल
हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

हिमालय पर्वत माला विश्व की सबसे नवीनतम पर्वत श्रृंखला होने के साथ–साथ, संसार का नाजुक व अतिसंवेदनशील पारिस्थितिक तंत्र भी है। इस पर मानव व पशुओं की बढ़ती जनसंख्या तथा अन्य विविध विकासात्मक गतिविधियों के परिणामस्वरुप सतत् रुप से दबाव बढ़ता ही जा रहा है। साथ इसके पश्चिमी हिमालय क्षेत्र, जो प्रचुर जैव विविधता का केन्द्र है, के लिए चिरकालीन संरक्षण हेतु

'प्रश्न मंच प्रतियोगिता' में निर्णायक मण्डल व अन्य कार्यालयों से आए प्रतिनिधि

गहन प्रबन्धन विधियों की भी आवश्यकता है। स्पष्टतया इन परिस्थितियों के मद्देनजर, पारिस्थितिक तंत्र के संरक्षण की दिशा में किये गए प्रयासों व अनुसन्धान/शोध का इस तंत्र में बहुत महत्व है। संस्थान के उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसके विभिन्न अनुसन्धान प्रभाग विभिन्न नीतियां सुझाने के लिए हमेशा एकजुटता से कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान के कार्यों में हिन्दी को उचित स्थान देने के लिए हर संभव प्रयास किए जा रहे हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि यह संस्थान एक अनुसन्धान संस्थान है, जहां पर कि मुख्यतः तकनीकी शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है, जिससे शतप्रतिशत कार्य हिन्दी में करना सम्भव नहीं है। फिर भी संस्थान हर सम्भव प्रयास कर रहा है कि कार्यालय में अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में ही किया जाये। भारत सरकार पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने हमारे संस्थान के 'क' तथा 'ख' क्षेत्रों के लिये न्यूनतम लक्ष्य 65% रखा है। संस्थान की हिन्दी समीक्षा समिति द्वारा समय–समय पर हिन्दी में कार्य करने के लिये वैज्ञानिकों व कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे हमारे कार्यालय में वैज्ञानिकों द्वारा हिन्दी में समय–समय पर प्रशिक्षण दिया जा रहा है तथा प्रशिक्षण सामग्री भी हिन्दी में उपलब्ध करवाई जा रही है।

'प्रश्न मंच प्रतियोगिता' में भाग लेती हुई हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला की टीम

संस्थान का यह प्रयास रहता है कि हम समय–समय पर कुछ न कुछ गतिविधियाँ करते रहें। इस कड़ी में हिन्दी भाषा को और ज्यादा बढ़ावा देने के लिए दिनांक 03 नवम्बर 2009 को कार्यालय में हिन्दी की एक बैठक का आयोजन किया गया जिसमें हिन्दी में कार्य करने के लिए विभिन्न मुद्दों पर जोर दिया गया। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, शिमला की ओर से हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला द्वारा दिनांक 25 अगस्त 2009 को 'प्रश्न मंच' प्रतियोगिता का आयोजन भी

'प्रश्न मंच प्रतियोगिता' में भाग लेने के लिए शिमला के विभिन्न विभागों से आये प्रतिभागी

किया गया जिसमें शिमला स्थित केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों, निगमों, बैंको व संस्थान के अधिकारियों व कर्मचारियों ने भाग लिया इस प्रकार की प्रतियोगिता हमारे संस्थान में पहली बार आयोजित की गई है, जिसके सफल आयोजन पर सदस्य सचिव, नराकास, शिमला व अन्य कार्यालयों से आये अधिकारियों ने भरपूर प्रशंसा की।

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला में दिनांक 14 से 26 सितम्बर 2009 तक 'हिन्दी पखवाड़े' का भी आयोजन किया गया। इस दौरान भारत सरकार के हिन्दी के प्रतिनिधि ने समय–समय पर जारी किये जा रहे दिशा–निर्देश के बारे में जानकारी दी तथा सभी से अनुरोध किया गया कि सभी इस पखवाड़े के दौरान अपना – अपना शत्प्रतिशत कार्य हिन्दी में ही करें। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारियों / वैज्ञानिकों ने अपने–अपने विचार प्रकट किए।

संस्थान द्वारा दिनांक 14 सितम्बर 2009 को 'हिन्दी दिवस' मनाया गया। इस अवसर पर संस्थान के अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। संस्थान के हिन्दी अधिकारी, श्री राजेन्द्र शर्मा ने उपस्थित सदस्यों को राजभाषा विभाग तथा मुख्यालय द्वारा समय–समय पर दिये जा रहे दिशा–निर्देश व सरकार की नीति के बारे में विस्तृत जानकारी दी। इस उपलक्ष पर विभिन्न वक्ताओं ने भी अपने–अपने विचार प्रकट किये।

'हिन्दी दिवस' के अवसर पर विचार विमर्श करते हुए अधिकारी, वैज्ञानिक एवं कर्मचारी

निर्देशानुसार संस्थान में 'हिन्दी समीक्षा समिति' गठित की गई है। जो कि हर तिमाही में हिन्दी में किए जा रहे कार्यों की समीक्षा करती है तथा उचित सुझाव भी देती है, जिससे ज्यादा से ज्यादा कार्य हिन्दी में किया जा सके। इसके अतिरिक्त समय–समय पर हिन्दी को बढ़ावा देने हेतु सभी अधिकारियों / कर्मचारियों को परिपत्र जारी किए जाते हैं।

इस वर्ष में विज्ञान के प्रसार को और ज्यादा बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित प्रचार पुस्तिकाएं हिन्दी में ही छापीं :

1. कश्मल (*Berberis aristata*)
2. बेल (*Aegel marmelos*)
3. चिलगोज़ा (*Pinus gerardiana*)
4. अतीश और चौरा (*Aconitum heterophyllum* and *Angelica glauca*)

इसके अलावा कार्यालय की कार्यप्रणाली में हिन्दी को उचित स्थान देने हेतु निम्नलिखित फार्म हिन्दी में परिवर्तित किए गए :

1. छुट्टी से सम्बन्धित सभी आदेश।
2. अवकाश के फार्म हिन्दी में।
3. मेडिकल फार्म हिन्दी में।

'हिन्दी दिवस' के अवसर पर उपस्थित अधिकारी, वैज्ञानिक एवं कर्मचारी

4. यात्रा भत्ता / अवकाश यात्रा सुविधा फार्म द्विभाषी।
5. क्रेडिट वाउचर हिन्दी में।
6. डेबिट फार्म हिन्दी में।
7. फॉरेस्ट अग्रिम हेतु प्रार्थना पत्र हिन्दी में।
8. दौरा अग्रिम स्वीकृति फार्म हिन्दी में।
9. खर्च के स्वीकृति फार्म हिन्दी में।
10. वाहन हेतु आवदेन / मांग पत्र हिन्दी में।
11. द्विभाषी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट फार्म एवं कार्यालयादेश।

संस्थान कार्यालय से बाहर भी लोगों के साथ मिलकर इस दिशा में कुछ न कुछ करता रहता है जैसेः 'भारत निर्माण' जन जन–सूचना अभियान सप्ताह के दौरान बिलासपुर के विकास खण्ड घुमारवी के डिग्री कॉलेज के मैदान में दिनांक 23 से 27 फरवरी 2010 तक औषधीय पौधों से सम्बन्धित प्रदर्शनी लगाई गई जिसमें विभिन्न बागवानों व किसानों ने औषधीय पौधों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की। प्रदर्शनी में हिन्दी में ही जानकारी दी गई तथा संस्थान द्वारा छापी गई सामग्री जो कि ज्यादातर हिन्दी में ही है, वितरित की गई।

'विश्व वानिकी दिवस' दिनांक 22 मार्च 2010 को मनाया गया तथा इस दौरान वन विज्ञान केन्द्र, सुन्दरनगर, (हि.प्र.) में पर्यावरण जागरूकता हेतु मॉडल वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, वी.वी.एम.बी. के विद्यार्थियों को जानकारी उपलब्ध करवाई गई साथ ही जल वायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग आदि ज्वलन्त मुद्दों पर विस्तृत चर्चा की गई व वनों का स्तर, वनों के विनाश व वन्य प्राणियों के संरक्षण आदि पहलुओं पर परिचयात्मक जानकारी प्रदान की गई। छात्र–छात्राओं को हल करने हेतु प्रश्नावलियां भी दी गई व विद्यार्थियों को पुरस्कृत भी किया गया। प्रश्नावलियां व अन्य जानकारी हिन्दी में ही उपलब्ध करवाई गई।

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान में औषधीय पौधों पर दो दिनों की कार्यशाला का आयोजन दिनांक 18 और 19 मार्च 2010 को किया गया। जिसमें वितरित औषधीय पौधों से सम्बन्धित सामग्री हिन्दी में ही थी।

इसके अतिरिक्त संस्थान ने किसानों व बागवानों के लिये निम्नलिखित प्रशिक्षण भी आयोजित किये। जिसमें वितरण हेतु सामग्री में व संचालन की भाषा हिन्दी ही प्रयोग की गई।

1. दिनांक 22 जनवरी 2010 को धौला कुंआ, पौंटा साहिब में ''अपक्षीण क्षेत्रों की पुनःस्थापना : वानिकी एक समाधान'' विषय पर संस्थान द्वारा हिन्दी में ही प्रशिक्षण दिया गया।
2. राज्य वन अनुसंधान संस्थान, जानीपुर, जम्मू एवं कश्मीर में दिनांक 17 फरवरी 2010 को वन उत्पादकता बढ़ाने के लिये प्रौद्योगिकी एवं वानिकी अनुसंधान की जानकारी उपलब्ध करवाई गई। जिसमें हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया।
3. ब्रुणधार, जिला कुल्लू में दिनांक 21 फरवरी 2010 को अतीश और चौरा की खेती हेतु वन विभाग के अधिकारियों, कर्मचारियों व किसानों को हिन्दी में ही प्रशिक्षण दिया गया।
4. दिनांक 25 से 27 मार्च 2010 को आदर्श गांव, लाणा बाका, जिला सिरमौर में किसानों को औषधीय पौधों की जानकारी हेतु हिन्दी में ही प्रशिक्षण दिया गया।
5. दिनांक 25 से 28 मार्च 2010 को औषधीय पौधों की उन्नत खेती हेतु आदर्श गांव, लाणा बाका, जिला सिरमौर के किसानों को वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, उत्तराखण्ड में प्रशिक्षण एवं भ्रमण कार्यक्रम करवाया गया तथा प्रशिक्षण के लिये हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया।
6. कृषि वानिकी को बढ़ावा देने के लिये जम्मू क्षेत्र के किसानों को दिनांक 27 से 30 मार्च 2010 तक प्रशिक्षण एवं भ्रमण कार्यक्रम करवाया गया जिसमें हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया।

''पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण'' विषय पर दो दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

श्रीमती जयश्री आरडे चौहान
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून के दीक्षान्तगृह में वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून एवं भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, मुंबई, के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 4 और 5 नवम्बर 2009 को "पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण" विषय पर आधारित इस तरह की पहली दो दिवसीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। माननीय मुख्य मंत्री उत्तराखण्ड, श्री रमेश चन्द्र पोखरियाल 'निशंक' द्वारा दीप प्रज्वलित कर उक्त संगोष्ठी का शुभारम्भ किया गया। संगोष्ठी में डॉ. आर. चिदम्बरम, प्रधान वैज्ञानिक सलाहकार, भारत सरकार, डॉ. कृष्ण बी. सैनिस, अध्यक्ष हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् एवं निदेशक जैव चिकित्सा वर्ग, श्री जयप्रकाश त्रिपाठी, सचिव हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र, मुंबई, उत्तराखण्ड विज्ञान एवं प्रौद्योगिक परिषद् तथा शैक्षणिक संस्थानों के वैज्ञानिक/इंजीनियर, शिक्षाविद, पर्यावरणविद, अध्यापक एवं छात्र प्रतिनिधि शामिल हुए।

उक्त संगोष्ठी का विषय पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण था। संगोष्ठी में वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून की ओर से डॉ. (श्रीमती) पी. सोनी, प्रभाग प्रमुख डॉ. वाई.पी. सिंह, वैज्ञानिक–डी, डॉ. ए.के. शर्मा, वैज्ञानिक–डी, ने उपर्युक्त विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। संस्थान के समस्त वैज्ञानिक, अनुसन्धान अधिकारी आदि भी संगोष्ठी में उपस्थित थे। संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य कार्यालय के कार्य में राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा देना था। इसलिए संगोष्ठी में समस्त वार्ता राजभाषा हिन्दी के माध्यम से की गई।

डॉ. शरद सिंह नेगी, निदेशक, वन अनुसन्धान संस्थान के कुशल मार्गदर्शन में सम्पूर्ण कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। श्री प्यार चंद, कुलसचिव, वन अनुसन्धान संस्थान एवं सुश्री रेशमा दीवान, स्थापना एवं लेखा अधिकारी (सां.), वन अनुसन्धान संस्थान ने उपरोक्त समस्त कार्यक्रम का संयोजन किया। साथ ही संगोष्ठी के सफल आयोजन के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया था जिसमें श्री एस.के. कोहली, श्री नवतेज सिंह, श्रीमती पूनम पन्त, श्री लल्लन सिंह यादव, श्री मनजीत सिंह, श्री एस.आर. राठौर, श्री संजय पाठक, श्री राज किशोर, श्री सलाउद्दीन, श्री तिलकराज कक्कड़, श्री वीरेन्द्र सिंह रावत एवं श्री रमेश सिंह आदि ने संगोष्ठी को आयोजित करने में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान में हिन्दी सप्ताह का आयोजन

श्री शंकर शर्मा
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु अन्य केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों की तरह वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट में भी पहली बार 8 से 14 सितंबर के दौरान हिन्दी सप्ताह का आयोजन हुआ। सप्ताह के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं, जैसे श्रुतलेखन, कविता पाठ, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया गया तथा अन्त में राजभाषा हिन्दी के प्रति अपने

हिन्दी दिवस की बैठक को सम्बोधित करते हुए निदेशक श्री एन. के. वासु

कर्त्तव्यों को ध्यान में रखते हुए संस्थान में हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन किया गया।

संस्थान के निदेशक, श्री एन. के. वासु की अध्यक्षता में आयोजित सभा में संस्थान की समूह समन्वयक (अनुसन्धान) श्रीमती इम्तिएन्ला आव., वरिष्ठ वैज्ञानिक, डॉ. राजीब कुमार बोरा, श्री राजीब कलिता, श्री पवन कुमार कौशिक, डॉ. रंजीत कुमार शर्मा और डॉ. विश्वजित कुमार आदि के साथ साथ संस्थान के सभी कर्मचारियों ने भाग लिया।

सभा के दौरान निदेशक महोदय ने राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार एवं उसके महत्व पर प्रकाश डाला। सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने हिन्दी साफ्ट्वेयर "सारांश" का अधिष्ठापन करने पर जोर दिया। इसके साथ ही उन्होंने सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन हेतु नियम कानूनों पर अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया।

प्रतिभागियो में पुरस्कार वितरण अनुष्ठान

सभा के मध्य में हिन्दी सप्ताह पर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में श्रेष्ठ प्रदर्शन करनेवाले कर्मचारियों को प्रशस्ति पत्र और पुरस्कार से सम्मानित किया गया तथा अन्य सभी प्रतिभागियों को प्रशस्ति पत्र और पुरस्कार दिया गया। इसके बाद सभा में उपस्थित सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने अपने भाव व्यक्त करते हुए हिन्दी में कार्य करने के लिए अपनी प्रबल इच्छा प्रकट की। सभा का समापन संचालक श्री आलोक यादव के धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

हिन्दी कार्यशाला

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान ने 8 जनवरी 2010 को राजभाषा हिन्दी संबंधित संवैधानिक प्रावधानों पर संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच एक कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला में संस्थान के निदेशक श्री एन. के. वासु, समूह समन्वयक (अनुसन्धान) श्रीमती इम्तिएन्ला आव, श्री अजय कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक, श्री डी. के. बनर्जी, श्री राजीब कलिता और

डॉ. राजीब कुमार बोरा आदि के साथ–साथ संस्थान के सभी अधिकारी तथा कर्मचारी उपस्थित थे। कार्यशाला का उद्घाटन मुख्य अतिथि श्रीमती इम्तिएन्ला आव, समूह समन्वयक (अनुसन्धान) के कर कमलों द्वारा किया गया जिसमें उत्तर–पूर्व विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान के हिन्दी अधिकारी श्री अजय कुमार अतिथि वक्ता के रुप में उपस्थित थे।

कार्यशाला का शुभारंभ वरिष्ठ वैज्ञानिक तथा आयोजक श्री पवन कुमार कौशिक के कार्यशाला के उद्देश्य व्याख्या द्वारा हुआ। अतिथि वक्ता श्री अजय कुमार जी ने संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों को स्लाइड प्रस्तुतिकरण द्वारा राजभाषा हिन्दी से संबंधित महत्वपूर्ण संवैधानिक नियमों और कानूनों से अवगत कराया। उन्होंने राष्ट्रभाषा और राजभाषा के अन्तर को सहज और सरल ढंग से समझाते हुए राजभाषा राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में गति लाने के लिए उन्होंने कार्यालयीन कार्यों में अधिक से अधिक हिन्दी में काम करने के लिए सबको प्रेरित किया।

मुख्य अतिथि श्रीमती इम्तिएन्ला आव ने अपने भाषण में राजभाषा हिन्दी से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारियों से सभी को अवगत कराने के लिए अतिथि वक्ता के प्रति अपना आभार प्रकट किया तथा भविष्य में भी इसी तरह की कार्यशालाओं का आयोजन करने पर बल दिया। संस्थान के निदेशक महोदय ने अपने भाषण में राजभाषा हिन्दी में काम करने की आवश्यकताओं पर विशेष रुप से ध्यान देते हुए संस्थान के विभिन्न अनुभागों एवं प्रभागों को अपने यहाँ हिन्दी में कार्यशालाओं के आयोजन पर जोर दिया। कार्यशाला का समापन वरिष्ठ वैज्ञानिक श्री राजीब कलिता के धन्यवाद ज्ञापन द्वारा हुआ।

हिन्दी कार्यशाला में भाग लेते हुए अधिकारी एवं कर्मचारी

राजभाषा : व्यवहार्यता के परिप्रेक्ष्य में

श्री कैलाश चन्द गुप्ता
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान ,जोधपुर

निश्चय ही हिन्दी के सामने राष्ट्रभाषा और राजभाषा का प्रश्न आजादी के बाद से ही उठ रहा है । हालांकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा है और उसे यह दर्जा 26 जनवरी 1950 को ही प्राप्त हो गया था । संविधान निर्माताओं ने यह मंशा जाहिर की थी कि संविधान लागू होने के बाद 15 वर्षों की समाप्ति पर 26 जनवरी 1965 से अंग्रेजी का प्रयोग राज–काज में समाप्त हो जाएगा। यह बात जब 1965 में सामने आई तो किसी द्वन्द अथवा मजबूरीवश संसद ने राजभाषा अधिनियम का संशोधन कर अंग्रेजी के प्रयोग को अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दिया। अर्थात् यह निर्णय लिया गया कि जब तक किसी भी प्रदेश विशेष को हिन्दी को राजभाषा स्वीकारने में आपत्ति रहती है तब तक यथास्थिति रहेगी।

यह सब उनके समय में हुआ जिन्होंने गांधी जी को देखा था और सुना था, लेकिन शायद समझा नहीं था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने 16 जून 1931 के 'यंग इंडिया' में भाषा के संबंध में एक टिप्पणी में कहा था –"अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो, तो निःसन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अन्त्यजों का और इन सबके लिए हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

इससे भी पहले गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दी के संबंध में सामान्यजनों अथवा गैर हिन्दी भाषियों के लिए मार्गदर्शन देते हुए कहा था– "यदि हिन्दी बोलने में भूल हो, तो भी उनकी कतई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भूलें करते–करते भूलों को सुधारने का अभ्यास हो जाएगा। भूलों की चिन्ता न करने की सलाह आलसी लोगों के लिए नहीं, वरन् भाषा सीखने के इच्छुक अध्यवसायी सेवकों के लिए है।"

हिन्दी के संदर्भ में इस बात पर बल दिया गया है कि हिन्दी का सहज और सरल रूप जो अनायास ही कलम की नोक पर अथवा जबान पर थिरक जाए वही राज–काज की सही हिन्दी है। पाठ्य–ग्रन्थों की हिन्दी तथा विद्वानों द्वारा लिखी जाने वाली पुस्तकों की हिन्दी में तथा समाचार–पत्रों की व जनता की हिन्दी में अवश्य ही मौलिक भेद रहेगा। शोध ग्रन्थों की हिन्दी में खिचड़ी भाषा और बेमेल शब्दों का प्रयोग शोभा नहीं देता है। लेकिन समाचार पत्रों की अथवा आम लोगों की बोलचाल की भाषा में इस तरह का प्रश्न ही नहीं उठता। आम जनता बातचीत में जिस तरह शब्दों और जिस तरह भाषा का प्रयोग करती है, वही सरकार की भी भाषा होनी चाहिए और उसका बेझिझक प्रयोग होना चाहिए, वही असली राजभाषा है। बोलने अथवा लिखने में देशी–विदेशी अर्थात् संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तुर्की आदि के जो भी शब्द जिस रुप में रच–पच गए है, उनका सहज व्यवहार राजभाषा में होना चाहिए। हवाई अड्डे के लिए 'विमानपत्तन' मजिस्ट्रेट के लिए 'दंडाधिकारी', कलक्टर के लिए 'समाहर्ता', टेलिफोन के लिए 'दूरभाष', और पुलिस के लिए 'आरक्षी' आदि शब्द हम न गढ़ने बैठें, जो हैं उन्हें मानें।

हिन्दी को यदि सर्वमान्य बनाना है तो हमें राजभाषा और राष्ट्रभाषा के भेद को मिटाना होगा। उसके लिए हमें निम्नलिखित नीतियों का गंभीरता से पालन करना होगा:

1. संविधान में हिन्दी को जो मान्यता मिली है और उसका जो कार्य निर्धारित किया गया है, वह सख्ती से लागू हो।
2. हिन्दी में जो आमफहम देशी–विदेशी शब्द आ गए हैं, उन्हें सरकारी पारिभाषिक शब्दकोशों में मान्यता मिले तथा सरकारी कामकाज में उनका धड़ल्ले से व्यवहार हो।
3. सरकारी कार्य अनुवाद के सहारे न चलाए जाएं, वरना हिन्दी कभी भी प्रतिष्ठित नहीं हो पाएगी। अनुवाद करने के बजाय मौलिक रूप से हिन्दी का व्यवहार हो।
4. विद्यालयी–महाविद्यालयी स्तर पर इस तरह के पाठ्यक्रम निर्धारित हों जिससे विद्यार्थियों को सरकारी

काम हिन्दी में कैसे किया जाए, इसका प्रारंभिक ज्ञान कराया जा सके।

5. भाषा को जानकारी का वाहक बनाया जाए और लिखते समय यह आवश्यक है कि लोग मूल रूप से हिन्दी में ही सोचें और हिन्दी में लिखें। अंग्रेजी में सोचकर अनुवाद के रूप में हिन्दी में लिखने से भाषा में शुष्कता और अस्वाभाविकता आ जाती है।

6. अभी तो देखने में आता है कि हिन्दी में कामकाज की गति नीचे से उपर की ओर है, जबकि होना यह चाहिए कि वह उपर से नीचे की ओर आए।

7. हिन्दी में सरकारी कार्यों का जो ढ़ंग ढर्रा है उससे तो ऐसा प्रकट होता है जैसे लोग जबरन इसमें लगे हैं और मजबूरी की हालत में इसे कर रहे हैं। ऐसा वातावरण बनाया जाए कि इस कार्य में लोगों की स्वयं रूचि उत्पन्न हो। अब तक जो हो रहा है, उसमें प्रदर्शन, पुरस्कार, दंड आदि मुख्य हैं, यह समाप्त हो इस पर विचार होना चाहिए।

इसमें दो राय नहीं कि हिन्दी का कार्य काफी बढ़ गया है तथा सरकारी कार्यक्रमों से लेकर सार्वजनिक उपक्रमों और संस्थाओं में इसका विकास द्रुतगति से हुआ है। इन सारी बातों के बावजूद हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में निष्ठा जगे तथा राजभाषा का प्रश्न राष्ट्रीयता के रुप में जुड़े।

यह कहना या यह समझना बिल्कुल बेमानी है कि कोई आदमी यह कहे कि मुझे हिन्दी नहीं आती इसलिए काम नहीं कर पाऊंगा। सामान्य जरुरतों के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है उदाहरणार्थ दिल्ली जो कि देश की राजधानी है और देश के हर भाग के लोग यहां रहते हैं इनमें से 95 प्रतिशत लोग सामान्य हिन्दी में व्यवहार करते हैं, बोलते हैं और समझते हैं। इस सामान्य समझदारी का ही प्रतीक रामायण और महाभारत की लोकप्रियता भी कही जाएगी, जिसने दूरदर्शन पर करोड़ों लोगों को आकृष्ट किया। श्री राही मासूम रजा द्वारा लिखा गया 'महाभारत' का संवाद किसी को भी क्लिष्ट नहीं लगा।

मेरी समझ में हम राजभाषा को अपनाकर संविधान की रक्षा कर सकते हैं और बहुमत का आदर भी कर सकते हैं।

साभार संदर्भ : 'राजभाषाः प्रश्न और उत्तर के घेरे में' श्री शंकर दयाल सिंह सुपरिचित साहित्यकार तथा समर्पित गांधीवादी चिंतक।

गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे काग–कोकिला, शबद सुनै सब कोय।।
शबद सुनै सब कोय, कोकिला सबे सुहावन।
दोऊ को इक रंग, काग सब भये अपावन।।
कह गिरिधर कविराय, सुनौ हो ठाकुर मन के।
बिन गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के।।

–गिरिधर

वानिकी

यूँ तो हर बीज की फितरत दरख्त है,
खिलते हैं जिसमें फूल वो आबोहवा भी हो।

झारखण्ड में कृषि वानिकी की सम्भावनाएं

श्री एम.पी. सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

कृषि वानिकी का अर्थ है कृषि में वानिकी का समावेश। भारत के उत्तरी मैदानी राज्यों में कृषि को बहुआयामी बनाने हेतु कृषि के साथ–साथ वन वृक्ष जैसे युकेलिप्टस, पॉपलर आदि को अपनाया गया है। ऐसा करके किसानों की आर्थिक स्थिति अप्रत्याशित रुप से सुदृढ़ हुई है।

भारत के उत्तरी मैदानी राज्यों में कृषि वानिकी

परन्तु झारखण्ड जैसे पठारी राज्यों में वन आधारित खेती की पद्धति को परम्परागत रुप से अपनाया जाता रहा है। बेशक वर्षा काल में पानी के जमाव वाले खेतों को समतल तथा सीढ़ीनुमा बनाकर धान की खेती की जाती रही है और ऐसी भूमि पर भू–क्षरण और उत्पादकता के ह्रास की समस्या भी काफी कम है। परन्तु ढलवा, उबड़–खाबड़ एवं भू–क्षरण से ग्रसित भूमि से वृक्षों को हटाकर खेती करने का असफल प्रयास विगत दो–तीन दशकों से किया गया है। भूमि के ढलवा होने के कारण वर्षा का जल उच्च भूमि से शीघ्र बहकर निकल जाता है तथा अपने साथ बहुमूल्य ऊपरी सतह की उर्वरक मिट्टी बहा ले जाता है। परिणामतः भूमि एवं जल संरक्षण की समस्या कालान्तर में बढ़ती गई है और उत्पादकता एवं जल की कमी से इस टाँड़ भूमि पर कृषि करना लाभकारी नहीं रह गया है।

झारखण्ड में परती टाँड भूमि

अगर अधोलिखित तालिका के आँकड़ों पर गौर करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के कुल भू–भाग के लगभग 3.44 प्रतिशत हिस्से में ऐसे खेत हैं जिनमें 5 या अधिक वर्षों से खेती नहीं की गयी है। 9.78 प्रतिशत ऐसे खेत भी है जिनमें किसानों की आर्थिक तंगी या उपज की कमी इत्यादि कारणों से पिछले 5 वर्षों में कभी–कभार ही खेती की गयी है, जबकि पिछले वर्ष 16.55 प्रतिशत खेतों को परती छोड़ दिया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पिछले तीस–चालीस

वर्षों में किसानों के लिए टाँड़ भूमि पर खेती करना लाभकारी नहीं रह गया है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि झारखण्ड जैसे पठारी राज्य के टाँड़ भूमि एवं ढलवा भूमि पर वृक्षों की खेती कर भूमि को आवरण प्रदान किया जाए। एक अहम् बिन्दु यह भी है कि खेतों की ऊपरी सतह को उपजाऊ बनाने में वृक्षों का बेहद महत्वपूर्ण योगदान है। वृक्ष ही उसर और अनुपयोगी भूमि की कायापलट करने में सक्षम हैं।

भूमि उपयोगिता वर्गीकरण – झारखण्ड

भूमि का प्रकार	कुल क्षेत्र (हैक्टेयर में)	प्रतिशत
कुल भौगोलिक क्षेत्र	7,970	100
भू–उपयोग का प्रतिवेद्य वन क्षेत्र	2,33.3	29.27
गैर कृषि में लगायी गयी भूमि	683	8.56
उसर और खेती के लिए अयोग्य भूमि	573	7.19
कृषि योग्य बंजर भूमि	274	3.44
स्थायी चारागाह एवं अन्य चराई क्षेत्र	88	1.10
वृक्ष एवं बागान आच्छादित भूमि	113	1.42
अन्य परती भूमि	779	9.78
चालू परती भूमि	1,319	16.55
शुद्ध बोये गये क्षेत्र	1,808	22.60
कुल बोया गया क्षेत्र	2,068	–

कृषि वानिकी के उपर्युक्त स्वरुप को अपनाकर किसान न सिर्फ अपनी वर्तमान व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं, बल्कि आने वाले समय में समन्वित कृषि प्रणाली जैसी तकनीकों का प्रयोग कर आर्थिक समृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त कर सकते है। इसके लिए यह अति आवश्यक है कि कृषि वानिकी की विभिन्न संभावनाओं को अपनाया जाए।

कृषि वानिकी : संभावनायें 1–बांस रोपण

कृषि के साथ बांस के बखार उन्नत तकनीक से लगाने पर उसर एवं मोरमी भूमि का कायापलट हो सकता है। कागज उद्योग में बांस की बहुत मांग है।

कृषि वानिकी के रुप में बांस रोपण से आर्थिक समृद्धि सम्भव है

यदि इस मांग को ग्रामीणों तक पहुंचाया जा सका और अपेक्षानुरुप उत्पादन हो सका तो यह क्रांतिकारी कदम हो सकता है। इसके लिए बाँस को वन विभाग की परिवहन अनुज्ञा–पत्र की अनिवार्यता से मुक्त करना आवश्यक है।

कृषि वानिकी : संभावनायें 2–युकेलिप्टस एवं सुबबूल

क्लोनल विधि से विकसित युकेलिप्टस एवं सुबबूल की प्रजातियां तीव्र गति से बढ़ती मांग को पूरा करने में सक्षम है। चूंकि एक बार रोपण के बाद बार–बार उनकी कटाई संभव है, अतः ये प्रजातियाँ कम पूंजी में निरंतर आय का साधन बन सकती है। कागज उद्योग में इन प्रजातियों की बहुत मांग है। प्रति हैक्टेयर 30 हजार तक आमदनी किसानों को हो सकती है। इसकी खेती को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए इन प्रजातियों के काष्ठ के परिवहन को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना चाहिए।

युकेलिप्टस का कृषि वानिकी के रुप में उपयोग भविष्य की आवश्यकता है

कृषि वानिकी : संभावनायें 3—लघु आवृत्ति प्रकाष्ठ प्रजातियाँ

एकेसिया एवं गम्हार शीघ्र बढ़ने वाली ऐसी इमारती लकड़ी की प्रजातियाँ है जिनके तैयार होने की आवृत्ति 10 से 15 वर्ष रखी जा सकती है। एकेसिया की खेती मोरमी एवं टांड़ जमीन पर की जा सकती है। गम्हार की खेती दोमट मिट्टी वाली जमीन पर करना बेहद उपयुक्त होता है।

कृषि वानिकी : संभावनायें 4—दीर्घ आवृत्ति प्रजातियाँ

इमारती लकड़ियों में शीशम एवं सागवान की मांग बाजार में काफी ज्यादा है।

टांड़ एवं अनुपयोगी कृषि वाली भूमि पर इन प्रजातियों की खेती करके किसान अपने खेतों से अच्छी आमदनी कर सकते हैं। जीवन की अनिवार्य एवं बड़ी आवश्यकताओं के लिए पूंजी के रुप में इनकी खेती करना ग्रामीणों को एक सुदृढ़ आधार दे सकता है।

कृषि वानिकी : संभावनायें 5—लघु वन पदार्थ प्रजातियाँ

लघु वन पदार्थ प्रजातियों के रूप में मुख्य रुप से आम और कटहल को रखा जा सकता है।

नई एवं प्रचलित प्रजातियों में करंज, नीम, आँवला, काष्ठ बादाम, नागकेसर एवं लक्ष्मी तरु को रखा जा सकता है। वस्तुतः लघु वन उपज के रूप में फल तथा बीज की प्राप्ति से किसानों को सतत् वार्षिक आय होती है।

निष्कर्ष

झारखण्ड की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए कृषि वानिकी के अन्तर्गत प्रक्षेत्र वानिकी को अपनाकर वृक्षों की खेती करने की आवश्यकता है। वृक्षों की खेती से परती भूमि की गुणवता में सुधार सम्भव है। परती भूमि में जैविक पदार्थ की मात्रा में बढ़ोत्तरी होगी। जल संचयन की शक्ति में विकास होगा। इन वृक्षों के आवरण प्रदान करने पर औषधीय पौधे, चारा एवं अन्य वर्षा आधारित फसल की खेती सहजता से की जा सकेगी।

अतः परती भूमि को उत्पादन चक्र में लाया जा सकेगा। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नया आयाम मिलेगा। झारखण्ड राज्य काष्ठ का निर्यातक बन सकेगा। जबकि वर्त्तामान में राज्य की कुल काष्ठ आवश्यकता के दो–तिहाई भाग की आपूर्ति दूसरे राज्यों से होती है। झारखण्ड के वनों को सतत् पोष्य बनाना सम्भव हो पायेगा। किसान खुशहाल होंगे। ग्रामीण इलाकों में स्वरोजगार के अवसर सृजित हो सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में वानिकी एवं भारतीय योगदान

श्री विजयराज सिंह रावत
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तन आज विश्व की चिंतनीय समस्याओं में से एक है। यूँ तो पृथ्वी के इतिहास में जलवायु परिवर्तन कोई नयी बात नहीं है किन्तु इस समय इस परिवर्तन में मानव जनित गतिविधियां मुख्य भूमिका निभा रही हैं। विश्व भर में कार्बन आधारित उर्जा पर हमारी अत्यधिक निर्भरता, औद्योगिक क्रांति के पश्चात वायुमंडल में अत्यधिक मात्रा में ग्रीन हाऊस गैसों का छोड़ा जाना, निरंतर घटते वन क्षेत्र इसके प्रमुख कारण हैं। वर्तमान में तेजी से हो रहे भू उपयोग परिर्वतन से पृथ्वी के चेहरे की आकृति ही काफी बदल गयी है। ग्रीन हाऊस प्रभाव आज सर्वविदित है। यह ग्रीन हाऊस का प्रभाव ही है कि पृथ्वी का औसत तापमान 15° से. के आस–पास बना हुआ है। ग्रीन हाऊस प्रभाव की अनुपस्थिति में पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 32° से कम अर्थात –16° के आस–पास होता तथा पृथ्वी पर जीवन सम्भव नहीं था। ग्रीन हाऊस गैसों में कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड प्रमुख है जिनमें कार्बन डाईऑक्साइड सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान है। पिछले 200 वर्षों में वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा 30 प्रतिशत तक बढ़ी है।

जलवायु परिवर्तन : नवीनतम जानकारी : वैश्विक गर्मी की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पेनल ने 2007 में जारी अपनी रिर्पोट में खुलासा किया है कि यदि पृथ्वी का तापक्रम निर्बाध रुप से इसी तरह बढ़ता गया तो अगले 100 वर्षो में पृथ्वी का तापमान 1.8 से 4° से. तक बढ़ सकता है। इसके भयंकर दुष्परिणाम कृषि, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था तथा पर्यावास पर पड़ेगें तथा सभी को भुगतने होंगे। गरीब राष्ट्र सबसे अधिक प्रभावित होंगे।

पृथ्वी के तापमान में पिछले 100 वर्षो में 1901 से 2000 के बीच 0.6° से. की वृद्धि हुई जबकि 1905 से 2005 के बीच के 100 वर्षो में 0.74° से. की वृद्धि हुई। वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा औद्योगिक क्रांति से पूर्व के स्तर 280 भाग प्रति दस लाख (पार्ट पर मिलियन) से बढ़कर 2005 में 379 पी.पी.एम. हो गयी जो कि पिछले 6,50,000 वर्षों में सर्वाधिक आंकी गई है। तीव्र औद्योगिकीकरण व अन्य मानव जनित गतिविधियों से कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड की वायुमण्डल में सांद्रता सन् 1750 के स्तर से अप्रत्यासित रुप से बढ़ी है। कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में यह वृद्धि जीवाश्म ईंधन के उपयोग तथा भू–उपयोग परिवर्तन के कारण है। जबकि मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड में वृद्धि मुख्यतः कृषि क्षेत्र से है ।

जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पेनल जिसमें विश्व के ख्याति प्राप्त लगभग 2000 वैज्ञानिक सर्व सम्मत हैं कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वायुमंडल में ग्रीन हाऊस गैसों का रिसाव तथा भू–उपयोग परिवर्तन एवं वन विनाश ही जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास : संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1992 में ब्राजील के रियोडी जिनरो नगर में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन में विश्व समुदाय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लेकर जलवायु परिवर्तन के संबंध में संयुक्त राष्ट्र रुपरेखा अभिसमय (यू.एन.एफ.सी.सी.सी.) को अंगीकृत किया। यू.एन.एफ.सी.सी.सी. का मुख्य उद्देश्य वायुमंडल में ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को एक ऐसे स्तर पर स्थिर करना था कि यह मनुष्य जाति के लिए हानिकारक न हो। यू.एन.एफ.सी.सी.सी. के पक्षकारों का तीसरा सम्मेलन (कोप–3) जापान के क्योटो शहर में 1997 में हुआ जहाँ क्योटो प्रोटोकोल पारित हुआ जिसके तहत प्रत्येक विकसित राष्ट्र के लिये ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी करने के निश्चित लक्ष्य निर्धारित किये गये।

जलवायु परिवर्तन प्रयासों में वानिकी : क्योटो प्रोटोकोल में पहली बार जलवायु परिवर्तन के संबंध में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा अभिसमय (यू.एन. एफ.सी.सी.सी.) के पक्षकारों का आठंवा सम्मेलन (कोप–8)

23 अक्टूबर से नवम्बर 2002 तक नई दिल्ली में आयोजित किया गया। क्योटो प्रोटोकोल की दृष्टि से यह सम्मेलन इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि वर्ष 2002 से क्योटो प्रोटोकोल लागू होना था तथा सभी पक्षकारों का अमेरिका को मनाने का यह अन्तिम प्रयास भी था। परन्तु अमेरिका ने संधि का अनुमोदन नहीं किया, सम्मेलन के अन्त में दिल्ली घोषणा पत्र जारी किया जिसमें विकासशील देशों की मांग के अनुरुप तकनीक हस्तान्तरण, क्षमता विकास और समयानुकूल बदलाव पर केन्द्रित जलवायु परिवर्तन एंव सतत् विकास संबंधी विषयों को सर्व सम्मति से स्वीकृत किया गया।

पक्षकारों का सातवाँ सम्मेलन मराकेश में हुआ जिसे मराकेश समझौते के नाम से जाना जाता है। जलवायु प्रभाव में वानिकी की भूमिका के योगदान के कारण यह महत्वपूर्ण सम्मेलन था। जहां क्योटो प्रोटोकोल वनीकरण एंव पुनर्वनीकरण की बात करता है वही मराकेश समझौते ने स्पष्ट रुप से वनीकरण पुनर्वनीकरण को परिभाषित किया तथा इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए एक "स्वच्छ विकास प्रक्रिया कार्यकारी परिषद्" की भी स्थापना की।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रुपरेखा अभिसमय के पक्षकारों को अब तक 15 सम्मेलन हो चुके हैं। नवां सम्मेलन दिसम्बर 2003 में इटली के मिलनो शहर में हुआ, जो वानिकी के लिये महत्वपूर्ण था। तथा कई रिपोर्टो ने इसे लघु वानिकी सम्मेलन की संज्ञा दी इसमें वानिकी द्वारा जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण परियोजनाओं के लिये प्रतिरुप तथा क्रियाविधि को अन्तिम रूप दिया गया।

कोपेनहेगन जलवायु परिवर्तन : जलवायु परिवर्तन की इस विभिषिका के दृष्टिगत विश्व समुदाय को दिसम्बर 2009 में सम्पन्न कोपेनहेगन जलवायु सम्मेलन से बड़ी आशाएं थी। यह सम्मेलन पक्षकारों के 15वें सम्मेलन (कोप–15) के रुप में भी जाना जाता है। समस्या की गम्भीरता को समझते हुए तथा किसी ठोस समझौते की आशा से इस सम्मेलन में विश्व के 130 देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया। वर्तमान में क्योटो प्रोटोकोल में शामिल राष्ट्रों की प्रतिबद्धता 2012 तक ही है। कोपेनहेगन में आयोजित विश्व जलवायु सम्मेलन में क्योटो या अन्य किसी संधि की जो 2012 के बाद लागू हो, कोई सर्व सम्मति नहीं बन पायी। यद्यपि कोपेनहेगन समझौता जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की दिशा में कोई प्रभावशाली कदम उठाने में सफल नहीं रहा, लेकिन सभी राष्ट्रों ने जलवायु परिवर्तन को विश्व समुदाय के लिए एक गम्भीर खतरे के रुप में स्वीकार किया। सभी विकसित देशों ने यह तय किया कि वे वर्ष 2010 तक गर्मी पैदा करने वाली ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी की मात्रा निर्धारित करेंगे तथा विकासशील राष्ट्र भी घरेलू स्तर पर इन गैसों के उर्त्सजन में कमी के लिए कदम उठायेंगे। कोपेनहेगन के बाद संयुक्त राष्ट्र का अगला जलवायु परिवर्तन सम्मेलन दिसम्बर 2010 मैक्सिको में होना निश्चित हुआ है। पूरे विश्व की निगाह इस पर टिकी है कि जो समझौता कोपेनहेगन में नहीं हो पाया शायद मैक्सिकों में वह हो जायेगा ।

कोपेनहेगन जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में वानिकी : जहाँ विश्व में जीवाश्म ईंधन का अत्यधिक उपयोग तथा इससे निर्मुक्त होने वाली कार्बन डाईऑक्साइड विश्व में ग्रीन हाऊस का प्रमुख स्रोत है, विश्वभर में हो रहे वन विनाश से लगभग 18 प्रतिशत कार्बन वायुमण्डल में निर्मुक्त होती है। यदि विश्वव्यापी वन विनाश की समस्या पर काबू पा लिया जाय तो वानिकी मात्र से ही जलवायु परिवर्तन की 20 प्रतिशत समस्या का समाधान निकल सकता है।

वैश्विक जलवायु परिवर्तन वार्ताकारों ने इससे निपटने के लिये "रेड्ड" कार्यक्रम पर चर्चा प्रारम्भ की है। रेड्ड यानि रिड्यूसिंग इमिसन फ्राम डीफोरेस्टेशन एण्ड डिग्रेडेशन, रेड्ड कार्यक्रमों के अंतर्गत विश्वभर में भारी मात्रा में हो रहे वन विनाश को रोकने की परियोजनायें तथा आर्थिक सहायता का प्रावधान किया जा रहा है। भारत ने बाली में जलवायु परिवर्तन के 13वें सम्मेलन में वन संरक्षण एवं वन क्षेत्रों में वृद्धि के फलस्वरूप हो रहे कार्बन पृथक्करण को भी इस कार्यक्रम में शामिल करवाया, जिसके फलस्वरुप रेड्ड आज "रेड्ड प्लस" के नाम से जाना जाता है।

रेड्ड प्लस एवं कोपेनहेगन सम्मेलन : कोपेनहेगन समझौते में वानिकी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। समझौते में रेड्ड प्लस कार्यक्रमों के अविलम्ब प्रारम्भ करने तथा रेड्ड प्लस मेकेनिज्म की तुरन्त स्थापना का आवह्वान किया। कोपेनहेगन समझौते से आशा की जा रही है कि इससे विश्व में वन विनाश पर रोक लगेगी तथा रेड्ड प्लस कार्यक्रम शीघ्रातिशीघ्र लागू होंगे।

कोपेनहेगन समझौते के अंतर्गत यूरोपीय संघ ने 20–30% तक कटौती करने की घोषणा की है बशर्ते की अन्य विकसित राष्ट्र भी इसके समतुल्य कटौती करे तथा विकासशील राष्ट्र भी अपने उत्तरदायित्व तथा क्षमतानुसार योगदान करे। नार्वे ने 30–40% तथा (1990 आधार वर्ष) की घोषणा की है। जापान ने 25% कटौती की घोषणा की है। रूसी संघ ने 15–25% कटौती तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने 17% के लगभग (2005 आधार वर्ष) बशर्ते यह अमेरिका सदन से पारित हो जाय।

प्रमुख विकसित देश में भारत ने प्रति इकाई सकल घरेलू उत्पादन पर अपनी ऊर्जा तीव्रता में 20–25% तथा चीन ने 40–45% की कमी करने का वचन संयुक्त राष्ट्र को दिया है।

जलवायु परिवर्तन तथा विकसित देशों का नजरिया : विश्व के विकसित देश जलवायु परिवर्तन की समस्या के प्रति गम्भीर होने का दावा तो करते हैं परन्तु इसके प्रति वचनबद्ध नहीं दिखते। अमेरिका के क्योटो सन्धि से मुकर जाने के फलस्वरुप क्योटो लक्ष्य 2012 तक प्राप्त करना असम्भव प्रतीत होता है। जबकि भारत तथा चीन जैसे विकासशील देशों से क्योटो सन्धि के विपरीत ग्रीन हाऊस गैसों को कम करने के लिये दबाव बनाने की रणनीति बन रही है। विकासशील देशों का मानना है कि अभी वे विकास की दौड़ में अन्य विकसित देशों से कहीं पीछे है। उनकी वर्तमान अर्थव्यवस्था की गति बनाये रखने के लिये उन पर उत्सर्जन लक्ष्य थोपना तर्कसंगत नहीं होगा। भारत सरकार पहले ही यह स्पष्ट कर चुकी है कि वह अपने ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में किसी प्रकार की कोई कटौती नहीं करेगा।

लेखक ने कोपेनहेगन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रुप में भाग लिया।

मुफ़लिसी

मुफ़लिस किसी का लड़का जो ले प्यार से उठा
बाप उसका देखे हाथ का और पांव का कड़ा
कहता है कोई 'जूती न लेवे कहीं चुरा'
नटखट, उचक्का, चोर, दग़ाबाज़, गठकटा
सौ–सौ तरह के ऐब लगाती है मुफ़लिसी

–नजीर अकबराबादी

भारत में उत्सर्जन तीव्रता में कटौती- वन व वन उत्पादों का योगदान

डॉ. राजीव पाण्डेय एवं श्री रघू रंजन राय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

जलवायु परिवर्तन मुख्यतः हरितगृह (ग्रीन हाऊस) प्रभाव का परिणाम है जिसमें पृथ्वी से टकराकर लौटने वाली सूरज की किरणों को वातावरण में उपस्थित कुछ गैसें जो कि हरित गैसें है, अवशोषित करती हैं, जिसके फलस्वरुप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होती है। 1975 में पहली बार जलवायु परिवर्तन की बात की गई और कार्बन उत्सर्जन में अधिकता को वैश्विक तपन का मुख्य कारण माना गया है। इस वैश्विक तपन से बचने के लिए 1997 में जापान के क्योटो शहर में विश्वव्यापी सम्मेलन आयोजित हुआ। इससे बचने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न तरह के मानकों का निर्धारण भी किया गया है।

कार्बन डाईआक्साईड, मिथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस आक्साईड मुख्य हरित गैसें हैं। नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, परिवहन के उन्नत साधन एवं उन्नत जीवनशैली आदि अन्य हरित गैसों के उत्सर्जन के मुख्य कारक हैं। इन हरित गैसों का उत्सर्जन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है वर्तमान समय में अमरीका का प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति हरित गृह गैसों का उत्सर्जन 20 टन के करीब है। जो कि रुस में 11.71 टन, चीन में 3.6 टन व भारत में 1.2 टन है। जिसका व्यापक प्रभाव मानव जीवन के ऊपर पड़ रहा है जिसके फलस्वरुप विश्व के हर देश इन गैसों के उत्सर्जन को कम करने का प्रयास कर रहे हैं।

भारत ने वर्ष 1990 से 2005 के बीच कार्बन उत्सर्जन तीव्रता में 17 प्रतिशत की कमी की है। इससे उत्साहित होकर भारत ने स्वैच्छिक रुप से वर्ष 2020 तक 20 से 25 प्रतिशत की उत्सर्जन तीव्रता में कटौती की घोषणा की है। साथ ही इस बात पर जोर दिया है कि यह कटौती कृषि क्षेत्र पर लागू नहीं होगी। बहरहाल, ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कृषि क्षेत्र का करीब 14 फीसदी तक का योगदान है। भारत ने कहा है कि वह उत्सर्जन कटौती के उपायों को लागू करेगा और कटौती के लक्ष्यों को पूरा करने के उपायों का ब्यौरा बाद में देगा। यह कटौती 2005 के स्तर की तुलना में की जाएगी।

उत्सर्जन तीव्रता प्रति इकाई आर्थिक क्रिया–कलाप के फलस्वरुप हरित गैस की उत्सर्जन की मात्रा है। यह मुख्यतः विकास के लिए किये गये कार्य और फलस्वरुप हरित गैसों के उत्सर्जन पर निर्भर करता है। अतः उत्सर्जन तीव्रता राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) स्तर पर मापा जाता है, जो कि राष्ट्र के कुल कार्बन उत्सर्जन में योगदान देने वाले दो मुख्य कारकों, ऊर्जा की तीव्रता और ईंधन मिक्स का समिश्रित सूचक है। उत्सर्जन तीव्रता को निम्न में रुप प्रदर्शित किया जा सकता है।

उत्सर्जन तीव्रता $= CO_2$ उत्सर्जन / सकल घरेलू उत्पाद

$=$ (ऊर्जा / सकल घरेलू उत्पाद) X (CO_2 उत्सर्जन / ऊर्जा)

$=$ ऊर्जा तीव्रता X ईंधन मिक्स

जहाँ ऊर्जा तीव्रता प्रति इकाई सकल घरेलू उत्पाद के लिए आवश्यक ऊर्जा की मात्रा है और ईंधन मिक्स प्रति इकाई ऊर्जा के फलस्वरुप CO_2 उत्सर्जन है।

अतः राष्ट्र की उत्सर्जन की तीव्रता मुख्यतः राष्ट्र की ऊर्जा तीव्रता पर निर्भर करती है। ऊर्जा की तीव्रता यह बताती है कि उत्सर्जन तीव्रता का मानक राष्ट्र की ऊर्जा क्षमता और उसके अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती है। अर्थव्यवस्था बड़े उद्योगों के लगने से मजबूत होती है। जिसमें अधिक ऊर्जा की मात्रा की आवश्यकता होती है। जिसके फलस्वरुप अधिक CO_2 का उत्सर्जन होता है। अतः कार्बन को कम करने का उपाय इस तरह से करने की आवश्यकता है जिससे अर्थव्यवस्था मजबूत हो और उत्सर्जन भी कम हो। उत्सर्जन कम करने के कई तरीके सम्भव हैं जिसमें मुख्य रुप से उत्सर्जन की मात्रा में कमी करना व वायुमण्डल में उपलब्ध CO_2 को अवशोषित करना सम्मिलित

है। दूसरा तरीका सेवा क्षेत्र में अवसरों की बढ़ोत्तरी करना है जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में इजाफा होगा, परन्तु उत्सर्जन कम होने की सम्भावना है।

उत्सर्जन तीव्रता को प्रभावित करने वाला दूसरा तथ्य ईंधन मिक्स (Fuel Mix) है। हम ईंधन के रुप में मुख्यतः कोयला, तेल, प्राकृतिक गैसों या लकड़ियों का उपयोग करते हैं। कोयला में कार्बन की मात्रा सबसे ज्यादा है बजाय कि तेल और प्राकृतिक गैसों के अगर दो देश ऊर्जा तीव्रता में समान हैं लेकिन अगर एक कोयले पर दूसरे के बजाय ज्यादा निर्भर करता है तो उसमें कार्बन की तीव्रता (Intensity) दूसरे के बजाय अधिक होगी। अतः पहले की उत्सर्जन तीव्रता ज्यादा होगी।

अतः कार्बन उत्सर्जन में कमी इस तरह से करनी होगी जिससे सकल घरेलू उत्पाद कम न हो और साथ ही साथ उत्सर्जन भी कम हो जाये। उक्त कटौती के लिए कई उपाय है जिनमे ऊर्जा खपत कम करने हेतु उन्नत तकनीकी का प्रयोग, परिष्कृत ईंधन का उपयोग मुख्य हैं। इसके अलावा कई तरह के उपाय वन और वन संबंधित उत्पादों के द्वारा किये जा सकते हैं। इनमें प्रमुख रूप से वनों का संरक्षण, वृक्षारोपण व काष्ठ के और अधिक उपयोग इत्यादि सम्मलित हैं।

उत्सर्जन कम करने की दिशा में संरक्षण की महती भूमिका है। इसमें मुख्य रुप से वनों के क्षय को रोकना अत्याधिक जरूरी है, क्योंकि वनों का क्षय भी उत्सर्जक के रुप में कार्य करता है। इनको रोकने के लिए वनों का सम्मुचित प्रबन्धन व बचाव आवश्यक है। इसके अलावा वनाग्नि रोकने के यथोचित उपाय से भी कार्बन उत्सर्जन में कमी की जा सकती है क्योंकि वनाग्नि भी कार्बन उत्सर्जन का एक माध्यम है। दूसरा तरीका लकड़ी के ईंधन के उपयोग में कटौती करके किया जा सकता है क्योंकि भारत की बहुतायत जनता लकड़ी का उपयोग खाना बनाने के ईंधन के रुप में करती है। अतः इसके उपयोग में कटौती करके या उपयोग बंद करके कार्बन के उत्सर्जन को घटाया जा सकता है। इसके कटौती के लिए संबंर्धित स्टोव का उपयोग, परिष्कृत जलावन लकड़ी का उपयोग, यथोचित/उपयुक्त प्रजाति का उपयोग किया जा सकता है। इससे न केवल कार्बन के उत्सर्जन में कमी आयेगी वरन घर के अन्दर का वातावरण भी कम प्रदूषित होगा जिसका सीधा संबंध लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ेगा व साथ में वनों का कटान भी कम होगा। साथ ही साथ सकल घरेलू उत्पाद भी कम नहीं होगा।

कार्बन उत्सर्जन में कटौती के उपायों में वृक्षारोपण अहम भूमिका अदा करता है। वृक्ष वातावरण में उपस्थित कार्बन को अवशोषित करके अपने अंदर संचित करते हैं। परती और बेकार जमीनों जैसे कि मरूस्थल (बालू के टीले), इत्यादि पर जहाँ कि जंगल नहीं है उन जगहों पर वैज्ञानिक तरीकों से वृक्षारोपण करें तो वहाँ की मृदा भी बचेगी और वृक्ष इत्यादि भी उगेंगे। इस तरह से कार्बन को अवशोषित करके कार्बन उत्सर्जन में कटौती की जा सकती है। कुछ भू–भाग पर ऊर्जा वृक्षारोपण (Energy Plantation) भी किया जा सकता है।

काष्ठ आधारित उत्पादों के उत्पादन और उनके ज्यादा से ज्यादा उपयोग के तहत भी कार्बन संचय व उत्सर्जन में कटौती की जा सकती है क्योंकि धातु के बने उत्पादों को बनाने में ऊर्जा की खपत होती है जिससे कार्बन का उत्सर्जन भी होता है इसके विपरीत काष्ठ के बने उत्पादों से हम उत्सर्जन घटाते भी हैं और कार्बन को कई वर्षों के लिए संचित भी कर लेते हैं। अतः ज्यादा से ज्यादा काष्ठ उत्पादों का भवनों व कार्यालय में उपयोग करके कुल उत्सर्जन में कमी की जा सकती है।

इसके अलावा कृषि वानिकी, नगर वानिकी और सड़क के किनारे वृक्ष लगाकर भी हम कार्बन संचय कर सकते हैं और साथ ही साथ उपस्थित प्रदूषण को कम कर सकते हैं। इससे भी उत्सर्जन कटौती में मद्द मिलेगी। प्रायः इन जगहों के लिए वृक्षों की ऐसी प्रजातियों का चयन किया जाना चाहिए जिनकी विकास की दर ज्यादा हो, आवर्तन अवधि (Rotation Period) कम हो। सामाजिकी वानिकी, सह वन प्रबन्धता, सुव्यवस्थित वानिकी विस्तार, के तहत भी हम कार्बन उत्सर्जन में कटौती कर सकते हैं। इससे सम्मुचित विकास का आधार भी मजबूत होगा।

उपर्युक्त तरीकों के द्वारा हम वन और वन उत्पादों से भी हम कार्बन उत्सर्जन में कटौती करके 2020 तक 2005 के कार्बन उत्सर्जन स्तर से 20–25 फीसदी तक की कमी ला सकते हैं। अतः वनों के योगदान पर व्यापक समीक्षा करके उक्त लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

शीत मरुभूमि स्पीती उपत्यका (हिमाचल प्रदेश) की प्रमुख स्थानीय बहुउद्देशीय पादप जातियाँ

डॉ. आर.एस.रावत
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

एवं

डॉ. वनीत जिस्टु
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

शीत मरुभूमि प्रायः उच्चशिखरीय शीत मरुभूमि के नाम से जानी जाती है, क्योंकि शीत मरुभूमि प्राकृतिक वृक्ष रेखा से ऊपर वाले भागों में स्थित है। शीत मरुभूमि जम्मू कश्मीर राज्य के लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के पूह उपमण्डल (किन्नौर) व लाहुल एवं स्पीती तथा उत्तराखण्ड राज्य के कुछ क्षेत्रों में विद्यमान है। शीत मरुभूमि में विभिन्न प्रकार की अद्वितीय जैवविविधता विद्यमान है जो देश के अन्य भागों में विद्यमान नहीं है इस प्रकार की अद्वितीयता को ध्यान में रखते हुये, अनेक मंचों पर शीत मरुभूमि को बायोस्पियर रिजर्व क्षेत्र घोषित करने की आवश्यकताओं को भी बल मिलता रहा है।

शीत मरुभूमि का सामान्य दृश्य

स्पीती घाटी के अल्पाइन चारागाह

स्पीती उपत्यका विभिन्न प्रकार के जीवाश्मों के लिए प्रसिद्ध है जिसको पूर्व कैम्ब्रियन काल में टैथिस समुद्र का हिस्सा माना जाता था। यह 31° 42''– 32° 58'' उत्तरी अक्षांश एवं 72° 21''– 78° 35'' पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। प्रान्तीय भाषा में 'स्पीती' शब्द का उच्चारण 'पीती' के रूप में किया जाता है। तिब्बती भाषा में 'पीती' शब्द का अर्थ मध्य क्षेत्र से है क्योंकि यह क्षेत्र लाहुल, लद्दाख, तिब्बत, किन्नौर एवं कूल्लू नामक स्थानों के मध्य में स्थित है।

पारिस्थितिकीय रुप से शीत मरुभूमि एक भंगुर पारितंत्र है। यहां की भंगुर व कर्कश प्रकृति एवं अधिकतम शीत कम से कम पादप आवरण को पोषित करती है, फिर भी यहां

शीत मरुभूमि : स्पीती घाटी

अनेक प्रकार की अद्वितीय दुर्लभ पादप प्रजातियां पाई जाती हैं। यहां ग्रीष्म ऋतु अल्प समय के लिए रहती है जो प्रायः मई से जुलाई तक रहती है और शरद ऋतु अधिकतम समय के लिए रहती है जो प्रायः अगस्त से लेकर अप्रैल तक रहती है। शरद ऋतु में न्यूनतम तापमान लगभग 30° सेंटीग्रेड तक रहता है जबकि ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम तापमान लगभग 30° सेंटीग्रेड तक रहता है। शरद ऋतु में अधिकांश भूभाग बर्फ से ढके रहते हैं। औसतन वर्षा 5–10 मिमी. के लगभग दर्ज की गई है।

स्पीती उपत्यका की मृदा 'अल्पाइन स्वार्ड' के नाम से जानी जाती है जो कि प्रायः उथली एवं शुष्क होती है। चिकनी दोमट, सिल्ट दोमट, सिल्ट चिकनी दोमट एवं बलुई दोमट प्रकार की मृदा पाई जाती है। मृदा मुख्य रूप से क्षारीय है और कार्बनिक पदार्थ बहुत कम मात्रा में विद्यमान होते है। स्पीती उपत्यका में पिनघाटी राष्ट्रीय उद्यान एवं किब्बर वन्य जीवजन्तु अभ्यारण भी है। जिनमें बर्फानी तेंदुआ, हिमालयन आइबेक्स, घोरल, बर्फानी मुर्गा इत्यादि वन्य जीवजन्तु पाये जाते हैं। यहाँ के अधिकांश लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं और परिवार के सबसे छोटे पुत्र को बौद्ध भिक्षु (लामा) बनाने के

लिए बौद्ध मट्ठों (गोम्पा) में भेजना अनिवार्य होता है। ताबो में 1000 साल से अधिक पुराना गोम्पा स्थित है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर आधारित है। वर्षभर में केवल एक ही फसल होती है जिसमें प्रायः जौ, मटर मुख्य रुप से

'की' गोम्पाः स्पीती घाटी

उगायी जाती है। मटर की फसल से अच्छी आमदनी की प्राप्ति होती है। ताबो वन परिक्षेत्र के कुछ भागों में सेब एवं खुर्बानी की खेती भी की जा रही है। वानिकी में शोध के लिए हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला का एक अनुसंधान केन्द्र ताबो में स्थित है जो कि यहां की स्थानीय पादप जातियों की पौधशाला एवं वृक्षारोपण तकनीकों पर अनुसंधान कर रहा है और साथ ही यहां की स्थानीय पादप जातियों के सर्वेक्षण के साथ–साथ संरक्षण पर भी अनुसंधान कर रहा है।

स्पीती घाटी में कृषि वानिकी

वानस्पतिक संपदा– स्पीती उपत्यका में वानस्पतिक सम्पदा हिमाचल प्रदेश के अन्य स्थानों की तुलना में नगण्य है। यहाँ की अधिकांश वनस्पतियाँ शुष्क, कंटीली झाड़ीनुमा मरूद्भिद प्रकृति की है। यहाँ की जलवायु एवं मृदा इस प्रकार की वनस्पतियों के लिए उत्तरदायी है। यहाँ वो ही वनस्पतियां उग सकती हैं जो यहाँ की विषम परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती हैं। साधारणतया इस उपत्यका में प्राकृतिक वृक्षों का घनत्व बहुत कम है जिसमें भोजपत्र, धुम्ब, जूनिपर (सैकपा) एवं सैलिक्स विद्यमान है। पॉपलर, सैलिक्स, एलेन्थस एवं रोबिनिया इत्यादि को पौधारोपण अधिकांश भागों में मरुभूमि विकास परियोजना के तहत किया गया है। पॉपलर (पॉपुलस सिलिएटा) के चार विशालकाय वृक्ष स्पीती उपत्यका के विभिन्न स्थानों में विद्यमान है।

प्रमुख स्थानीय बहुउद्देशीय वनस्पतियां

स्पीती उपत्यका की कुछ प्रमुख स्थानीय बहुउद्देशीय वनस्पतियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :

1. इफेड्रा जिरारडियानाः कुल–इफिडिरेसी, स्थानीय नामः सोमलता।

यह अनावृत्तवीजी समुदाय की झाड़ीनुमा पादप है जो कि ताबो, हुरलिंग, लरी, पोह, काजा इत्यादि जैसे शुष्क स्थानों में पाया जाता है। इसका प्रयोग ब्रोंकाइटिस एवं अस्थमा के उपचार में किया जाता है।

इफेड्रा जिरारडियाना

2. एस्ट्रागैलिस ग्रोहमिनिस : कुल–फैवेसी, स्थानीय नाम : छीछर।

यह कँटीलीदार छोटा पादप है जो शुष्क स्थानों जैसे हंसा, क्योटो, लोसर, पोह, क्यूरिथ इत्यादि स्थानों में विद्यमान है इसके फूलों एवं बीजों का प्रयोग ज्वर में किया जाता है।

एस्ट्रागैलिस ग्रोहमिनिस

3. बेटुला यूटिलिस : कुल–बेटुलेसी, स्थानीय नाम : तकपा, तजपा।

यह एक छोटा वृक्ष है जो सरल, माने, जगुशा, पोमरंग इत्यादि स्थानों में विद्यमान है। इसकी लकड़ी का प्रयोग स्थानीय रूप से भवनों, कृषि यंत्रों, जलाने के लिए, टोकरी एवं झाड़ू बनाने में किया जाता है। इसकी छाल का प्रयोग भोज्य पदार्थों को ले जाने एवं लिखने में किया जाता था। अत्याधिक दोहन से यह पादप जाति संकटाग्रस्त हो चुकी है।

4. कैपेरिस स्पाइनोसा : कुल–कैपेरेसी, स्थानीय नाम : रोहतपा।

यह जमीन की सतह पर फैली हुई झाड़ीनुमा पादप है जो शुष्क स्थानों जैसे हुरलिंग, लरी, माने, पोह एवं ताबों में पाया जाता है। इसके कच्चे फलों का उपयोग अचार एवं सब्जी बनाने में किया जाता है। इसके बीजों का उपयोग जोड़ों के दर्द एवं यकृत के विकारों को ठीक करने में किया जाता है। इसकी जड़े जलाने के रूप में प्रयुक्त की जाती है।

कैपेरिस स्पाइनोसा

5. कैरागाना जिरारडियाना: कुल–फैवेसी, स्थानीय नाम : टेमा।

यह एक कँटीली झाड़ीनुमा पादप है जो ग्यू, हुरलिंग, ताबों, पोह एवं अतरगू इत्यादि स्थानों में विद्यमान है। इसकी पत्तियों को भेड़ व बकरियाँ चरती हैं। स्थानीय निवासी इसके फूलों को मधुर स्वाद के लिए खाते है इसके तने एवं जड़ें जलाने में प्रयुक्त की जाती है।

कैरागाना जिरारडियाना

6. कैरागाना ब्रिविफोलिया: कुल–फैवेसी, स्थानीय नाम : टेमा।

यह एक कंटीली झाड़ीनुमा पादप है जो किब्बर, क्याटो, लोसर इत्यादि स्थानों में विद्यमान है। इसकी पत्तियों को भेड़ व बकरियाँ चरती हैं। स्थानीय निवासी इसके फूलों को मीठे स्वाद के लिए खाते है। इसके तनें एवं जड़ें जलाने में प्रयुक्त की जाती है।

7. कोलुटियां नेपालेनसिस: कुल–फैवेसी, स्थानीय नाम : बरा।

यह एक कंटीली झाड़ीनुमा पादप है जो ग्यू, हुरलिंग, ताबों, पोह एवं अतरगू इत्यादि स्थानों में विद्यमान है। इसकी लकड़ी घरों की छतों को बनाने एवं जलाने में प्रयुक्त की जाती है।

कोलुटियां नेपालेनसिस

8. माइरिकैरिया जरमैनिका: कुल–टैमरेसी, स्थानीय नाम : होबुक।

यह झाड़ीनुमा पादप रेतीली नदीय तटों जैसे काजा, सिचलिंग, क्यूरिध, पोह इत्यादि स्थानों में विद्यमान है इसकी पत्तियों एवं फूलों का उपयोग खुशबू तथा गठिया वाय की दवाई के रूप में किया जाता है।

9. राइब्स एल्पेस्ट्रिस: कुल–सैक्सीफ्रेगेसी, स्थानीय नाम : यांगे।

यह झाड़ी नुमा पादप है जो ताबो, पोह, माने एवं कीब्बर इत्यादि स्थानों में पायी जाती है। इसके फलों को खाया जाता है। इसकी लकड़ी को घरों की छतें बनाने एवं जलाने में प्रयुक्त की जाती है।

राइब्स एल्पेस्ट्रिस

10.रोजा बैवियाना : कुल–रोजेसी, स्थानीय नाम : सिया।

यह कंटीली झाड़ीनुमा पादप है जो समदो, ग्यू, हुरलिंग, लरी, ताबो, क्यूरिथ, माने, लेदांग, सिचलिंग, लिगटी एवं काजा इत्यादि स्थानों में विद्यमान है।

रोजा बैवियाना

स्थानीय वैद्य (आमची) इसके फूलों का प्रयोग पेट दर्द की दवा के रुप में करते है। इसका प्रयोग चारदीवारी के रुप में भी किया जाता है।

11.रैमनस प्रोस्टेटा: कुल–रैमनेसी, स्थानीय नाम : कस्तो।

यह झाड़ीनुमा पादप है जो हुरलिंग, लरी, ताबो, क्यूरिथ, पोह, काजा, की, रंगरीक एवं लोसर इत्यादि स्थानों में पायी जाती है इसके तनों एवं जड़ों का उपयोग जलाने के लिए किया जाता है।

12. हिपोफी रैमनॉइडिस: कुल–इलैगनेसी, स्थानीय नाम : छरमा।

हिपोफी रैमनॉइडिस

यह एक झाड़ीनुमा पादप है जो नमी वाले स्थानों जैसे ग्यू, हुरलिंग, लरी, ताबों, क्यूरिथ, सिचलिंग, लेदांग,माने, पिन व काजा इत्यादि स्थानों में विद्यमान है इसका उपयोग खेतों में चारदीवारी, फलों को खाने व जूस बनाने एवं हर्बल चाय बनाने के किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग कृषि यंत्रों के हत्थे बनाने एवं जलाने में किया जाता है। लैह बैरी के नाम से बाजार में बिकने वाला जूस भी इसी के फलों से बनाया जाता है जबकि इससे निर्मित हर्बल चाय छेरिंग चाय के नाम से बाजार में बिकती है।

उपसंहार

स्पीती उपत्यका की अधिकांश स्थानीय वनस्पति जैसे बैटुला, जूनिपर इत्यादि संकटाग्रस्त होने के कगार पर है। यहां की अधिकांश वनस्पतियां प्रति एवं प्रातिक संसाधनों के संरक्षण की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (आई.यू.सी.एन.) की विभिन्न संकटाग्रस्त श्रेणियों में आ चुके हैं। जिनमें अर्निविया, डैक्टोलीराइजा, जैनषियाना, सौसेरिया, बेटुला, इफेड्रा जिरारडियाना, जूनिपर, रयुम और अकोनिटम इत्यादि हैं। अत्याधिक दोहन, अवैज्ञानिक संग्रह, अतिचराई एवं अति निर्माण कार्य इसका मुख्य कारण है। परदेशी पादप जातियां जैसे इलिगनस अंगुसटिफोलिया, पॉपुलस अल्बा, पॉपुलस नाइग्रा, पॉपुलस बालसमिफेरा, पॉपुलस यूफ्राटिका एवं सैलिक्स की जातियां इत्यादि को तलहटियों में बड़े स्तर पर पौधरोपण किये जाने की आवश्यकता है ताकि स्थानीय वनस्पतियों के अत्याधिक दोहन को कम किया जा सके।

यहां की स्थानीय वनस्पतियों के पौधशाला एवं पौधरोपण की तकनीकी को विकसित करने के साथ–साथ स्थानीय लोगों की भागीदारी, स्थानीय प्रशासन, वन विभाग, शोध संस्थानों, गैर सरकारी संस्थाओं की सहायता से स्थानीय वनस्पतियों के वृक्षारोपण एवं संरक्षण को बढ़ावा देने की आवश्यकता है ताकि यह शीत मरुस्थलीय पारितंत्र पारिस्थितिकीय रुप से टिकाऊ, आर्थिक तौर से उपयुक्त एवं सामाजिक रुप से स्वीकार्य बन सके।

गाँवों के आस–पास सैलिक्स का रोपण

वनों पर आश्रित मानव जाति

डॉ. सतेन्द्र देव शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्रकृति ने मानव जाति को वन के रुप में एक अमूल्य निधि प्रदान की है। वृक्षों में प्राणी की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करने की अद्‌भुत क्षमता है। वनों के अनगिनत लाभों में से कुछ प्रत्यक्ष तथा कुछ अप्रत्यक्ष लाभ है। इमारती लकड़ी जलाऊ लकड़ी, चारा, दवाईयाँ, फल, रेशे, मसाले, सुगंधित तेल, रंग इत्यादि प्रत्यक्ष रुप से जाने जा सकते हैं। अप्रत्यक्ष लाभ में मृदा एवं जल संरक्षण, प्रजातियों की सुरक्षा, जैव विविधता, वातावरण सन्तुलन, रोजगार के अवसर, ग्रीन हाऊस गैसों के दुष्प्रभाव को दूर करना, मृदा की उपजाऊ शक्ति बढ़ाना, प्रदूषण को नियन्त्रित करना, अध्यातम, मनोरंजन, वन्य जीवन इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है।

आज केवल भारतवर्ष ही नहीं, बल्कि पूरी पृथ्वी ऐसी अनेक समस्याओं से त्रस्त है जो वातावरण की प्रतिकूलता से जुड़ी है और जिनका दुष्प्रभाव सीधा मानव जाति पर पड़ता है। स्वच्छ जल की कमी, प्रदूषण की अधिकता, वायुमंडल का बढ़ता तापमान और ओजोन पर्त का कमजोर होना ऐसी चुनौतियां हैं जिनका हल न कर पाने की दशा में मानव का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। वनों का विनाश, औद्योगिकीकरण की तेज रफ्तार और बढ़ती जनसंख्या इन समस्याओं के मुख्य कारण है तथा वन क्षेत्रों को बढ़ा कर हम इस चुनौती का सामना कर सकते हैं। जिस क्षेत्र में वृक्ष पर्याप्त संख्या में होते हैं, वहाँ की मृदा की जल संग्रहण की क्षमता अधिक होती है जिससे जल की उपलब्धता में बढ़ोतरी होती है तथा सूखे मौसम में भी जल उपलब्ध रहता है। वृक्षों में वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण को नियन्त्रित करने की विशेष क्षमता होती है।

ग्रीन हाऊस प्रभाव एक ऐसी चुनौती है जिसके दुष्परिणाम पृथ्वी के लिए विशेष रूप से खतरनाक है। कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, जल वाष्प आदि मुख्य ग्रीन हाऊस गैस है। साधारण दशा में सूर्य की किरणें पृथ्वी पर पहुंच कर गर्मी प्रदान करती है और गरमी का कुछ भाग वापिस आकाश में लौट जाता है, जिससे धरती का तापमान एक निश्चित दशा में बना रहता है। जब वायुमण्डल में ग्रीन हाऊस गैसों, विशेष रुप से कार्बन डाईऑक्साईड की मात्रा बढ़ जाती है तो सूर्य की किरणें जो गरमी के रुप में वापिस आकाश की ओर जाती हैं, वे वायुमण्डल में ही सोख ली जाती है जिससे वायुमण्डल का तापमान बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया को ग्रीन हाऊस प्रभाव कहते है। इस प्रभाव के फलस्वरुप वायुमण्डल का तापमान पिछले 100 वर्षों में 0.7 से 2.0° सेन्टीग्रेट बढ़ चुका है, लेकिन आजकल जिस गति से ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन हो रहा है, उससे एक दशक में वायुमण्डल का तापमान 0.2 से 0.5 सेन्टीग्रेट बढ़ सकता है। इसका प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ेगा। ग्लेशियर के पिघलने, उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों पर बर्फ के पिघलने तथा समुद्र के गरम होने से समुद्र तल की ऊँचाई पर बसे हुए शहर और देश डूब जायेंगे। पिछले 100 वर्षों में समुद्र का जल स्तर 10 से 20 सेमी. बढ़ चुका है। भूमि कटाव, भीषण तूफान, जल की कमी तथा द्वीपों का शुष्क और गरम होना इसके अन्य दुष्प्रभाव हैं।

ग्रीन हाऊस गैसों में प्रमुख गैस कार्बन डाईऑक्साईड है जो कार्बनिक द्रव्यों के जलाने से, औद्योगिक कार्यकलापों से तथा वनों के विनाश के कारण वायुमंडल में बढ़ती जा रही है। वृक्ष प्रकाश संशलेषण की क्रिया के द्वारा अपना भोजन तैयार करते हैं और इस क्रिया में वायुमंडल से कार्बन डाईऑक्साईड लेते हैं। यह कार्बन डाईऑक्साईड वृक्ष में लकड़ी के रुप में संग्रहित हो जाती है। इस प्रकार वृक्ष वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साईड की मात्रा निरन्तर कम करते रहते हैं। हमारे देश के वनों ने अपने अन्दर लगभग 1084 मिलियन टन कार्बन को समाया हुआ है और प्रतिवर्ष 43 मिलियन टन कार्बन को संग्रहित करने की क्षमता रखते

हैं। वृक्षों के अलावा वन मृदा भी कार्बन को भारी मात्रा में समाये रखती है। वन मृदा में लगभग 9908 मिलियन टन कार्बन का संग्रह है। यहां यह बात भी ध्यान रखनी होगी कि वृक्ष और मृदा कार्बन का केवल संग्रह ही नहीं करते, उसका उत्सर्जन भी करते रहते है। मृदा में कार्बनिक द्रव्य का विघटन, वृक्षों द्वारा सांस लेने की क्रिया तथा लकड़ी के जलाने से कार्बन का उत्सर्जन होता रहता है। पिछले कुछ दशकों में वनों के विनाश होने से वनों में संग्रहित कार्बन की मात्रा में गिरावट आई है, अतः यह आवश्यक है कि वृक्षारोपण की गति को बढ़ाया जाऐ ताकि ग्रीन हाऊस प्रभाव को कम किया जा सके।

लगभग 40 करोड़ लोग, जो वनों के भीतर या वनों के आसपास रहते हैं, अपनी आजीविका तथा आय के लिए वनों की अकाष्ठ वनोपज पर पूरी तरह या आंशिक रुप से निर्भर हैं। जड़ी बूटियाँ, रेशे, सुगंधित तेल, बीज, फल इत्यादि वनों से प्राप्त होने वाले मुख्य अकाष्ठ वनोपज हैं। अकाष्ठ वनोपज लगभग 30 प्रतिशत ग्रामीणों की आय का 50 प्रतिशत हिस्सा है। उड़ीसा, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा बिहार में वनों पर निर्भर रहने वाले लोगों में से 80 प्रतिशत लोग केवल अकाष्ठ वनोपज पर ही आश्रित हैं। वन क्षेत्र में उपलब्ध रोजगार के अवसरों में से 50 प्रतिशत अवसर अकाष्ठ वनोपज से ही जुड़े हुए हैं। 5 करोड़ आदिवासियों के भोजन, दवाई और आय का 60 प्रतिशत भाग अकाष्ठ वनोपज से ही प्राप्त होता है। तेन्दू पत्ता, जो कि बीड़ी बनाने में प्रयोग होता है, अकाष्ठ वनोपज द्वारा अर्जित आय का एक विशेष स्रोत है। प्रतिवर्ष 35,000 टन तेन्दू पत्ता वनों से एकत्रित किया जाता है जिसकी कीमत 200 मिलियन अमरीकन डालर के बराबर आंकी गई है। मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश से प्रतिवर्ष 4700 टन तेन्दू पत्ते का निर्यात किया जाता है। भारतवर्ष में जितने अकाष्ठ वनोपज प्रयोग होते हैं उनकी कीमत 35,000 मिलियन रुपये प्रति वर्ष है।

वन तथा वनों से संबंधित क्रियाकलापों में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रोजगार के असंख्य अवसर है। ऐसा अनुमान है कि वन क्षेत्र तथा अन्य सरकारी भूमि पर वन विकास से संबंधित कार्यों से 250 मिलियन व्यक्ति–दिवस प्रतिवर्ष रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं। कृषि वानिकी जैसे क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 75 मिलियन व्यक्ति–दिवस के बराबर रोजगार मिलता है। इसके अतिरिक्त वनों की सुरक्षा, रख रखाव और कटान के कार्यों में 100 मिलियन व्यक्ति–दिवस के अवसर निकलते है। अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर भी बहुत अधिक हैं। हमारे देश में लगभग 25 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन यापन करते हैं। इनमें से अधिकतर लोग पहाड़ों में तथा अनुपजाऊ क्षेत्रों में रहते हैं। वन उनके रोजगार तथा आय का एकमात्र स्रोत हैं।

भारतवर्ष में ऊर्जा की कुल मांग का लगभग 40 प्रतिशत भाग वनों से प्राप्त ईंधन के द्वारा होता है। इसमें से 68.75 प्रतिशत घरों में तथा शेष व्यवसायिक क्षेत्रों में प्रयोग होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 70 से 80 प्रतिशत लोग खाना बनाने के लिए तथा गरमी प्राप्त करने के लिए लकड़ी जलाते हैं। मवेशियों को खिलाने के लिए प्रतिवर्ष 932 मिलियन टन हरा चारा तथा 780 मिलियन टन सूखे चारे की आवश्यकता होती है। इसमें से 682 मिलियन टन हरे चारे और 366 मिलियन टन सूखे चारे की आपूर्ती वनों से ही होती है।

भारतवर्ष का कुल भाग क्षेत्र 329 मिलियन हैक्टेयर है और इसमें से 68.75 मिलियन हैक्टेयर वन क्षेत्र हैं। अपने देश की जनता की मांगों की आपूर्ति करने के लिए तथा वातावरण को अनुकूल बनाए रखने के लिए कम से कम 110 मिलियन हैक्टेयर पर वन होने चाहिए। इसका मतलब है कि हमें लगभग 50 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में अभी और वनीकरण करना है। यह कार्य इतना बड़ा है कि केवल सरकार पर इस उत्तरदायित्व को छोड़ कर हम अपने कर्तव्य से मुँह नहीं फेर सकते। देश हम सब का है और इस की प्रगति, समृद्धि और खुशहाली में योगदान करना हम सब का नैतिक उत्तरदायित्व है। हमारे देश का विशाल जन समूह, जिसकी संख्या 100 करोड़ से अधिक है, वनीकरण को सरलता से तथा शीघ्रता से बढ़ा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति एक वृक्ष लगाऐ तो देश में 120 करोड़ से अधिक वृक्ष लग सकते हैं। आवश्यकता है तो वनों के महत्व को समझने की और वृक्षारोपण को जन आन्दोलन का रूप देने की। भारत माता के बच्चों और युवाओं में इस महान कार्य को सम्पूर्ण करने की क्षमता है और देश उनकी ओर आशाभरी निगाहों से देख रहा है।

घटते वन-घटती वर्षा : दून घाटी के लिए जल संकट की चेतावनी

डॉ.(श्रीमती) लक्ष्मी रावत
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

क्यों रुठ गई है वर्षा दूनवासियों से ? जहाँ निरन्तर अत्यधिक वर्षा के कारण ढलवां छतें बनाई जाती थीं ऐसे दून में निरन्तर घटती वर्षा के कारण यह प्रश्न सभी के मस्तिष्क में उठना स्वभाविक है। यह विषय आज और भी अधिक प्रासंगिक हो चुका है, विशेषकर 2009 में हुई कम बारिश दूनवासियों से यह कहना चाह रही है कि मेरे रुठने का कारण जानने की कोशिश करो तो शायद जल संकट से उबर पाओ।

हमारे देश में मानसून की वर्षा लगभग 85 प्रतिशत (वर्षा के समस्त वर्षा की) होती आई है। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री सर एडमण्ड हैली ने 1686 में निष्कर्ष निकाला था कि मई में हवा का प्रवाह नाटकीय ढ़ंग से उल्टा होने के कारण हिन्द महासागर के मुकाबले एशियाई भूमि तेजी से गरम हो जाती है एवं इस क्षेत्र में हवा का तीव्रतम चक्र बन जाता है, जिससे इस क्षेत्र में हिन्द महासागर की नम हवा मानसून ले आती है। आई.एम.डी. ने वर्ष 1988 में मानसून की भविष्यवाणी हेतु 16 मानकों को आधार बनाकर एक सांख्यिकीय माडल तैयार किया था जो कुछ वर्षों तक सफल रहा लेकिन पिछले कुछ वर्षों में हुए जलवायु परिवर्तन ने उनकी मानसून सम्बन्धी भविष्यवाणी पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। उन्हें अपने माडल को हर वर्ष जलवायु परिवर्तन के विभिन्न कारणों व उनके संभावित परिणामों को ध्यान में रखकर परिवर्तित करना होगा, इस वर्ष (2009) भी उनकी मानसून सम्बन्धी भविष्यवाणी निराधार साबित हुई है।

अन्य शहरों की तरह दून घाटी का स्वरुप भी पिछले 25–30 वर्षों में काफी बदल चुका है, विशेषकर उत्तराखण्ड राज्य की राजधानी बनने के बाद जनसंख्या में अचानक वृद्धि, भवनों का अंधाधुंध निर्माण, यहां तक कि लगभग लुप्त हो चुकी नदियों के ऊपर भी भवन निर्माण हो चुके हैं। लीची के बगीचे, चाय के बागान, बासमती के खेत बीती बातें हो चुके हैं। अस्सी के दशक तक दून घाटी में तापमान के बढ़ते ही शाम को बारिश हो जाया करती थी, जो पिछले कुछ सालों में खत्म हो गई।

दून घाटी में, जो कि शिवालिक व हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी हुई है, तापमान बढ़ते ही नदियों नालों/नहरों से वाष्पीकरण बढ़ने के कारण नम हवा इन पहाड़ियों से टकराकर वर्षा के रुप में घाटी में बारिश किया करती थी, पिछले कुछ वर्षों में नदियों (टांस, रिस्पना तथा बिन्दाल आदि) में नाममात्र को पानी रह गया है व सिंचाई की नहरें, जो शहर के कई क्षेत्रों में फैली हुई थी, भूमिगत कर दी गई हैं। अव्यवस्थित कंक्रीट के जंगल जहां–तहां फैल चुके हैं, विकास के नाम पर भवनों के जंगल खड़े हो रहे हैं, जो नदियों, जंगलों, बासमती के खेतों, लीची के बगीचों आदि को लील चुके हैं।

जिस दून घाटी में सामान्य वर्षा 2000 मिमी. व इससे अधिक हो जाया करती थी वह आज वर्षा के लिए तरस रही है। गर्मियों के महीनों में पेय जल की किल्लत दिनों दिन बढ़ती जा रही है, वर्ष 2009 के सूखे को लेकर विभिन्न समाचार पत्र–पत्रिकाओं व दूरदर्शन के चैनलों में बहुत कुछ लिखा व कहा गया है।

सन् 2002 में जुलाई के महीने में पिछले 72 वर्षों (1931–2002) की न्यूनतम वर्षा (121.5 मि.मी.) रिकॉर्ड की गई, इस वर्ष (2009) अगस्त माह तक वर्षा साल के पचास प्रतिशत से भी कम हुई है। जबकि सिर्फ जुलाई–अगस्त महीनों में ही कुल वर्षा का आधे से अधिक (61–66 प्रतिशत) 1931–2000 तक के 7 दशकों में रिकॉर्ड के आधार पर (रावत, 1998) की गई है। 2007 में बहुत अच्छी बारिश (2173 मि.मी.) हुई थी तो 2008 में कम (1752 मि.मी.), 2009 में पिछले 10 सालों (2000–2009) की सबसे कम वर्षा (1353 मि.मी.) व सबसे कम (63) रैनी डे (Rainy Day) रिकॉर्ड की गई है।

वन अनुसंधान संस्थान के मौसम प्रेक्षणालय के आंकड़ों के अनुसार पिछले दशक के वर्षा के आंकड़े तालिका 1 व 2 में दिखाए गए है:

तालिका 1: पिछले 10 सालों (2000–2009) की वर्षा के आंकड़े

2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009
2195	1825	1375	1805	1816	1894	1530	2173	1752	1353

तालिका 2: पिछले 10 सालों (2000–2009) की रैनी डे (Rainy Day)

2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009
88	82	73	85	73	83	68	76	89	63

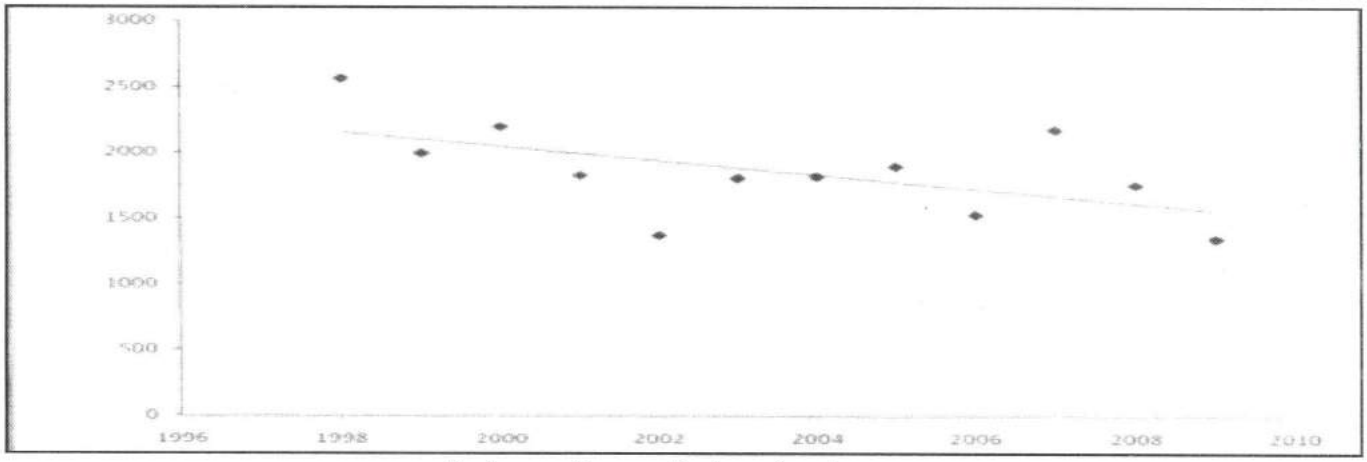

पिछले दशक में दून घाटी की घटती वर्षा का ग्राफ

मौसम विभाग के अनुसार वर्ष 2009 में मानसून का आगमन समय पर होना था, यहां तक कि दूरदर्शन का नैशनल न्यूज चैनल कई दिनों तक उत्तराखण्ड में बारिश का आगमन जून के महीने में दिखाता रहा, जबकि आधे जुलाई तक यहां मानसून का कहीं नामोनिशान तक नहीं था। मानसून के पूर्व–कथन (forecast) के जितने भी मॉडल विकसित किये गये हैं वे सभी इसकी भविष्यवाणी करने में विफल रहे हैं, शायद प्रकृति मानव को यह जताना चाहती है कि तुम मुझे चुनौती नहीं दे सकते, मैं तुम्हें चुनौती दे सकती हूँ।

पेयजल की किल्लत समूचे उत्तराखण्ड राज्य के लिए एक ज्वलन्त समस्या बन चुकी है। विकास के साथ हम अपने पारंपरिक जल संचय के साधन, जैसे कुंए, नलें आदि जो लगभग हर गांव में होते थे, उन्हें भुला चुके है। बांज के जंगलों के अवैध कटान, जलवायु परिवर्तन का बांज के वनों पर प्रभाव आदि के कारण भूमिगत जल संचय न होने के कारण जो जल पहले से संचित था, उसका निरन्तर दोहन होने के कारण पेय जल समस्या सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही है।

आने वाले समय में जल के लिए तीसरा विश्व युद्ध छिड़ने की पूरी सम्भावना नजर आ रही है। इस तीसरे विश्व युद्ध को टालने के लिए हमें अभी से अपने भूमिगत जल संचय को बढ़ाने के कारगर उपाय खोजने व करने होंगे। हमें अपने परंपरागत नलें, कुंओं को जीवित करने होंगे। हर घर में वर्षा के पानी को संचय करने की संरचनाएं बनानी होंगी ताकि पीने के अलावा अन्य कार्यों में हम उस पानी का उपयोग कर सकें। स्वच्छ व उपलब्ध पानी का उपयोग केवल पीने के लिए हो। तरणताल व पानी का उपयोग करने वाले खेल (Water Games) बन्द करने होंगे, क्योंकि जहां देश की एक बड़ी आबादी पीने के पानी के लिए तरस रही है, वहीं दूसरे संभ्रान्त लोग केवल मौज मस्ती के लिए इतने सारे पानी का दुरुपयोग करें, यह निरन्तर कम हो रहे पानी का गलत उपयोग ही कहलाएगा।

सरकार को अभी से कठोर नियम बनाने व उसको पालन करवाने के लिए ठोस कदम उठाने होंगे, तभी हमारे होंठ व गला पानी से तर रह पायेंगे वरना "बिन पानी सब सूना" ही होगा।

दक्षिण राजस्थान स्थित अरावली पर्वतमाला का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान : एक अध्ययन

डॉ. प्रदीप चौधरी एवं श्री मनीष मेहरा

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

राजस्थान राज्य का 10% से कम क्षेत्रफल वन आवरण के अंतर्गत आता है जबकि इस राज्य में संपूर्ण भारतवर्ष के सबसे अधिक पालतू व दुधारू पशु पाए जाते हैं। राज्य में 90% से अधिक जनसंख्या भोजन पकाने की ऊर्जा की अपनी जरुरतें जलाऊ लकड़ी से पूरी करती है। इन सभी कारणों से यहाँ पाए जाने वाले वनों पर मनुष्यों व पशुओं की जरुरतें पूरी करने हेतु अत्यधिक दबाव है।

राज्य के अधिकतर वन अरावली पर्वतमाला में पाए जाते हैं व इन प्राकृतिक वनों के द्वारा बड़ी मात्रा में अकाष्ठ वनोपज पैदा होती है जिस पर इस क्षेत्र की मानव जाति व पशुधन निर्भर करता है। शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर द्वारा एक अध्ययन के दौरान यह जानने का प्रयास किया गया कि अरावली क्षेत्र में अकाष्ठ वनोपज एक गरीब आदिवासी परिवार की वार्षिक आमदनी में कितना योगदान देती है। यह अध्ययन अरावली क्षेत्र के तीन वन मण्डलों जिसमें उदयपुर (मध्य), बांसवाडा व प्रतापगढ़ शामिल हैं, में 2006–08 के दौरान किया गया जिसमें लगभग चार हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में फैले बारह सौ से अधिक वनों पर निर्भर गांव शामिल थे। इस अध्ययन को वन विभाग, राजस्थान द्वारा वित्त पोषित किया गया। ग्रामीण परिवारों व सांझा वन प्रबंध समिति सदस्यों के बीच सर्वेक्षण के माध्यम से जानकारी एकत्र की गई। इस जानकारी में ग्रामीण परिवारों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, पशुधन, कृषि भूमि, कृषि उपज, शिक्षा आदि व परिवार द्वारा जंगल से एकत्र की जाने वाली अकाष्ठ वनोपज जिसमें जलाऊ लकड़ी व पशुओं का चारा भी शामिल था, को शामिल किया गया। सर्वे के दौरान पाया गया कि एक गरीब आदिवासी परिवार जिसमें औसतन 6 से 7 सदस्य शामिल थे, लगभग 9.40 किलो जलाऊ लकड़ी ईंधन के रूप में प्रतिदिन इस्तेमाल करता है। खेती, मजदूरी, दूध विक्रय व वनोपज एकत्र करना मुख्य जीविका के साधन पाए गए। इस क्षेत्र में 80% से अधिक आदिवासी परिवार अकाष्ठ वनोपज एकत्र करते पाए गए। अधिकांश आदिवासी परिवार गरीबी की हालत में पाए गए व अकाष्ठ वनोपज का इन परिवारों की वार्षिक आमदनी में कम से कम तीस से पैंतीस प्रतिशत तक का योगदान पाया गया। लगभग वर्ष पर्यन्त गरीब आदिवासी परिवार अकाष्ठ वनोपज एकत्र करते हैं व ₹ 20/– से ₹ 100/– तक प्रतिदिन इससे कमाते हैं। महत्वपूर्ण अकाष्ठ वनोपज में तेंदू पत्ता, महुआ फूल व बीज, रतनजोत बीज, पुआड़ बीज, आंवला, सीताफल, शहद, गोंद, किंकोड़ा फल व ढाक के पत्ते प्रमुख हैं। यह भी पाया गया कि एक औसत आदिवासी परिवार एक हजार किलो प्रतिवर्ष से अधिक घास जंगलों से अपने पशुओं के लिए एकत्र करता है।

सर्वेक्षण व उसके उपरान्त आंकडों के आंकलन से यह ज्ञात हुआ कि उदयपुर (मध्य), प्रतापगढ़ व बांसवाडा वन मंडलों में अकाष्ठ वनोपज एक आदिवासी परिवार, जिसकी वार्षिक आमदनी ₹ 17500/– से कम है उसे क्रमशः ₹ 5965, ₹ 4994 व ₹ 3678 का वार्षिक सहारा देते हैं। एकत्र आंकड़ों से यह भी ज्ञात हुआ कि अरावली पर्वतमाला के जंगलों से लगभग तीन हजार रूपये प्रति हैक्टेयर मूल्य के वनोपज प्राप्त होते हैं, जिसमें चारा व जलाऊ लकड़ी भी शामिल है। यह तथ्य अपने आप में अति महत्वपूर्ण है क्योंकि अरावली के जंगल केवल इमारती लकड़ी व बांस ही नहीं वरन् अकाष्ठ वनोपज की दृष्टि से भी समृद्ध हैं व गरीब आदिवासी परिवारों का सहारा है।

इस क्षेत्र के बड़े–बुजुर्गों के अनुसार पिछले 20 वर्षों में अनेक अकाष्ठ वनोपज प्रजातियों की उपलब्धता में काफी गिरावट आई है जिसमें खैर, सालर, अरीठा, धावरा, पनीर बंध, सफेद मूसली, बांस व आंवला प्रमुख हैं। वन विभाग, राजस्थान को इन प्रजातियों के कृत्रिम व प्राकृतिक पुनरुद्भवन पर अधिक ध्यान देना होगा। अध्ययन के दौरान यह भी पाया गया कि गरीब आदिवासी अधिकतर अकाष्ठ वनोपज राजस्थान की सहकारी समितियों को बेचने के बजाय क्षेत्र के व्यापारियों को औने–पौने दामों में बेच देते हैं। स्वयं सहायता समूह, स्वयं सेवी संगठन व वन विभाग इस क्षेत्र में आदिवासी परिवारों द्वारा वनोपज की समुचित ग्रेडिंग व मूल्य संवर्धन के बारे में अधिक सक्रिय रोल अदा कर सकते हैं ताकि गरीब आदिवासी परिवारों को अकाष्ठ वनोपज का उचित दाम मिल सके एवं उनकी आर्थिक दशा बेहतर हो सके।

आंवला (*Emblica officinalis*) : नर्सरी निर्माण व रोपण

डॉ. ताराचन्द एवं श्री आलोक यादव
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट, असम

आंवले का वृक्ष सम्पूर्ण भारत में शुष्क, और अति शुष्क अवस्थाओं को छोड़कर, सभी जगह पाया जाता है। यह वृक्ष छोटे या मझौले आकार का 5–6 मी. ऊँचा होता है। इसकी छाल चिकनी, धूमिल और अपशल्की (Peeling off) होती है। पत्तियाँ पंखदार, हल्की हरी, पर्णपाती होती है। पुष्प हरे, पीले, झुण्ड में जो कि पत्तियों वाली उपशाखा में पत्तियों के नीचे खाली भाग में लगे रहते हैं। फल गोलाकार, तथा गुटली 6 घाटियों वाले तीन भागों मे विभक्त होती हैं, जिसमें दो बीज होते है।

महत्व

आंवले के फल का उपयोग, मुरब्बा, चटनी, जैम, आचार, सिरप आदि पदार्थ तैयार करने में होता है। आंवला च्यवनप्राश और त्रिफला नामक आयुर्वेदिक औषधियों का प्रमुख घटक है। प्राचीन ग्रथों में इसे शिवा (कल्याणकारी), व्यवस्था (अवस्था को बनाए रखने वाला) तथा धात्री (माता के समान रक्षा करने वाला) कहा गया हैं। जंगली आंवला औषधि के रुप में अधिक लाभदायी पाया गया है।

इसकी पत्तियों को पशु आहार के रुप में भी उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों में खनिज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पत्तियों में राख 4.48, कैल्सियम 1.93, कार्बन 47.99 और नाईट्रोजन 1.94 पाई जाती है। इसकी लकड़ी ईंधन के रुप में उत्तम होती हैं।

किस्में

इसकी प्रमुख प्रजातियाँ बनारसी, चकईया, फ्रांसिस, कृष्णा, कंचन, नरेन्द्र आंवला हैं।

जलवायु तथा भूमि

यह गर्म जलवायु का फल है। इस पर लू या पाले का कोई प्रभाव नहीं होता है। इसे पूर्ण प्रकाश आवश्यक होता है। यह सभी प्रकार की भूमि में पनप सकता है। लवणीय भूमि में 10 ई.सी.ई. तथा क्षारीय भूमि में 45 ई.एस.पी. तक सहनशील होता है। सूखे स्थलों के लिए विशेष रुप से उपयुक्त है। परती भूमि विकास के लिए अत्यन्त ही उपयोगी फल है।

आंवले की पौधशाला

प्रवर्धन

आंवले के पौधे बीज, स्टूलिंग, कलिकायन तथा शीर्ष उपरोपण से तैयार किए जा सकते हैं।

1. **बीज द्वारा :** बीज त्रिकोणीय, काले भूरे रंग के होते हैं। बीजों को जून के अन्त में बोया जाता है। सामान्य रुप में 30 दिनों में अकुंरण हो जाता हैं और एक वर्ष बाद पौधे लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं। इनमें कलिकायन भी किया जा सकता है।

2. **कलिकायन :** एक वर्ष के बीजू पौधों में पैबन्दी विधि द्वारा मई से अक्टूबर तक कलिकायन किया जा सकता हैं।

3. **शीर्ष उपरोपण :** पुराने और जंगली किस्मों के वृक्षों को शीर्ष उपरोपण द्वारा उन्नतिशील किस्मों मे परिवर्तित किया जा सकता है।

रोपण तकनीक

रोपण का अन्तर 9 X 9 या 11 X 11 मीटर तथा गड्ढों का आकार भूमि के अनुसार निश्चित किया जाता है। यदि भूमि मुरमवाली, पथरीली या कम उपजाऊ है। तो गड्ढों का आकार या गहराई बढ़ा देना चाहिए। गड्ढों में गोबर की खाद या कम्पोस्ट 30–40 किलो, सुपर फास्फेट एक किलो तथा म्यूरिऐट ऑफ पोटाश 0.5 किलो प्रति गड्ढा मिला देना चाहिए।

उपज

उत्पादन की दृष्टि से आवंले के वृक्ष से दस वर्ष की उम्र में 160 से 180 किलो फल/वृक्ष प्राप्त होता है। जंगली वृक्षों से प्रति वृक्ष 22–25 किलो उपज प्राप्त होती है। औसत रुप में उपरोपित वृक्ष से 200 किलो प्रति वृक्ष उपज होती है।

पौध संरक्षण

1. **आंवला गेरुआ** : इस बीमारी में पत्तियों के दोनों सतह पर भूरे दाग हो जाते है। जो बाद में फलों में भी फैल जाते है, और गहरे भूरे रंग के हो जाते है। इसके लिए डायथेन जेड–78 के घोल का छिड़काव करना चाहिए।
2. **नीली फफूँदी** : इस बीमारी में फलों में जल रिक्त क्षेत्र पर भूरे धब्बे बन जाते है। फल पूरे रुप में नीले हरे छाले युक्त हो जाते है। इसके नियंत्रण के लिए स्वस्थ वातावरण आवश्यक है। बोरेक्स या सोडियम क्लोराइड का घोल भी लाभदायी हो सकता हैं।

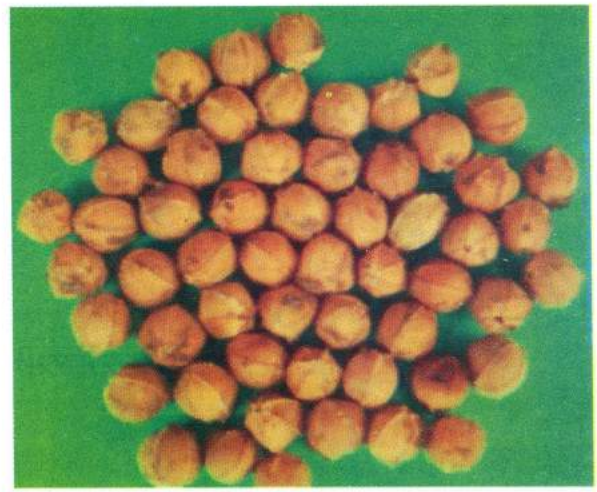

आंवले के बीज

आदमीनामा

एक

मसजिद भी आदमी ने बनायी है यां मियां
बनते हैं आदमी ही इमाम और खुत्बा–ख़्वां
पढ़ते हैं आदमी ही कुरान और नमाज़ यां
और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियां
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी

–नजीर अकबराबादी

वानिकी विस्तार कार्यक्रमों में जनसहभागिता एवं सामुदायिक गतिशीलता

श्रीमती संगीता त्रिपाठी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

वनों ने भारतीय कल्पना लोक में सदैव स्थान पाया है तथा हमारे देश के प्राचीन साहित्य तथा चित्रकला में भी इस महान विरासत का अनगिनत बार उल्लेख हुआ है। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति को अरण्य संस्कृति कहा जाता था अर्थात् वनों की गोद में उपजी और पर्यावरण के निकट साहचर्य में पल्लवित संस्कृति। इतिहास साक्षी है कि अथर्ववेद से लेकर कालीदास के साहित्य एवं विश्व के दोनों महाकाव्यों (रामायण एवं महाभारत) की रचना भी वनों में ही हुई। यह सर्वविदित है कि मनुष्य वनों के बिना नहीं रह सकता, केवल इसलिए नहीं कि वन प्राणदायिनी ऑक्सीजन का अमृतकोष लुटाते हैं और नीलकण्ठ के समान कार्बन डाईऑक्साईड के हलाहल को निगलते हैं, वरन् इसलिए भी कि वे अन्य जीवनदायिनी तत्वों–जलवायु की तीक्षणता को कम करते हैं, पानी को संजोकर रखते हैं, ऊर्जा को चलायमान रखते हैं और वायुमण्डल को शुद्ध रखते हैं। सम्पूर्ण प्राणी जगत का जीवन बल्कि ये कहिए कि उनका अस्तित्व ही वनों पर निर्भर है। वन हमारे पर्यावरण की वह अपरिहार्य कड़ी है जो हमारे प्राकृतिक संसाधन की रक्षा करती है। वर्तमान औद्योगिक युग में जब ये एहसान फरामोश मानव अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए प्रतिदिन वनों का अँधाधुँध दोहन कर रहा है। पर्यावरणविदों के अनुसार जहाँ कम से कम 33 भू–भाग पर वन होने चाहिए, वहाँ तेजी से वनों का विनाश कर विशालकाय भवनों का निर्माण और अन्य गतिविधियों के कारण वनों के घटते क्रम से प्रत्येक वर्ष तापमान में वृद्धि हो रही है, जिससे भूमि की जलक्षमता का ह्रास हो रहा है। वनों के निरन्तर कटाव से मानव को अनेक दुष्परिणाम झेलने पड़ रहे हैं, जिनसे आज विश्व समुदाय भली–भाँति परिचित है।

राजस्थान का एक भू–भाग मरुस्थलीय है तथा काफी बड़ा हिस्सा ऐसा है जहाँ मृदा संरक्षण एवं जल संग्रहण की अपेक्षित व्यवस्था के अभाव के कारण अकाल की संभावना बनी रहती है। राज्य में अपेक्षाकृत बरसात कम होने से जलसंग्रहण एवं उसका प्रभावी दोहन राज्य की प्राथमिकता है। यद्यपि मरुस्थल विकास कार्यक्रम, जलग्रहण विकास कार्यक्रम, साझा वन प्रबंधन आदि कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण जनता की संपूर्ण भागीदारी से, उनके द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं को देखते हुए विशेषज्ञों के परामर्श के साथ जलग्रहण, मृदा संरक्षण एवं विभिन्न–विभिन्न वनोपजों का दोहन इस प्रकार किया जाए जिससे एक तरफ जल संचय की सम्भावना बढ़े एवं भूतल का ह्रास रुके और दूसरी तरफ वैज्ञानिक पद्धतियों और तकनीकी विकास के लाभ के उपयोग से क्षेत्र की उत्पादकता में बढ़ोतरी हो। अतः इस अथाह थार मरुस्थल में जहाँ कि वर्षा अनियमित एवं अनिश्चित होती है, और दूर–दूर तक सिर्फ रेत के धोरे होते हैं, यहाँ तक कि पानी का नामों–निशान भी नहीं मिलता, वानिकी विस्तार कार्यक्रमों का महत्व स्पष्टतः और भी अधिक बढ़ जाता है।

यह एक अटल सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज उसके लिए आवश्यक भी है और अनिवार्य भी। चूँकि वानिकी विस्तार कार्यक्रम प्रत्यक्षतः जनभागीदारी पर आधारित होते हैं, अतः इसके लिए यह नितांत आवश्यक है कि परियोजनाओं से संबंधित लाभों का सम्प्रेषण प्रभावी हो। वस्तुतः जनहित में स्वजन सहयोग द्वारा किया गया कोई भी कार्य जिसका मूल आधार जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिये हो, वह कार्य जन सहभागिता की संज्ञा में आता है। सामान्यतः किसी भी समुदाय में दो प्रकार के जन समूह विद्यमान होते हैं :

(1) प्राथमिक समूह

(2) द्वितीयक समूह

प्राथमिक समूहः प्राथमिक समूह के सभी सदस्य आपस में एक–दूसरे से परस्पर सामाजिक अंतः क्रियाओं (Social Interactions) द्वारा संबंधित रहते हैं। समूह के सदस्यों में 'हम' व एकता की भावना होती है।

द्वितीयक समूह : इस समूह के सदस्यों में आपस में एक–दूसरे से परस्पर अंतःक्रिया बहुत ही कम होती है।

द्वितीयक समूह को जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु भागीरथ प्रयास करने पड़ते हैं क्योंकि उन्हें उन व्यक्तियों के लिए कार्य करना पड़ता है जिनसे उनकी परस्पर अंतःक्रिया बहुत ही कम होती है। अतः सक्रिय जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु हमें निम्नांकित प्रयास करने होंगे:

किसी भी समुदाय में सामुदायिक गतिशीलता लाने में प्राथमिक समूह का अत्यंत योगदान होता है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी समाज के उत्तरोत्तर विकास के लिये प्राथमिक जन समूह में ऊर्ध्वगामी सामाजिक गतिशीलता का होना अत्यंत आवश्यक है। अतएव सांस्कृतिक विरासत को कायम रखते हुये स्थानीय जनता की योग्यता व क्षमता का पूर्ण उपयोग, स्थानीय संसाधनों का अनुकूलतम एवं मितव्ययतापूर्ण उपयोग, उनकी आवश्यकताओं का आकलन आदि ग्रामीण समुदाय को एकत्रित करके ही संभव हो सकता है, यदि उनके कार्य उन्हीं से करवाये जाएं तो निश्चित रूप से परिणाम भी शीघ्र एवं आशानुरूप ही प्राप्त होंगे। उन पर दूसरों के निर्णय थोपने से न तो उनकी पूर्ण भागीदारी प्राप्त होती है और न ही कार्यक्रम को वृहत् स्तर पर सफलतापूर्वक संचालित किया जा सकता है। जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु हमें निम्नांकित प्रयास करने होंगे :

1. **वार्ता द्वारा जागरुकता :** संबंधित जलग्रहण क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और तर्कसंगत उपयोग के लिये यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय को एकत्रित करके उनसे बातचीत के माध्यम से ग्रामीण विकास की संभावनाओं को उजागर किया जाए। इससे लोग एकत्रित होकर परस्पर वार्तालाप करेंगे और विचारों के आदान प्रदान के साथ साथ उनकी योजना के प्रति जागरुकता भी बढ़ेगी।

2. **समूहों में विभाजन :** विभिन्न रुचि/आवश्यकताओं के आधार पर उन्हें समूहों में विभाजित करना होगा एवं प्रत्येक वर्ग की आवश्यकता, स्तर, कार्य क्षमता और उपयोगिता के आधार पर शिक्षण विधियां अपनानी होंगी। एक आदर्श ग्रामीण समाज के कुछ समूह इस प्रकार हो सकते हैं –

   - महिलाएँ
   - विद्यार्थी व युवा वर्ग
   - किसान, खेतीहर मजदूर, श्रमिक और दस्तकार
   - जनमत प्रभावित करने वाले कलाकार लोक कलाकार/भूतपूर्व सैनिक/जनजातियों के कबीला प्रमुख आदि
   - बुद्धिजीवी/शिक्षित वर्ग तथा
   - नीति निर्धारण एवं नीति कार्यान्वयन करने वाले व्यक्ति।

3. **वातावरण निर्माण :** लक्ष्य समूह निर्माण के उपरांत, परियोजना में जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु वातावरण निर्माण करना होगा जिससे ग्रामीण समुदाय के हर वर्ग, विशेष रूप से महिलाओं, अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों का भी परियोजना गतिविधियों में सक्रिय सहयोग प्राप्त हो सके। वातावरण निर्माण के प्रमुख साधन इस प्रकार हैं:

(i) **पोस्टर द्वारा :** यह वातावरण निर्माण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके अंतर्गत कार्यक्रम की जानकारी देने वाले विभिन्न पोस्टर, स्टीकर, बोर्ड, चार्ट एवं स्थानीय समाचार पत्रों में जानकारी प्रकाशित करवाना, पैम्फलेट्स आदि प्रकाशित व वितरित करवा कर जन सहभागिता प्राप्त की जा सकती है। यह प्रचार सामग्री घर–घर जाकर, विद्यालय एवं प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों के माध्यम से वितरित की जा सकती है ।

(ii) **इलैक्ट्रानिक संचार माध्यम :** वर्तमान युग विज्ञान व प्रौद्योगिकी का युग है। इलैक्ट्रानिक संचार माध्यम वर्तमान समय में जनसहभागिता प्राप्त करने का

मल्टीमीडिया द्वारा प्रशिक्षण

एक उपयुक्त उपाय है। जल ग्रहण विकास कार्यक्रम से संबंधित सभी पहलुओं की जानकारी एवं Success Stories स्लाइड्स या वीडियोग्राफी द्वारा कम्प्यूटर, मल्टीमीडिया एवं स्लाइड प्रोजेक्टर के माध्यम से अत्यंत रोचक रूप से प्रस्तुत की जा सकती है।

नर्सरी तकनीक पर प्रशिक्षण

4. सांस्कृतिक गतिविधियां : इसमें कलाकार अपनी कला के माध्यम से कठपुतली, नुक्कड़ नाटक, लोक गीत, लोक नृत्य आदि का समय–समय पर प्रदर्शन करके जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु जनमानस को जागरुक कर सकते हैं। ये साधन स्थानीय भाषा व प्रचलित लोक कथाओं पर आधारित होने के कारण समुदाय को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करके, उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़कर, उनके सामाजिक–आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान करते हैं।

प्रिन्ट मीडिया	इलैक्ट्रानिक मीडिया	कला माध्यम	अन्य माध्यम
• पोस्टर • स्टीकर • नारे • पैम्फलेट्स • विज्ञापन	• स्लाइड शो • वीडियो	• नुक्कड़ नाटक • कठपुतली • प्रदर्शनी • लोक गीत • लोक नृत्य	• लोक संपर्क द्वारा • पंचायत स्तर पर • ग्राम सभा की बैठक में • प्रदर्शन रैली / प्रभात फेरी • स्थानीय मेले एवं खेलकूद के समय

5. शिविरों का आयोजन : ग्रामीण समुदाय में शिविर आयोजित कर इन शिविरों में विभिन्न जल ग्रहण प्रारुपों (मॉडलों) का प्रदर्शन करके, जन सहभागिता प्राप्त कर सकते हैं।

6. प्रभात फेरी / रैली : कार्यक्रम से संबंधित विभिन्न नारों का उद्घोष करते हुये प्रभात फेरी / रैली निकाल कर ग्रामीण सहभागिता प्राप्त की जा सकती है ।

7. व्यक्तिगत रुप से जन सम्पर्क अभियान : यह प्रचार–प्रसार का सर्वाधिक उपयुक्त तरीका है। व्यक्तिगत रूप से घर–घर जाकर जन संपर्क करके वृहत् स्तर पर जन चेतना जागृत की जा सकती है ।

8. ग्राम सभा / पंचायत का सहयोग प्राप्त करना : जन सहभागिता प्राप्त करने हेतु सरपंच व अन्य जन प्रतिनिधियों का सहयोग लेना अत्यंत आवश्यक है। इससे अधिकांश ग्रामीणों का सहयोग स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। अतः संक्षिप्त में जन सहभागिता निम्न प्रकार से प्राप्त की जा सकती है –

ये सभी माध्यम अलग–अलग तरीकों से विभिन्न पहलुओं को सम्प्रेषित कर, लोगों तक सही जानकारी पहुंचा कर, जन सहभागिता प्राप्त करने में सक्रिय योगदान दे सकते हैं। तरीके अलग–अलग हो सकते हैं,परन्तु संवेदना एक ही होगी एवं संदेश एक ही होगा। ये सभी लक्ष्य समूह और इनके प्रचार–प्रसार के माध्यम अपने–अपने कार्य क्षेत्र में बहुत प्रभावी हैं, किन्तु असली जरूरत इनके मध्य समन्वय और तालमेल बैठाने की है। अलग–अलग रह कर नहीं अपितु श्रृंखलाबद्ध होकर ही इन माध्यमों के द्वारा जल ग्रहण कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक संचालन जन सहभागिता द्वारा किया जा सकता है ।

महिलाओं की भूमिका

'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता' के मूलमंत्र को मानने वाले इस भारत देश में सदियों से ही महिलाओं को समाज की मुख्य धारा का एक अभिन्न अंग माना जाता रहा है। त्रिदेव– ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ भी तीन अधिष्ठात्री देवियां– विद्या की देवी– माता सरस्वती, धन की देवी–माता

हरड़ (हरीतकी) : एक औषधीय वृक्ष

डॉ. ताराचन्द एवं श्री आलोक यादव
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

हरड़ का चिकित्सा साहित्य में एक अहम स्थान है। इसे अमृतोपम औषधि भी कहा जाता है।

यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी।
क्दाचित कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी।।

अर्थात हरीतकी मनुष्यों की माता के समान हित करने वाली है। माता तो कभी कुपित हो जाती है, परन्तु उदर स्थित अर्थात् खाई हुई हरड़ कभी भी अपकारी नहीं होती (ब्रहमवर्चस)।

हरस्य भवने जाता हरिता च स्वभावत।
हरते सर्वरोगांश्च तस्मात् प्रोक्ता हरीतकी।।

अर्थात श्री हर के घर उत्पन्न होने से, स्वभाव से हरितवर्ण की होने से तथा सब रोगों का नाश करने में समर्थ होने से इसे हरीतकी कहा जाता है (ब्रहमवर्चस)।

हरड़ औषधीय गुणों से परिपूर्ण है। यह त्रिफला की एक घटक है तथा पेट के रोगों के लिए विशेष रुप से लाभदायक है। इसके अलावा, हृदय रोग, अस्थमा, बवासीर, रक्ताल्पता तथा दांत के रोगों के लिए भी लाभदायी है। हरड़ की पत्तियाँ पशुओं के लिए मध्यम आहार मानी जाती है। पत्तियों में खनिज 7.99, नाईट्रोजन 1.73, कार्बन 46.4 तथा कैल्शियम 2.75 प्रतिशत पाया जाता है।

ब्रहमवर्चस के अनुसार हरड़ में ग्राहि पदार्थ टैनिक अम्ल (20–40 प्रतिशत), गैलिक अम्ल, चैबुलिक अम्ल और म्युसीलेज पाया जाता है तथा इसमें पाये जाने वाले रेचक पदार्थ है एन्थ्राक्वीनीन जाति के ग्लाईकोसाईडस। इसके अलावा हरड़ में जल 10 प्रतिशत, टैनिन्स (28–40 प्रतिशत) एसकोर्विक एसिड (6.15–11.15 मि.ग्रा./100 ग्रा.), कार्बोहाईड्रेडस (3.18–620 प्रतिशत), नाईट्रोजन (0.15–0.32 प्रतिशत) तथा प्रोटीन (0.95–1.97 प्रतिशत) पाया जाता है!

वानस्पतिक परिचय

हरड़ काम्ब्रेटेसी परिवार का फल है। यह राजस्थान के शुष्क स्थानों और दक्षिण पंजाब को छोड़कर भारत के अधिकतर भाग में पाया जाता है। हिमाचल में यह नीचले पर्वतीय क्षेत्र व घाटियां, जो समुद्रतल से 1500 मीटर ऊंचाई तक पाया जाता है। इनमें, कागड़ा, ऊना, हमीरपुर, बिलासपुर, सोलन तथा सिरमौर के क्षेत्र प्रमुख है। यह एक ऊँचा पर्णपाति वृक्ष है। इसका तना छोटा, छत्र वेलनदार, छाल गहरे भूरे रंग का होता है। इसके फूल छोटे, पीला सफेद तथा लम्बी मंजरीयों में होते है। यह फरवरी से मार्च तक पत्तियां गिरा देती है और सुषुप्तवस्था में चली जाती है और मार्च के बाद जब गर्मी बढ़ती है तब नए पत्ते आते है तथा पत्तों के साथ–साथ फूल भी विकसित होने लगते हैं। इसका फल जनवरी से मार्च तक पकता है।

हरड़ की किस्में

ब्राण्डिस (1978) के अनुसार हरड़ दो प्रकार की है।

(अ) टर्मिनेलिया चेबुला

(ब) टर्मिनेलिया गन्जीटिक

(यह पंचमढ़ी, महाक्लेश्वर, मैसूर और नीलगिरी में पाई जाती है।)

माघ्वाचार्य (1989) के अनुसार शास्त्रों में हरड़ सात प्रकार की बताई गई है किन्तु वर्तमान में तीन प्रकार की है।

(अ) छोटी हरड़ : यह गुठली पड़ने से पहले ही गिर जाती है। यह रेचक के लिए उपयुक्त है।

(ब) पीली हरड़ : इस हरड़ का भूरा गुठलीदार फल होता है।

(स) काबुली हरड़ : यह परिपुष्ट एवं मोटी हरड़ होती है।

भूमि

हरड़ अनेक प्रकार की भूमि के लिए उपयुक्त है। उप हिमालय क्षेत्र में भावर, निर्माण, बाहरी हिमालय में सुखे टाल और उथली भूमि में उगाई जा सकती है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए अच्छे निकासवाली, रेतीली दोमट और चिकनी मृदा उपयुक्त है।

जलवायु

यह विस्तृत रूप की जलवायु के अनुकूलित है। इसके क्षेत्र में अधिकतम तापमान 45°C तथा औसत वर्षा 500–3300 मि. मि. होती है, परन्तु अच्छी वृद्धि 100–1500 मि. मि. वर्षा वाले क्षेत्र में होती है। हरड़ के उत्पादन के लिए आद्रता 50 प्रतिशत से अधिक होनी आवश्यक है।

यह वृक्ष अत्यधिक प्रकाशापेक्षी (Light Demander) है यद्यपि नए पौधे थोड़ी छाया सह सकते है। पाले और सुखे का इन पर अधिक प्रभाव नहीं होता है, यहाँ तक की यह अग्नि का प्रकोप भी सह सकते है।

प्रर्वधन (Propagation)

हरड़ को बीज और वानस्पतिक दोनों तरीकों से रोपित किया जा सकता है।

बीज द्वारा प्रवर्धन

फलों को फरवरी से मार्च तक इकट्ठा करके छाया में सुखाया जाता है। प्रायः हरड़ में द्विसुषुप्त अवस्था देखी गई है। इसलिए नर्सरी रोपण से पहले इसे उपचारित करना आवश्यक है। इसके उपचार के दो तरीके है।

हरड़ के बीज

(i) स्तरीकरण (Stratification) : फलों को पानी में भिगों कर बीज (गुठली) को गूदे से अलग कर सुखा लिया जाता है। सूखे बीजों को बोरी में भरकर गड्ढे में, जो अन्दर से गोबर से लीपा हो, डाल दिया जाता है। गड्ढे का आकार, बीज की मात्रा के ऊपर निर्भर करता है। फिर गड्ढे को गोबर की स्लरी (Slury) से भर दिया जाता है। गड्ढे को इस प्रकार ढकें कि, बीच–बीच में गड्ढे में नमी बनाए रखने के लिए एक छिद्र से पानी डाला जा सके। तीन सप्ताह तक स्तरीकरण से बीज आराम से अंकुरित हो जाते हैं।

(ii) भ्रूण निकाल विधि : इसमें भ्रूण को सावधानीपूर्वक गुठली को फाड़कर निकाल दिया जाता है। भ्रूण को रात भर पानी में भिगोने के उपरान्त पॉलीथीन बैग में बोया जाता है। इस विधि से लगभग 80–90 प्रतिशत अंकुरण किया जा सकता है।

नर्सरी निर्माण विधि

पूर्ण उपचारित बीजों या भ्रूणों को नर्सरी बैड या पॉलीथीन बैग में बोया जाता है। पॉलीथीन बैग में मिट्टी, रेत तथा खाद 1:2:3 अनुपात के माध्यम को वृद्धि के लिए उत्तम पाया गया है। बीज या भ्रूण को मिटटी से ढक कर रखे तथा लगातार सिंचाई करते रहना चाहिए। अंकुरण प्रायः 10–15 दिनों में प्रारम्भ हो जाता है और 2–3 सप्ताह में खत्म हो जाता है।

हरड़ की पौधशाला

वनस्पतिक प्रर्वधन

वनस्पतिक विधि से तैयार पौधों में पैतृक गुण स्थिर रहते हैं। वृक्षों की ऊंचाई कम होती है तथा शीघ्र फलने फूलने लगते है। इसलिए वनस्पति प्रसारण अत्यन्त आवश्यक है। हरड़ का प्रसारण कलिकायन या उपरोपण से किया जा सकता है, परन्तु कलिकायन प्रसारण अधिक उत्तम है।

कलिकायन में भी पैबन्दी या चिप्पी कलिकायन अच्छे माध्यम हैं। इसमें 75–80 प्रतिशत सफलता मिलती है। मूलवृन्त पहले से उगाई नर्सरी से लिए जाते है और एक साल के पौधों पर मार्च में कलिकायन करके रोपण के लिए पौधे तैयार किए जाते है।

पौध रोपण

पौध रोपण के लिए गड़ढे पौधे लगाने से पहले खोद लिए जाते है! बाग में गड़ढे का आकार 1 x 1 x 1मी. होना चाहिए। पौधों के बीज अंतर के लिए पौधे से पौधे की दूरी 8 x 8 मी. और एकाकी रोपण के लिए 3 x 3 मी. होनी चाहिए। पौध रोपण का सबसे उत्तम समय बरसात है। पौधे लगाने से पहले गड्ढे में गोबर की खाद 20–30 कि. ग्रा., नाईट्रोजन 50 ग्रा., फास्फोरस 60 ग्रा. तथा पोटाश 40 ग्रा. प्रति गड्ढा मिला देना चाहिए।

परिपालन

पौध रोपण से अधिक महत्वपूर्ण पौधों की देखभाल है। नए पौधों की पशुओं तथा विपरीत वायुमण्डलीय परिस्थितियों से रक्षा करना आवश्यक है। पौध रोपण के प्रथम वर्ष जीवन रक्षक सिंचाई हर तीसरे दिन करनी चाहिए और बाद में 15–20 दिन में एक बार सिंचाई होनी चाहिए। फलों के आने पर हर सप्ताह सिंचाई पैदावार बढ़ाने में सहायक है। वर्षा के बाद निराई करना जरुरी है, जिससे घास निकल जाए और हल्की गुडाई हो जाए। हरड़ एक शुष्क फलोद्यानिकी का वृक्ष है। जहाँ पोषक तत्व कम होते है वहाँ पौधे की उम्र के हिसाब से खाद या उर्वरक देना चाहिए। प्रतिवर्ष गोबर या कम्पोस्ट 15–20 कि. तथा यूरिया 100–200 ग्रा. डालना चाहिए। यह मात्रा पुष्पन तक बढ़ाते जाना चाहिए। पुष्पन के बाद खाद 20–30 कि.ग्रा., नाईट्रोजन 50 ग्रा., फास्फोरस 300 ग्रा. तथा पोटाश 300 ग्रा. प्रति वृक्ष देना चाहिए।

उपज

हरड़ का बाग लगाने पर कलिकायन पौधों में फल तीन साल के बाद और बीज वाले पौधे 7–8 साल के बाद आते है। बीज से रोपित पूर्णवयस्क पौधों में लगभग 2 क्विंटल और कलिकायन के छः साल के पौधे से लगभग 12 किलो ग्राम फल की पैदावार हो जाती है।

रोग और कीट नियन्त्रण

नर्सरी में व्हाईट ग्रब्ज तथा दीमक हरड़ के पौधों को हानि पहुँचाती है। इसके नियन्त्रण के लिए 4 मि.ली./ली. कलोरोपाईरीफोस की स्प्रे करनी चाहिए। फल छेदक कीटों के लिए मोनोक्रोटोफॉस 200 मि.ली./ली. या साईपर मैथरिन 200 मि.ली./ ली. की 2–4 स्प्रे जून से हर 15 दिन बाद करनी चाहिए। जड़ की सड़न को रोकने के लिए नर्सरी में 1 ग्राम बैवीस्टीन और 2 ग्राम इण्डोफिल प्रति लीटर ड्रैन्चिग से लाभ होता है।

आदमीनामा

दो

यां आदमी पे जान को वारे है आदमी
और आदमी पे तेग़ को मारे है आदमी
पगड़ी भी आदमी की उतारे है आदमी
चिल्ला के आदमी को पुकारे है आदमी
और सुन के दौड़ता है सो है वह भी आदमी

—नजीर अकबराबादी

कृषि वानिकी के लिए उपयोगी प्रजाति बर्मा ड्रेक *(मेलिया कम्पोसिटा)* -एक परिचय

डॉ. चरण सिंह, श्रीमती जयश्री आरडे चौहान, एवं श्री अजय गुलाटी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

बर्मा ड्रेक या बर्मा नीम मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है जिसका क्षत्रक ऊंचा तथा फैला हुआ होता है। इस पेड़ का तना सीधा तथा गोल होता है जिसकी लम्बाई 9 मीटर तक हो सकती है तथा पूरा वृक्ष 9 से 18 मीटर तक लम्बा हो जाता है। इसके तने की छाल गहरी कत्थई होती है तथा इसमें छोटी–छोटी धारिया बनी रहती है जोकि देखने में आड़ी तिरछी नजर आती हैं। पंत्तियां छोटी तथा किनारे कटे हुए होते है तथा पत्तियों का अग्र भाग नुकीला होता है। पत्तियां एक पत्रक पर विपरित दिशा में लगती है जिससे पत्रक कंघी की शक्ल का लगता है। पुष्प छोटे तथा हल्के गुलाबी या सफेद रंग के होते है। फल गोलाकार चिकने तथा पकने पर स्वर्ण रंग के हो जाते है। सूखने पर इन फलों में झुरियां आ जाती है। पेड़ पर ये फल गुच्छों में बनते है जोकि प्रारम्भ में हरे रंग के प्रतीत होते हैं। अधिकतर फल पकने पर पेड़ पर ही लगे–लगे सूख जाते हैं। एक फल में पांच बीज निकलते है ये बीज बहुत ही कठोर खोल में बन्द रहते है। बीज आकार में गोलाकार तथा 1.3 सेमी से 1.8 सेमी. मोटा होता है। बीज के बीच में प्राकृतिक रुप से एक छिद्र होता है जिस कारण इसको मनका बीज तथा पेड़ को माला वृक्ष भी कहा जाता है।

भौगोलिक वितरण

बर्मा ड्रेक पूर्वी हिमालय क्षेत्र में पाया जाने वाला वृक्ष है जोकि मुख्यतः सिक्किम, उत्तरी बंगाल, आसाम के ऊपरी क्षेत्रों में, खासी पहाड़ियों, उड़ीसा के पर्वतीय क्षेत्रों तथा अन्य उत्तरी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह वृक्ष प्रायद्वीपीय क्षेत्र में गन्जम पहाड़ियों के दक्षिणी भाग से लेकर तिरूनेवेली के पूर्वी क्षेत्र तक तथा कोकन के दक्षिणी भाग से लेकर पश्चिमी भाग तक पाया जाता है।

भारत के बाहर यह वृक्ष श्रीलंका, मलेशिया, जावा, चीन तथा आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। इसके अनेकों जगहों पर पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि यह वृक्ष अनेक प्रकार की जलवायु में फल–फूल सकता है। इसको कुछ स्थानों पर सजावटी पेड़ के रूप में भी लगाया जाता है। कुछ लोग अपने मकानों के आगे छाया करने के लिए इस पेड़ के क्षत्रक की ऊपर से छटाई करते रहते है जिससे क्षत्रक में नई शाखाएं तथा पत्तियाँ निकलती रहती हैं जिससे पेड़ का क्षत्रक काफी शाखित तथा घना हो जाता है जिससे भरपूर छाया मिलती है।

इस पेड़ को अर्ध–बलुई तथा बलुई भूमि में आसानी से विकसित किया जा सकता है इसको अधिक सिंचाई की भी आवश्यकता नहीं होती है।

यह पेड़ दिसम्बर से फरवरी के बीच में पत्ती विहीन रहता है अर्थात् इन दिनों पेड़ पर पत्तियां नहीं रहती। जिसका फायदा रबी की फसल को मिलता है। इस दौरान सूरज की पूरी रोशनी कृषि फसल को मिलती है जिससे फसल की पैदावार पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता।

खेत की सीमा पर बर्मा ड्रेक

वृक्ष के निर्वाह के लिये उचित जलवायु

मेलिया का वृक्ष उप–उष्ण जलवायु में पनपने वाला वृक्ष है लेकिन इसको सम–शीतोष्ण जलवायु में भी आसानी से स्थापित किया जा सकता है। ठण्डें क्षेत्रों में इसको 2000 मीटर तक की ऊँचाई पर रोपित किया जा सकता है। यह प्रजाति अधिकतम 45° से. ग्रे. तथा न्यूनतम शून्य डिग्री से. ग्रे. पर सुचारू रूप से पनप सकती है। यह प्रजाति जल की पूर्ति वर्षाकाल में ही कर लेती है।

मृदा

यह प्रजाति मुख्यतः बलुई दोमट तथा उपजाऊ मिट्टी में अच्छी तरह पनपती है। यद्यपि इसे उथली तथा पथरीली

मिट्टी में भी भली प्रकार पनपते हुए देखा गया हैं। इसके उचित विकास के लिये वातावरण में उचित नमी का होना आवश्यक है।

पौधशाला में रोपित पौधों के लिए उचित जलवायु

बर्मा ड्रेक के तरुण पौधों को खुली धूप की आवश्यकता होती है उचित धूप मिलने पर पौधों का विकास सुचारु रुप से होता रहता है। छाया में इसके पौधें अल्प विकसित रहते है तथा अधिक संख्या में मर भी जाते है, साथ ही पौधों की उचित निराई–गुड़ाई कर यदि खरपतवारों को निकाल दिया जाय तो पौधों में वृद्धि अच्छी हो जाती है। तरुण पौधों की जड़े उथली तथा तना कमजोर होता है जो आसानी से टूट जाता है।

पौधशाला में पौधे उगाने की विधि तथा उनका रखरखाव

पौधशाला में पौधों को बीजों द्वारा उगाया जाता है लेकिन इसके पौधें कायिक प्रवर्धन द्वारा भी तैयार किये जा सकते है जिसके अन्तर्गत पौधें की शाखाओं को काटकर पादप हारमोन जैसे इन्डोल एसिटिक अम्ल तथा इन्डोल व्यूटारिक अम्ल में सिरे से डुबोकर थैलियों में लगा दिया जाता है जिससे नये पौधों का निर्माण हो जाता है।

1 बीज एकत्रीकरण एवम् भंडारण

बर्मा ड्रेक के वृक्षों पर प्रचुर मात्रा में फल लगते हैं फल पकने पर सूखने लगते है तथा सुनहरे पीलें हो जाते हैं। कुछ फल सूखने के बाद नीचे गिर जाते हैं तथा अधिकतर फल पेड़ पर ही लगे रहते है पौधशाला में इस प्रजाति की पौधें तैयार करने के लिए वृक्षों से ही बीज एकत्रित करना चाहिए, भूमि से एकत्रित किये गये बीज में कीटों के आक्रमण तथा फफूंद के संक्रमण का खतरा रहता है। एकत्रित किये गये 1 किलो ग्राम फलों में 750–900 तक की संख्या में फल होते है एकत्रित किये गये फलों को एक दिन के लिए धूप में सुखाया जाता है तथा इसके बाद जूट की पट्टी पर डाल कर रगड़ा जाता है जिससे फल का बाहरी गूहा हट जाता है तथा बीज बाहर निकल आता है जिसे पानी में धोकर अलग कर दिया जाता है। अब बीजों को धूप में सुखाकर कनस्तरों में भर लिया जाता है जिनकों कई सालों तक पौधशाला में काम में लाया जा सकता है।

2 पौधशाला स्थापन

पौधशाला में फलों को बोने से पहले गोबर में दो दिन के लिए दबा दिया जाता है जिससे बीजों से जल्दी अंकुर फूट सकें। इसके अतिरिक्त फलों को जूट के बोरों में भरकर 2–3 दिन के लिये पानी में डुबा कर भी रखा जा सकता है इससे अंकुरण में काफी सहायता मिलती है। इसके बाद बीजों को निकालकर 2–2 सेंमी. की गहराई में अच्छी तरह देशी खाद डालकर तैयार की गई क्यारियों में रोपित कर दिया जाता है। बीज से बीज की दूरी 15 सेंमी. रखी जाती है। नर्सरी में प्रति वर्ग मीटर में बुवाई के लिए 100 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बीजों के अंकुरण के पूर्ण होने तक समय–समय पर पौधशाला में सिंचाई करते रहते हैं। बीजों का अंकुरण दो हफ्तों में प्रारम्भ हो जाता है तथा लगभग दो महीनों में पूर्ण हो जाता है। बीजों से तैयार पौधें जुलाई के महीने में जब 5–8 सेमी. के हो जाते है तब उनको प्लास्टिक की थैलियों या दूसरी क्यारियों में रोपित किया जाता है।

पौधों को थैलियों में रोपने से पहले थैलियों में देशी खाद जिसमें आधा भाग जंगल की खाद का होना चाहिए तथा तिहाई भाग बालू एवं मिट्टी मिलाकर भली प्रकार थैलियों मे भर देना चाहिए। साथ ही दीमक के प्रकोप को रोकने के लिए फोरेस्ट 20 ग्राम प्रति 100 थैली के हिसाब से मिट्टी में मिला देना चाहिए। फफूँदी जनित रोगों से बचाने के लिए पौधों पर समय–समय पर बेविस्टीन नामक फफूँद नाशक को 20 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से घोलकर छिड़कना चाहिए। 6 माह से 1 साल के पौधों को बाहर खेत में लगाने के लिए ले जाया जाता है।

गेहूँ के साथ बर्मा ड्रेक

कृषि वानिकी क्षेत्र में पौधों का रोपण

कृषि वानिकी क्षेत्र में पौधों का रोपण अधिकतर जुलाई माह में किया जाता है। इसके अतिरिक्त शीत ऋतु में भी पौधों का रोपण किया जा सकता हैं। जहाँ इसको कृषि फसलों के साथ न लगाकर एकल फसल के रूप में रोपित किया जाता है वहाँ पर पौधों की आपस की दूरी 2.5 मी. x 2.5 मी. रखी जाती है लेकिन जहाँ इसका रोपण कृषि फसलों के साथ किया जाता है वहाँ पर प्रायः पौधों के बीच की दूरी 5 मी. x 5 मी. या 6 मी. x 4 मी. रखी जाती है जिससे जुताई सुचारु रुप से हो सके साथ ही सूर्य का उचित प्रकाश भी कृषि फसलों को प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त छटाई द्वारा भी प्रकाश की उचित मात्रा को कृषि फसलों के लिये बनाए रखा जा सकता है उचित छटाई से पौधों का तना सीधा रहता है तथा लकड़ी की गुणवत्ता बढ़ जाती है तथा वह अधिक उपयोगी हो जाती है साथ ही उसकी बाजारु कीमत अच्छी मिल जाती है। कृषि क्षेत्र में बर्मा ड्रेक के पौधों को अलग से सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। छोटे किसान पूरे खेत में न लगाकर इन पेड़ों को अपने खेती खेतों की मेड़ों पर लगा सकते है जहाँ पर पेड़ से पेड़ की दूरी प्रायः 2.5 मी. से 3 मी. रखी जाती है।

बर्मा ड्रेक का फल आच्छादित वृक्ष

खरपतवार नियंत्रण

पौधों की उचित छटाई के साथ–साथ पेड़ो के आसपास से प्रथम दो वर्षो तक खरपतवारों को भी साफ करना आवश्यक होता हैं। इससे पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। इसके अतिरिक्त पौधों को भेड़ बकरी तथा अन्य पशुओं से भी बचाना आवश्यक है क्योंकि ये पशु पौधों के ऊपरी भाग को खा जाते है।

कीट पतंगों तथा बीमारियों से बचाव

वैसे तो बर्मा ड्रेक की प्रजाति कीट व फफूँद रोधी है लेकिन इस प्रजाति पर भी कुछ कीड़ों तथा फफूँद जनित बीमारियों का प्रभाव देखा गया है। कीड़ों की रोकथाम के लिए फेनीट्रोथियोन नामक कीटनाशक को 0.5 प्रतिशत की दर से पानी में घोलकर समय–समय पर छिड़काव करना चाहिए। फफूँद जनित रोगों की रोकथाम के लिए बेविस्टिन को 0.1 प्रतिशत की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना उचित रहता है।

वृद्धि एवम् पैदावार

प्रथम 2 से तीन साल तक यह प्रजाति काफी तेजी से बढ़ती है तीन साल में इसका पेड़ लगभग 11 मी. लम्बा तथा 40 सेमी. तक मोटा हो जाता है सात साल के पेड़ की ऊंचाई लगभग 14 मी. तथा मोटाई 112 सेमी. हो जाती है।

उपयोग

लकड़ी के रुप में

इस वृक्ष की लकड़ी पीलापन लिए हुए सफेद रंग की होती हैं। लेकिन पूर्ण रुप से पका हुआ भाग बादामी रंग का होता है इसकी लकड़ी मध्यम रुप से भारी होती है इसकी छिलाई तथा सफाई आसानी से की जा सकती है एवं साफ सुथरे लकड़ी के सामान बनाए जा सकते है। ड्रेक की लकड़ी काफी टिकाऊ होती है तथा इस पर दीमक तथा अन्य कीड़ों का प्रकोप नहीं होता है। इसका उपयोग लकड़ी के खिलौने, खेल के सामान तथा पैकिंग के लिए डब्बों के निर्माण में किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी ईंधन के रुप में प्रयोग की जाती है। उचित अवस्था में इसकी प्रजाति की लकड़ी का प्रयोग पल्प वुड के तौर पर भी किया जाता है। इसकी लकड़ी से प्राप्त लुग्दी पल्प का प्रयोग कागज बनाने में किया जाता है।

अन्य उपयोग

ड्रेक के बीजों में एक कड़वे स्वाद का तेल होता है जिसकी मात्रा लगभग 40 प्रतिशत होती है इस तेल का प्रयोग साबुन, बालों के शेम्पू तथा गठिया की दवाइयां बनाने में किया जाता है इसके अतिरिक्त यह प्रजाति कफ पित्त कुष्ट रोग, रक्त विकार, वमन, प्रमेह, श्वास, अर्श तथा कई अन्य रोगों में प्रयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त इसके बीजों तथा पत्तों से कीटनाशक दवाइयों का भी निर्माण किया जा सकता है।

औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि : *ओसिमम सेंक्टम*

डॉ. लोखोपूनी, श्री एम.जेड. सिंहसन
एवं श्री एस.आर. बलौच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सामान्य नाम : तुलसी, होली बेसिल : यह एक सलाना पादप है, जो 20–60 सेंमी. ऊँचा होता है।

प्रयुक्त भाग : शाकीय चाय के लिये पत्तियां और सुरभित तेल के लिय फूल।

खेती : जलवायु

यह सभी तरह की मृदाओं में उगती है। समृद्ध दूमट से कमजोर लेटराइटी, लवणीय एवं क्षारीय से असाधारण अम्लीय मृदायें उपयुक्त है। अच्छी जलनिकास वाली मृदा बेहतर वनस्पतिक वृद्धि में सहायता करती है। जलाक्रान्त अवस्था मूल विगलन और अवरुद्ध वृद्धि उत्पन्न करता है।

लम्बे दिन और उच्च तापमान वृद्धि एवं तेल उत्पादन में सहायता करते है। उष्णकटिबंधीय एवं उप–उष्णकटिबंधीय जलवायु (ऊँचाई 900 मी. तक) में अच्छी उगती है।

भूमि तैयार करना

अच्छी तरह जुताई करें और सिंचाई के लिये सुविधाजनक आकारों के भूखण्ड तैयार करें। भूमि को तैयार करने के दौरान प्रति हैक्टेयर 15 टन फार्मयार्ड खाद डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें।

पौधशाला बनाना और रोपण

फरवरी के तीसरे सप्ताह में बीज की बुआई करें। एक हैक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिये करीब 200–300 ग्रा. बीज पर्याप्त है।

पौधशाला क्यारियों में बीज को 2 सेंमी. गहराई में बोयें। 8–12 दिन में बीज अंकुरित हो जाते हैं। पौधे 6 सप्ताह मे पूर्तिरोपण के लिये तैयार हो जाते है।

प्रति हैक्टेयर उच्च शाक और तेल उत्पादन प्राप्त करने के लिये 40 x 40 सेंमी. और 40 x 50 सेंमी. के मध्य अप्रैल माह में प्रतिरोपण करे।

निराई

पलवार से ढक देने पर निराई की आवश्यकता कम हो जाती है। पहली निराई रोपण के एक माह बाद करे और दूसरी आवश्यकता अनुसार करे।

सिंचाई

मृदा की नमी मात्रा पर निर्भर करती है। गर्मी में प्रति माह 3 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। वर्षा के मौसम में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

वर्ष में 12–15 बार सिंचाई करना पर्याप्त है। पलवार डालने से सिंचाई की आवश्यकता घट जाती है।

फसल कटान प्रक्रियायें

देहरादून क्षेत्र अवस्थाओं के तहत लघु पैमाने पर शाकीय चाय उत्पादन हेतु।

पौधशाला में उगाई गई तुलसी को अप्रैल के दूसरे हफ्ते में लगायें और इसे बढ़ने दें।

पहला फसल कटान : रोपण के 60–65 दिन उपरान्त जब पादप मे फूल निकलने शुरू हो जाते हैं तो भू–सतह से 6 से 8 इंच ऊपर पादप को काटकर पहला कटान करते हैं।

दूसरा फसल कटान : पहले कटान के करीब 45 दिन बाद हाथ से 6 पत्तियों वाली सभी कलियां तोड़ दे, यह दूसरा फसल कटान है।

तीसरा फसल कटान : दूसरे फसल कटान के करीब 25 दिन बाद भूमि के ऊपर 2 फीट ऊँचाई पर पादपों को काटकर तीसरा फसल कटान करते है और सभी कलियों एवं पत्तियों को एकत्र कर ले।

चौथा फसल कटान : तीसरे फसल कटान के करीब 25 दिन बाद पादप से सारी पत्तियां और कलियां काट दें। पादप पर कोई भी पत्ती छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि देहरादून क्षेत्र में सर्दी के दौरान पादप मर जाते है।

खाद, उर्वरक और नाशिकीटमार

औषधीय पादपों को रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक के उपयोग के बिना उगाना चाहिये। प्रजाति की आवश्यकता के अनुसार फार्मयार्ड खाद, वर्मिकम्पोस्ट, हरी खाद जैसे जैव खाद का उपयोग कर सकते हैं।

रोगों को रोकने के लिये, नीम (गिरी, बीज और पत्तियां) चित्रक मूल, धतूरा, गौमूत्र से जैव कीटनाशक (या तो एकल अथवा मिश्रण) भी तैयार कर सकते हैं। चूर्णिल आसिता के लिये वाटर जेट से पादपों पर छिड़काव कवक को धो देता है।

फसल कटान एवं फसलोपरान्त तकनीकें

आवश्यकता अनुसार फसल कटान करें। तेल उत्पादन के लिये पूर्ण खिलने की अवस्था उपयुक्त है। पहली फसल रोपण के 90–95 दिन में प्राप्त करते है। धूप वाले दिनों में हर 65–75 दिन के अन्तराल पर फसल कटान करे। यदि पिछले दिन वर्षा होती है तो फसल काटने में एक दो दिन की देरी कर दें।

चित्र : (1) रोपित करें और पलवार से ढ़क दे, (2) पहला फसल कटान 60 दिन बाद भूमि से 6 से 8 इंच ऊपर काटे, (3) दूसरा फसल कटान पहले फसल कटान के 45 दिन बाद कलियां तोड़ ले, (4) तीसरा फसल कटान 25 दिन बाद 2 फीट की ऊँचाई पर काटे– सभी तोड़ दें, चौथा फसल कटान (अन्तिम फसल) सभी कलियां और पत्तियां तोड़ दे, (5) वर्मीकम्पोस्ट शाकीय चाय उत्पादन के लिये उपर्युक्त है, (6) रोगग्रस्त पादपों को अस्वीकृत कर देना चाहिये, (7) कीटों को सावधानीपूर्वक हटा देना चाहिये, (8) हाथ से कलियां तोड़ने से गुणवत्ता सुनिश्चित होती है तथा (9) तोड़ी गई युवा कली कवक संदूषण से बचने के लिये तेजी से सुखायें।

उत्पादन

प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष करीब 11 टन हरा शाक (टन शुष्क)।

तुलसी की कलियां तोड़ने की प्रक्रिया

- किसी भी तरह के संक्रामक रोग, त्वचा रोग वाले लोगों को फसल कटान नहीं करना चाहिये।
- तोड़ी गई कलियों को रखने के लिये टोकरी का उपयोग करें।
- किसी भी तरह के कीट, क्षतिग्रस्त पत्तियों, संक्रमित पत्तियों, धूल, वर्ण, कुण्डलीकरण अथवा किसी भी तरह के दोषपूर्ण एवं अवांछित पदार्थो की जांच कर लें, यदि उपस्थित हो तो पहले उसे हटा दे। यह पादप को तेजी से हिलाकर भी कर सकते है। सामान्यतः कीट पादप की तरफ आकर्षित होते है।
- संक्रमित एवं रोगग्रस्त पादपों को उखाड़ दे और रोपण क्षेत्र से दूर फेंक दें।
- अंगूठे और उंगलियों के बीच कलियों को तोड़ें।
- ऐसी कलियों को एकत्र न करें जो दागदार, गन्दी, धूलभरी अथवा जो स्वस्थ न हो। केवल साफ और स्वस्थ कलियों को ही एकत्रित करें।
- परिपक्व फूलों को तोड़कर फेंक दे। बाद में श्रेणीकरण कठिन और समय खपाने वाला होगा।
- पादप के चारो और हस्तक्षेप करने वाले खरपतवारों को हटाकर और लटक रही शाखाओं को हटाकर फसल कटान के बाद पादप को सामान्य देखभाल उपलब्ध करायें। झुके हुये पादपों को सीधा कर दें।
- परिपक्व पत्तियों को पादप को छोड़ दे। ये भोजन का संश्लेषण करेगें और आगामी शीघ्र फसल कटान में मदद करेगें।
- विकृत पादपों को ठीक करें और पादप की ऊँचाई करीब 2 फीट तक करें।
- बरसाती अथवा नमी वाले दिनों में एकत्रित न करे।

सुखाना

- काटे गये पदार्थ को अच्छे वायु–संचार एवं धूल रहित एक समतल सतह के ऊपर छाया में फैला दें। दिन में कम से कम दो बार पलटे दें।
- भूमि पर अथवा ईटों के ऊपर सीधे न फैलायें, पेपर के ऊपर फैला दें किन्तु न्यूज पेपर, मैगजीन जैसे मुद्रित पेपरों के ऊपर न फैलायें।
- पत्तियों / कलियों का ढेर न लगाये।
- कीटों को बाहर रखे।
- किसी भी तरह के बाह्य पदार्थ को इसमें न मिलने दे। यह आसानी से मानव बालों के साथ मिश्रित हो जाता है इसलिये ध्यान रखे।
- सुखाये गये उत्पादों को अंधेरे, स्वच्छ एवं शुष्क स्थान में भण्डारित करना चाहिये।
- प्रकाश, ताप और आर्द्रता क्षति के मुख्य कारण है। समय–समय पर जांच करते रहे।

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय,
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय।
–वृन्द

औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि : *ऐसपैरेगस रेसीमोसस*

डॉ. लोखोपूनी, डॉ. ए.के.शर्मा एवं श्री एस.आर. बलौच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सामान्य नाम : सतमूली, सतावर, अभिरू

प्रयुक्त भाग : कंदिल जड़ें

खेती : मृदा एवं जलवायु

पादप सामान्यतः पी. एच. 7–8 विद्युत चालकता 0.15, कार्बनिक कार्बन 0.79 प्रतिशत, और फास्फोरस 7.3 कि.ग्रा. प्रति एकड़ के साथ मध्यम, काली सहित अनेकों प्रकार की मृदा में होता है। इसे 1400 मी. की ऊँचाई तक उष्णकटिबंधीय एवं उपशीतोष्ण कृषि जलवायवीय क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है।

भूमि तैयार करना

मृदा की 20–30 सेंमी. गहरी जुताई करते हैं। इसके बाद कुछ दिनों के उपरान्त 2–3 हैरो लगाते हैं। घास एवं खरपतवार को हटा देते हैं। भूमि को उपयुक्त रुप से समतल कर लेते है और सिंचाई करने के लिये नालियों के रुप में 15–20 सेंमी. के खाँचों का अन्तराल छोड़ते हुये रोपण के लिये 40–45 सेंमी. चौड़ी डौल तैयार करते हैं।

पौधशाला बनाना और रोपण

बीजों को 5–5 सेंमी. की दूरी पर उत्थित क्यारियों में अप्रैल माह में बो देते है ताकि मानसून शुरु होने तक इनके कठोर बीजावरण आसानी से गल जायें। जून माह में मानसून की पहली बौछार के उपरान्त 8 से 10 दिन में अंकुरण शुरु हो जाता है।

- पौधों का 60 x 60 सेंमी. पृथक–पृथक डोलों में प्रतिरोपित करे।
- 2–3 कंदिल जड़ों के साथ दो कलियां रखकर वायवीय तने के आधार पर उपस्थित प्रकन्दीय डिस्क का विभाजन करके कायिक पूवर्धन करते हैं।
- एक साल के पौधों को अप्रैल–मई में रोपित कर सकते हैं। इसके बाद लीची की पत्तियां, बाँज की पत्तियां जैसे उपलब्ध पत्ती खरपतवार की मल्चिंग करते हैं।
- बर्षाती महीने में 2 बार निराई करे, इसके बाद आगामी 2–3 महीने मे 1 बार करें।
- यदि अप्रैल–मई के दौरान रोपण किया गया तो रोपण के समय खरपतवार के उन्मूलन और नयी सरंक्षण के लिये रोपण करने के तुरन्त बाद मल्चिंग कर देना चाहिये।

सिंचाई

बर्षाती मौसम समाप्त हो जाने के उपरान्त सिंचाई करते हैं, सर्दी अथवा गरम मौसम के महीने मे एक बार समायोजन की आवश्यकता पड़ती है, जो स्थानीय जलवायु पर निर्भर करती है।

खाद, उर्वरक और नाशिकीटमार

- अधिमानतः रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के बिना उगाया जाये।
- जैव खेती के लिये, फार्मयार्ड खाद और वर्मिकम्पोस्ट ने व.अ.सं. प्रायोगिक भूखण्ड में सर्वोत्तम जड़ उत्पादन दिया।
- कृत्तको और चूहों से सावधानी रखनी चाहिये, ये कभी कभी कोमल प्ररोहों को खा जाते हैं।

  रोगों को रोकने के लिये, नीम (गिरी, बीज और पत्तियां) जैसे जैव–कीटनाशक अच्छे परिणाम देते हैं। चित्रकमूल, धतूरा, गौमूत्र का भी उपयोग कर सकते हैं।

फसल कटान एवं फसलोपरान्त तकनीकें

- नये प्ररोह आने से पहले फसल कटान।
- विपणन रणनीति की योजना बनाये, क्रेताओं से सम्पर्क करे और तदानुसार फसल कटान से पहले उनकी आवश्यकताओं को अपनायें।
- यदि बीजों से उगाया है तो रोपण के 20 माह बाद अथवा यदि 1 साल के पौधों से उगाया गया है तो 8 माह बाद सर्दी में उखाड़ दें।

- जड़ों को पृथक करके पानी में धो दें।
- आवश्यकतानुसार बेचे अथवा उपयोगिता परिवर्द्धन करे। यदि सक्रिय तत्वों का निष्कर्षण करना है तो उबालने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- यदि सुखाना है तो युवा जड़ों के लिये 10–15 मिनट और कठोर जड़ों के लिये 20–30 मिनट पानी में जड़ों को उबाल दें।
- काटने के तुरन्त बाद बाँस की खपची अथवा चाक का उपयोग करके जड़ आवरण की छिलाई कर दें।
- अधिमानतः छाया में सुखाये।

चित्र (1) मई–जून में बीज की बुआई करे, (2) पौधशाला में पौधों को 1 साल तक रखे , (3) पत्ती, घास–फूंस से रोपणों को ढ़क दे, (4) सेम के साथ शस्योत्पादन संभव है, (5) आसान खुदाई के लिये क्षेत्र में 1 अथवा 2 दिन पहले पानी डाल दे, (6) जड़ों के निकालने के बाद छत्र भागों को पुनरोपित कर सकते है, (7) उबालते समय छिलन क्षमता की जांच करते रहे, ज्यादा पकाने से बचे, (8) बांस छूरे से छीलने से पहले हथेली के बीच जड़ो को रोल कर लें तथा (9) जड़ों को छीलने के बाद कवक संदूषण से बचने के लिये सुखायें।

उत्पादन

औसत उत्पादन व.अ.सं. में 20 माह के बाद प्रति पादप ताजा भार करीब 4.5 किलो ग्राम होता है।

अर्थव्यवस्था

- प्रति हैक्टेयर व्यय रुपये 10027/–, प्रति हैक्टेयर प्राप्ति रुपये 36,000/–।
- प्रति हैक्टेयर कुल आय रुपये 25,973/– लगभग (वर्ष 2001) उबालने का समय जड़ों की परिपक्वता अवस्था पर निर्भर करता है।
- परिपक्वता अवस्था के अनुसार जड़ों का श्रेणीकरण इसलिये महत्वपूर्ण है।
- इसे जड़ों को बाह्य दिखावट से आंका जा सकता है। (युवा सफेद और पुराने पीले से होते हैं।)
- उबालते समय जड़ों की छिलन क्षमता की जांच करते रहे और तदनुसार आग बंद कर दें।
- जड़ों को छीलने में अधिक समय लगता है। औसतन 1 किलो जड़ों को छीलने में करीब 30 मिनट लगते हैं।
- यदि तेजी से सुखाया नहीं गया तो कवक दिखाई देने लगते हैं। कपड़े पर सुखाये (कागज में नहीं) और चिपकने से बचाने के लिये नियमित रुप से पलटते रहें।

औषधीय पादपों में होने वाले रोग एवं उनका निवारण

डॉ. लोखोपूनी, एवं डॉ. एन.एस.के. हर्ष
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

जड़ों से संबंधित रोग

डैम्पिंग ऑफ रोग

इसमें मिट्टी से अंकुरित पादप भूमि की सतह पर गलने लगते हैं। इससे अंकुरित पादप का पतन अत्यंत शीघ्र हो जाता है, इस रोग के कारक फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, पिथियम, फाइटोपथोरा, वरटीसिलियम इत्यादि प्रजातियां होती हैं।

मुरझाना (विल्ट)

पत्तियों में पीलापन और उनका मुरझा जाना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। इसकी पहचान सूखे भूरे रंग के पादप से की जा सकती है। इस रोग के कारक फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, स्कलेरोशियम आदि होते हैं।

विकृति (रॉट)

जड़ों का पूर्ण रुप से वित हो जाना इस रोग की पहचान है। इस रोग के लक्षण मुरझाने वाले रोग के समान ही होते हैं। यह रोग पादपों की जड़ो में फ्यूजेरियम, स्कलेरोशियम, पिथियम आदि से होता है।

विकृति (रॉट)

जड़ों में धब्बे एवं क्षति रोग

पादपों की जड़ों में पाया जाने वाला यह रोग बैंगनी से काले रंग के धब्बों के रूप में होता है। इसमें पौधे की जड़ वित हो जाती है। पौधे का विकास रुक जाता है एवं पत्तियां पीली दिखने लगती है। इस रोग का कारण परजीवी निमेटोड व फ्यूजेरियम होते हैं।

जड़ों में धब्बे एवं क्षति रोग

जड़ों में गाँठे बनना

छोटे से बड़े आकार में पौधों की जड़ों में गाँठें बन जाती हैं जिससे पौधे का विकास रुक जाता है एवं साथ ही पीलापन भी दिखाई देता है। निमेटोड संक्रमण के कारण यह रोग होता है।

जड़ों में गाँठे बनना

पत्तियों में होने वाले रोग

निशान अथवा धब्बे

पंत्तियों में होने वाले इस रोग के अन्तर्गत छोटे–छोटे भूरे से काले रंग के निशान उभर आते हैं। इससे पत्तियां पीली होकर शीघ्र गिर जाती है। इसके कारक मुख्यतः अल्टरनेरिया, सरकोस्पोरा आदि होते हैं ।

निशान अथवा धब्बे

झुलसा रोग

इसमें पत्तियां झुलसी हुई दिखाई देती हैं, कभी कभी अल्पविकसित पत्ती इस रोग से ग्रस्त होकर समय पूर्व ही

मुरझाना (विल्ट)

झुलसा रोग

गिर जाती है। इस रोग के कारक अल्टेरनेरिया, सरकोस्पोरा, फ्यूजेरीयम, पेस्टालोशियोपसिस, आदि प्रजातियाँ होती हैं।

रस्ट

इस रोग में पत्ती की दोनों सतह पर भूरे से काले रंग के धब्बे उभर जाते हैं। इस रोग के कारक यूरेडो, पकसीनिया आदि होते हैं।

रस्ट

फफूंदी चूर्ण रोग

इस रोग में पत्ती पर सफेद पाउडर सा छा जाता है। पत्ती की सतह में सफेद रंग की फफूंदी होने लगती है। इससे पत्ती का समुचित विकास अवरुद्ध हो जाता है। इरीसाइफी, स्फीरोथिका, आदि इस रोग के मुख्य कारक होते हैं।

नियंत्रण एवं उपचार–बचाव, उपचार से उत्तम है

- सर्वप्रथम उत्तम बीजों का चुनाव किया जाना चाहिए। अस्वस्थ बीज जैसे धब्बे युक्त एवं आकार में असामान्य एवं वित बीजों का उपयोग बोने हेतु नहीं किया जाना चाहिए।

- बीजों को बोने से पहले उनका फफूंदी रोधक उपचार किया जाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत बीज को एक चौड़े मुँह वाले प्लास्टिक के बर्तन में लेकर उसमें 5 से 6 बूंदें पानी डाल,उसमें ढक्कन लगाकर दो मिनट तक अच्छी तरह हिलाना चाहिए। उसमें दो चम्मच फंजीसाइड पाउडर (बैविस्टिन) मिलाकर उसको फिर से ढक्कन बंद कर अच्छी तरह दो मिनट तक हिलाना चाहिए। तत्पश्चात बीज बोने के लिए उपयुक्त बन जाऐंगे।

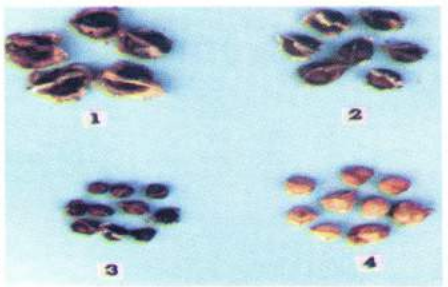

1, 2, 3 – अस्वस्थ बीज

- यदि पौधों की जड़ों के रोग अधिक मात्रा में होते हैं तो इसका तात्पर्य मिट्टी को रोगाणुनाशक की आवश्यकता है। इसके लिए मिट्टी को एक बर्तन में एक घंटे तक गर्म कर बीज बोने हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। जब उपचार के लिये मिट्टी की मात्रा अधिक हो तब उसे एक कंकरीट के फर्श पर फैला देना चाहिए, उसमें 50 मि.ली. फार्मेलीन को एक लीटर पानी मे मिलाकर छिड़काव कर मिट्टी को उलट–पुलट करना चाहिये। तत्पश्चात एक प्लास्टिक की चादर से उसे ढक देना चाहिए। तीन दिन पश्चात चादर हटाकर मिट्टी को तीन दिनों तक उलट–पलटते रहें। इस प्रकार मिट्टी का उपचार हो जाता है, इसमें सातवें दिन पौधा अथवा बीज बोया जा सकता है।

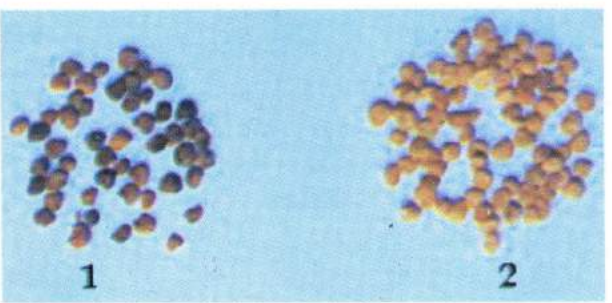

2– स्वस्थ बीज

- बीज को बोने का समय निश्चित करना आवश्यक है। गलत समय होने से बीज प्रभावहीन हो जाएगा।

- खेत का चुनाव करते समय ध्यान रखना चाहिए कि जिस क्षेत्र में बीज बोया जाना है वहाँ जल अवरुद्ध न हो, यदि ऐसा होता है तो ऐसी स्थिति में वहां पौधे रोगग्रस्त हो जायेंगे।

- पौधों को पानी की समुचित मात्रा आवश्यक रूप से देनी चाहिए लेकिन यदि पानी की मात्रा आवश्यकता से अधिक दी गई तो यह हानिकारक हो सकता है।

- पौधे को रोपते समय सावधानी रखनी आवश्यक है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इस दौरान पौधे की जड़ों को किसी भी प्रकार की हानि ना पहुँचे। पौधे को निकालने से पहले मिट्टी को गीला कर नम कर लें। इसके पश्चात् पौधों को मिट्टी में से खुरपी की

सहायता से जड़ों के नीचे से मिटट्ी सहित निकालकर पानी भरे बर्तन में डाल दें, इससे पौधे मिटट्ी से आसानी से अलग हो जायेंगे और उन्हें रोपा जा सकता है। यह प्रक्रिया जड़ों को टूटने से बचा लेती है।

- संक्रमित पौधे एवं पौधे के संक्रमित भाग का उन्मूलन करना आवश्यक है।
- पौधों को लगाते समय उनके मध्य समुचित दूरी का भी आकलन करना चाहिए।
- समान प्रजाति के पौधों को एक ही स्थान पर नहीं रखना चाहिए। इन्हें अन्य प्रजाति के पौधों के साथ मिलाकर रखना चाहिए।
- औषधीय पादपों को उन्नत किस्म का बनाने हेतु उसके क्षेत्र एवं भाग (जहाँ पर पौधा लगाया जाना है) परिवर्तन करना आवश्यक होता है।
- जड़ों में गांठे बन जाने की स्थिति में फसल काट लेने के पश्चात जड़ों को नष्ट कर देना चाहिए। 3 से 4 दिन के लिए पानी से खेत को भरना चाहिए। खेत को कुछ समय खाली छोड़कर उसके बाद दूसरी प्रजाति की खेती करें।
- पौधों का रख – रखाव करना चाहिए। संक्रमित पौध एवं उसके संक्रमित भाग को पूर्णतया नष्ट कर देना चाहिए।

साईं, बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हिरनाकस्यप, कंस को, गयहुं दुहुँन को राज।।
गयउ दुहुँन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर हंसे बहुमण्डल नगरी।।
कह गिरिधर कविराय, जुगत याही चलि आई।
पिता–पुत्र के वैर नफा कहु कौने पाई।।

–गिरिधर

औषधीय पौधों की पौधशाला एवं पौधारोपण विधि
रॉवॉल्फिया सर्पेन्टाईना

डॉ. लोखोपूनी एवं श्री एस.आर. बलौच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्रचलित नाम : सर्पगंधा

उपयोगी भाग : जड़

सर्पगंधा की जड़ों का प्रयोग आयुर्वेदिक उपचार के अन्तर्गत उच्च रक्तचाप, मानसिक रोगों, मिर्गी एवं अस्थमा रोग के लिए किया जाता है।

उत्पादन

इसका उत्पादन उपजाऊ चिकनी मिट्टी में 6–8.5 पी.एच. पर जैव अवयवों द्वारा होता है। इसका उत्पादन उस क्षेत्र में नहीं करना चाहिये जहाँ पानी इकट्ठा होता है तथा क्षेत्र पाला रहित हो। सर्पगंधा की जड़े भूमि में 60 से. मी. की गहराई में होती है।

जलवायु

सर्पगंधा का उत्पादन गर्म तथा आर्द्रता युक्त क्षेत्रों में किया जाता है। इसके उत्पादन हेतु छाया तथा धूप संयोजक क्षेत्र की आवश्यकता होती है। पूर्णतया प्रकाशयुक्त क्षेत्र में इसका उत्पादन करने से मानसून के दौरान इसमें फफूंदी नामक रोग लगने की सम्भावना होती है।

इसके उत्पादन हेतु शुष्क मिट्टी का उपयोग किया जाना चाहिए। इसका समुचित विकास वन क्षेत्रों में ही सम्भव होता है।

इसका उत्पादन सोयाबीन, लहसुन जैसी अन्य फसलों के साथ भी किया जा सकता है।

सर्पगंधा उत्पादक क्षेत्र तैयार करना

खेत जोतकर उसे फसल बोने योग्य बनाया जाता है। सिंचाई करने के लिए उस क्षेत्र का खाका तैयार कर लेना चाहिए।

पौधशाला स्थापन एवं पौधारोपण

सर्पगंधा बीज से उत्पादित होता है। जून–जुलाई में बीज से गूदा हटाने के पश्चात बीज चयनित क्षेत्र में उपयुक्त विधि द्वारा लगा देना चाहिए। एक हैक्टेयर उत्पादन में 6 किलो बीज की आवश्यकता होती है। सर्पगंधा के उन्नत बीजों का संग्रह जून से जुलाई के मध्य करना चाहिये। इनका अंकुरण शीघ्र हो जाता है। कुछ ही बीजों का अंकुरण अगले वर्ष होता है।

अगले वर्ष पौधा लगाया जाना है तो उसे किसी अन्य स्थान पर अथवा पॉलीथीन में लगाना चाहिए। इसका रोपण मानसून के आरम्भ होने के साथ करना चाहिए। यदि पॉलीथीन में पौध दिखाई देने लगे तो उसे चयनित क्षेत्र में लगा देना चाहिए।

पौध सामग्री जड़ों की कटान, तने एवं पत्ती से भी तैयार की जाती है। बीज द्वारा पौध तैयार करना एक उत्तम प्रक्रिया है।

जून–जुलाई में उन्नत बीज एकत्र कर लेने चाहिए। सर्पगंधा के बीजों में अंकुरण शीघ्र होता है। कभी–कभी कुछ बीज ही अगले वर्ष अंकुरित होते हैं।

निराई–छंटाई कार्य

यदि पौध रोपण वर्षा से पहले किया गया है तो आद्रता संरक्षित करने एवं घास–पात नष्ट करने के लिए निराई–छंटाई कार्य अति आवश्यक है। इस कार्य हेतु यदि छोटे पैमाने पर उत्पादन किया जाना है जैसे लीची एवं करंज, तो पत्तीनुमा यंत्र उत्तम साधन माना जाता है।

चित्र : (1)स्वस्थ बीज पौधे, (2) बीजों का संग्रह , (3) जड़ की कलम बनाकर जड़ विकसित करना (4) बीजों , द्वारा पौधारोपण, (5) पौधे को एक फीट के अन्तराल पर स्थापित करना चाहिए, (6) सर्पगंधा की पत्ती का विनाश सूंडी (कीड़े) से होता है जो पत्ती को पूर्णतया समाप्त कर देता है (7) उपर्युक्त हानि से संरक्षण हेतु नीमयुक्त दवा का छिड़काव करना चाहिए, (8) सफाई हेतु मुलायम ब्रश का प्रयोग करना चाहिए तथा (9) जड़ों को 12–15 से.मी. लम्बे टुकड़े में काटना चाहिए

सिंचाई

सर्पगंधा गहराई में स्थापित किया जाता है। पौधारोपण के पश्चात निराई–गुड़ाई करने से यह लम्बी अवधि तक सुरक्षित रहता है।

फसल का उत्पादन एवं कटाई कार्य

- जड़ विकसित होने में 18–20 माह या इससे भी अधिक समय लग जाता है। नवम्बर–दिसम्बर में जड़ का उत्थापन हो जाता है।
- फसल की कटाई करते समय इन्हें 12–15 सेमी. लम्बे टुकड़े में काटना चाहिए, जिससे सुखाने एवं इकट्ठा करने में आसानी रहे। इन्हें 1–3 वर्ष की अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

उपज

1.6–2.0 टन / हैक्टेयर।

महत्वपूर्ण तथ्य

- कलम द्वारा भी पौध उत्पादित की जाती है। लेकिन इसका रोपण बीज के समान गहराई में नहीं किया जाता है।

- उत्पादनक्षम भाग पौध अभिवृद्धि हेतु प्रयोग किया जाता है।
- इसकी छाल बहुत कड़वी होती है तथा इसमें अनेक क्षारतत्व मौजूद होते हैं। सक्रिय सिद्धांतों के आधार पर ही जड़ों का निर्माण होता है।
- इनकी सफाई हेतु मुलायम ब्रश का प्रयोग किया जाता है। इनकी जड़ों को पानी से साफ करने के लिए दाँतों का ब्रश भी प्रयोग में लाया जाता है।

प्रौद्योगिक सूचना

- बीजों का संग्रह केवल स्वस्थ पौधे से करना चाहिए। बीजों का विकास जुलाई माह से आरम्भ होता है।
- बीज सूखने से पहले ही उसका गूदा हटाकर शीघ्र बोना चाहिए।
- पौधे को भूमि अथवा पॉलीथीन में व्यवस्थित रुप से स्थापित किया जाना चाहिए।
- यदि पुरानी फसल से उत्पादन किया जाता है तो भूमि में फसल की अतिजीविता उपलब्ध होती है।
- पौधे को एक फीट के अन्तराल पर स्थापित करना चाहिए।
- यदि पौधारोपण मानसून से पूर्व किया गया है तो पत्तीनुमा यंत्र से उसकी निराई–गुड़ाई करना आवश्यक है।
- वन अनुसंधान संस्थान के प्रयोगों के आधार पर लीची एवं करंज जैसे उत्पादकों हेतु पत्तीनुमा यंत्र से सिंचाई करना लाभदायक है।
- पौधे के क्षेत्र को जल अवरुद्ध कर देना चाहिए जिससे पौधा प्रभावहीन होने से सुरक्षित रहे।
- मिट्टी को आवश्यकतानुसार उर्वरकता प्रदान करनी चाहिए।
- सर्पगंधा की पत्ती का विनाश केटरपिलर (सूंडी) नामक कीड़े से होता है जो पत्ती को पूर्णतया समाप्त कर देता है। इससे पौधे का विकास रुक जाता है।
- निराई–गुड़ाई करने के पश्चात खरपतवार हटा देना चाहिए अन्यथा पौधों में रोग उत्पन्न होते हैं।
- यह लावणिक स्थानों पर घास–पात एंव जड़ी बूटी के रूप में उत्पादित हो जाता है। वर्षाकाल के दौरान बीज को हल्के रूप में वन क्षेत्रों में लगा देना चाहिए।
- उपर्युक्त हानि से संरक्षण हेतु नीमयुक्त दवा का छिड़काव करना चाहिए तथा प्रभावित पत्ती तथा भाग को नष्ट कर दिया जाना चाहिए।

करत–करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान,
रसरी आवत जात तैं, सिल पर होत निसान।

–वृन्द

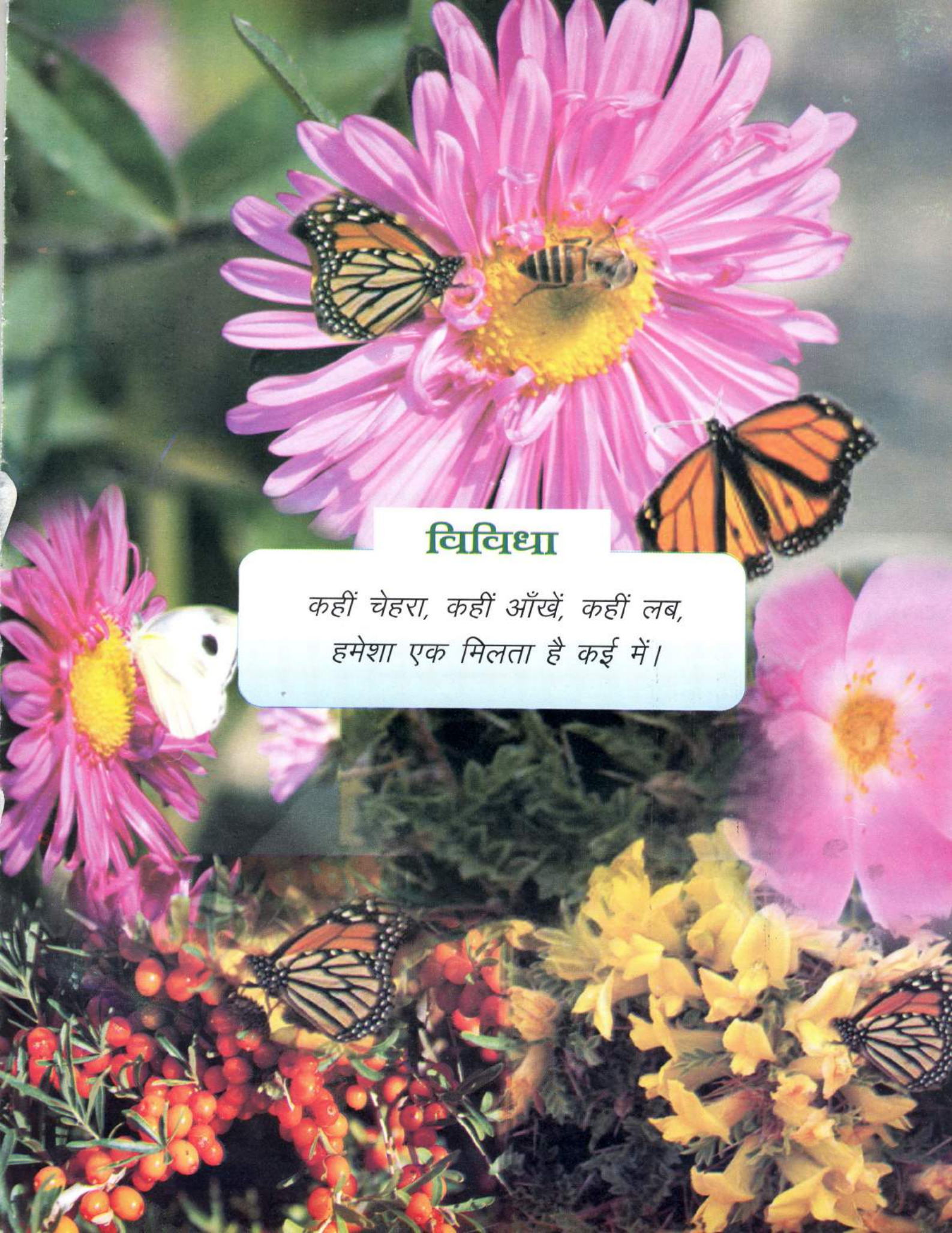

विविधा

कहीं चेहरा, कहीं आँखें, कहीं लब,
हमेशा एक मिलता है कई में।

मनुष्य पृथ्वी का अंश है....

श्री अनूप चौहान
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

सन् 1854 में वाशिंगटन (अमेरिका) के श्वेत प्रमुख ने रेड इंडियनों के बहुत बड़े भू–भाग को अपने अधिकार में लेने का प्रस्ताव रखा तथा इसके बदले में उन्हें संरक्षण प्रदान करने की बात की। रेड इंडियन प्रमुख सिएटल का श्वेत प्रमुख को दिया गया उत्तर पर्यावरण पर अब तक का सर्वाधिक संपूर्ण एवं सुंदर आख्यान माना जाता है। उसने यह शब्द अपनी स्थानीय भाषा चिनूक में कहे थे जिसका बाद में अंग्रजी में अनुवाद किया गया। बहुत समय बाद उसका भाषण 1887 में एक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ।

''....तुम आसमान को कैसे खरीद व बेच सकते हो? यह विचार हमारे लिए विचित्र है। हवाओं की ताजगी व जल की कांति जब हमारी नहीं है तो तुम उसे कैसे खरीद सकते हो ? इस धरती का हर हिस्सा हमारे लोगों के लिए पावन है। प्रत्येक चीड़ की चमकती पत्तियाँ, यह सब रेतीले तट, गहन वनों से उठती वाष्प, हर कीट की आवाज व गुंजन एक पौर्वात्य भाव से हमारे लोगों की स्मृति में कैद है। इन वृक्षों के दौड़ते तत्व में हमारे लोगों की स्मृतियाँ कैद है। श्वेत लोगों की मृत आत्माएँ अपनी धरती को बिसरा देती है किंतु हमारी मृत आत्माएँ इस सुंदर धरती को कभी नहीं भूलती। धरती हमारा व हम धरती का हिस्सा हैं। सुवासित फूल हमारी बहनें है, हिरण, घोड़े व विशाल चीले–यह सब हमारे भाई है। पहाड़ों की चोटियां विशाल खेतों में उगे पौधों का अर्क, खच्चरों के बदन की उष्मा और मनुष्य–यह सब एक परिवार का हिस्सा है तब वाशिंगटन का प्रमुख हमसे यह भू–भाग मांगते है तो वह हमसे अनपेक्षित आशा रखते है। प्रमुख कहता है कि वह हमारे लिए एक अलग भू–भाग सुरक्षित रखेगा जहां हम आराम से रह सकेंगे। वह हमारा स्वामी होगा व हम उसकी प्रजा, तब वह हमारी जमीन खरीद लेगा। किंतु यह सरल नहीं है। यह धरती हमारे लिए पावन है। इन धाराओं में बहता पानी केवल पानी नहीं है, वह पूर्वजों की लहू है। तुम्हे याद रखना होगा कि यह पवित्र है। तुम अपनी संततियों को सिखलाना कि यह पवित्र है, उन्हे यह भी बताना कि इन झीलों के जल–विस्तार पर डोलती छायाएं हमारे पूर्वजों की स्मृतियाँ व उनसे जुड़ी घटनाएँ है। यह धाराओं का कल–कल स्वर मेरे पितामह का है। नदियाँ हमारे भाई है, वह हमारी प्यास बुझाते हैं। नदियाँ हमारी डोंगियों को बहाती हैं। तब हम अपने बच्चों का पोषण करते हैं। यदि हम यह भू–भाग बेचते हैं तो तुम अपने बच्चों को बतलाना कि नदियां हमारे भाई हैं और तुम उनके साथ ऐसी ही करुणा से पेश आना जैसे एक भाई के साथ आया जाता है। बसंत देखने के लिए श्वेत लोगों की बस्तियों में कोई शांत जगह नहीं है। हम जहां पत्तियों के खुलने व कीटों के परों की ध्वनि सुन सकें, उनके पास ऐसी कोई जगह नहीं है। परंतु यह शायद इसलिए है क्योंकि हम असभ्य हैं व कुछ समझ नहीं रखते। जीवन में रखा ही क्या है यदि हम किसी नक्षत्र–खचित रात्रि को मेढ़कों के एकाकी या समवेत वार्तालाप न सुन सकते हो। यह बहती हवा हमारे लिए अमूल्य है क्योंकि हम सब एक ही श्वास लेते है। श्वेत लोग शायद अपनी सांसों को अनुभव नहीं करते–जैसे एक मृत व्यक्ति गंध के लिए चेतना शून्य हो जाता है। यदि हम यह धरती तुम्हे बेचते हैं तो तुम याद रखना वायु हमारे लिए पवित्र है और वायु से हम सब की जीवन डोर बंधी है। इसी वायु में पितामह ने पहली श्वास ली थी व वायु उसकी अंतिम श्वास भी थी। यदि हम यह स्थान तुम्हें बेचते हैं तो तुम एक जगह ऐसी भी संरक्षित रखना जहां श्वेत लोग मैदानों से उठती फूलों की महक को महसूस कर सकते हों, तो हम तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकारते हैं। यदि मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकारता हूं तो मैं एक शर्त रखूंगा कि श्वेत लोगों को सभी जानवरों को अपना भाई मानना होगा। जानवरों के बिना मनुष्य क्या है? वह नितांत अकेलेपन से समाप्त हो जाएगा। जो कुछ भी जानवरों पर घटता है, वही सब मनुष्य पर भी खरा उतरता है। सब कुछ आपस में सम्बद्ध है। तभी अपने बच्चों को यही शिक्षित करना जैसे हमने अपने बच्चों को किया है कि पृथ्वी हमारी मां है। जो कुछ भी धरती पर गुजरती है वह उसके बच्चों पर भी गुजरती है। यदि हम पृथ्वी पर थूकते है तो हम स्वयं पर थूकते है। हम यह जानते हैं कि हम पृथ्वी के अंश हैं, पृथ्वी हमारा अंश नहीं है। सब कुछ आपस में जुड़ा है, जैसे कि एक परिवार अपने खून से जुड़ा है। मनुष्य जीवन का जाल नहीं बुनता वह मात्र उसका धागा है। जो कुछ भी वह उस जाल को करता है, वह स्वयं को ही करता है।''

ई.जर्नल कन्सोर्शिया : पुस्तकालय व सूचना केन्द्रों के लिए एक वरदान

श्रीमती अनुराधा भाटी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

सूचना तकनीकी के युग में, कम्प्यूटर के प्रादुर्भाव, इलेक्ट्रोनिक मीडिया द्वारा सूचना तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों पर उन्नति करती हुई दूरसंचार की विभिन्न पद्धतियों, दृश्य–श्रृव्य तकनीकियों व मल्टीमीडिया ने पुस्तक संग्रह, संगठन व डिजीटल सूचना की अधिकता को चहुँ ओर वितरित करने की नई सम्भावनाओं का सृजन किया है। 21वीं शताब्दी यह सबूत देती है कि इन्टरनेट के प्रचलन से प्रकाशन व सूचना की डिलीवरी पद्धति पर विशेषकर वर्ल्ड वाइड वेब से सूचना संग्रहण व डिलीवरी के नए माध्यम पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है।

आधुनिक युग में उपयोक्ताओं की सूचनाओं की आवश्यकता इतनी अधिक बढ गई है कि कोई भी एक पुस्तकालय अपने संसाधनों से उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है। नेटवर्क सेवाओं के द्वारा पुस्तकालयों व सूचना केन्द्रों की उपलब्ध सूचनाओं और संसाधनों को प्रभावशाली ढंग से जोड़ें व सहयोग प्रदान करें। नेटवर्क, ई–मेल, ऑनलाइन सूचना तक पहुँचने के मार्ग प्रशस्त करना, सी.डी.रोम का प्रयोग, हार्डवेयर व सॉफ्टवेयर पद्धतियों आदि अब संसाधनों को आपस में बाँटने के लिए उपयोग में ला रहे हैं। कम्प्यूटर व संचार तकनीकियों के क्षेत्र में विकास ने सूचना तक पहुँचाने के मार्ग शीघ्रता से प्राप्त करने के लिए, सूचना को खोजने में लगने वाले समय को कम करने, संग्रह के स्थान कम घेरने हेतु, पठन सामाग्री का चयन हेतु सरल तरीकों का पता लगाने हेतु और एक पुस्तकालय को देखने की आवश्यकता को समाप्त करने के लिए इलैक्ट्रोनिक माध्यम के द्वारा संसाधनों को आपस में बाँटने पर विश्वास बढ़ता जा रहा है। पुस्तकालय व सूचना केन्द्रों तथा संस्थाओं में उनके संसाधनों को आपस में बाँटने हेतु सहयोग देने का प्रचलन गत कुछ दशकों से चल रहा है। सहयोग के प्रकार सूचना तकनीकी के नए आयामों के कारण प्रकाशित आधार के वातावरण से बदलकर डिजीटल वातावरण में आ गए हैं। यह तकनीकी सूचना डिलीवरी अधिक शीघ्रता से व कम खर्च में ऐसे माध्यम से प्रदान कर रही है जिसकी कोई तुलना किसी अन्य माध्यम से नहीं की जा सकती है।

पुस्तकालय व सूचना केन्द्र ई. पत्रिकाओं व ऑनलाईन डाटाबेसों के बहुत बड़े उपभोक्ता हैं और इस तकनीकी से हुई क्रान्ति का बहुत बड़ा लाभ उठा रहे हैं। सूचना तकनीकी पर आधारित इलेक्ट्रोनिक उत्पादकों की उपलब्धता पुस्तकालयों पर अधिक दबाव डाल रहे हैं जो इसके बदले में पुस्तकालय ऑनलाईन पर पूर्व पाठ की खोज सेवाएँ, सी.डी. रोम पर उत्पाद व ऑनलाईन डाटाबेस उपलब्ध करा रहे हैं। पुस्तकालयों के उनके वित्तीय आवंटन में लगातार कमी अथवा अधिक से अधिक स्थिरता ने संसार के संसाधनों को संगठित करने के लिए नये उपायों पर विचार करना पड़ रहा है। इन्हीं विकास के मेल के फलस्वरूप पत्रिकाओं का चन्दा बाँटने (Shared Subscription) अथवा कन्सोर्शिया आधारित पत्रिकाओं का चंदा संसार में हर जगह विकसित हुआ है। पुस्तकालय कन्सोर्शिया कम संख्या के आधार पर संस्थाएं, पुस्तकालय व सूचना केन्द्र ई–प्रकाशनों को स्वस्थ व अधिक अवसर प्रदान करते हैं और इस प्रकार सबसे बढ़िया संभावित कीमत व अनुबंधों की शर्तें आकर्षित कराने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस अच्छे बदलाव के कारण सारे संसार के पुस्तकालय सभी प्रकार के तथा सभी स्तर के कन्सोर्शिया इस उद्देश्य से वर्तमान संसार के नेटवर्क का लाभ उपभोक्ता समुदाय को सूचना की खोज से इलेक्ट्रोनिक संसाधन शीघ्रता व अधिक प्रभावशाली कीमत को प्रोत्साहित करते हुए प्रदान करें।

ई–पत्रिकाओं को खोजने के मार्ग प्रशस्त करना

सभी विषयों पर आज तक की सूचना का महत्वपूर्ण संसाधन एक पत्रिका है। शोध व विकास कार्यो में लिप्त संस्थाओं के पुस्तकालय सूचना के लिए उनके शोध योजना से सम्बन्धित पत्रिकाओं पर अधिक विश्वास रखते हैं। शैक्षणिक पुस्तकालयों व सूचना केन्द्रों में वैज्ञानिक शोध व

विकास के लिए सूचना का शक्तिशाली स्रोत पत्रिकाएँ है। पत्रिकाओं की संख्या प्रति 15 वर्षो के अन्दर तीन गुना बढ़ जाती है। और पत्रिकाओं की कीमत प्रत्येक 10 वर्षो में ढाई गुणा बढ़ जाती है, अतः यह स्पष्ट है कि कोई भी एक पुस्तकालय एक विषय की सभी पत्रिकाओं को प्राप्त कर सकता है। सूचना तकनीकी और विशेषकर इन्टरनेट के अधिक प्रचलन से पारपंरिक प्रकाशित पत्रिकाओं से ई–पत्रिकाओं की तरफ बदलाव आ रहा है।

ई–पत्रिकाओं के लाभ

1. कोई भी व्यक्ति भौगोलिक बाधाओं को पार करते हुए चौबीस घंटे सूचना तक पहुँचने के मार्ग खोज सकता है जिससे पत्रिकाएँ सर्वव्यापी हैं।
2. ई–पत्रिकाएँ प्रकाशित होकर चंदा देने वाले के पास दूसरे प्रकार के प्रकाशित पारंपरिक पत्रिकाओं से बहुत अधिक पूर्व में पहुँच जाती हैं।
3. यह ई–पत्रिकाएँ एक ही समय में सभी चंदा देने वाले के हाथों में पहुँच जाती है जबकि पारपंरिक पत्रिकाओं को भेजने के लिए देरी के कई कारण विशेषकर भौगोलिक व भेजने की लम्बी प्रक्रिया विधि से बन जाते हैं।
4. दूसरा महत्वपूर्ण ई–पत्रिकाओं का लाभ यह है कि एक से अधिक व्यक्ति एक ही समय में ई–पत्रिकाओं की सूचनाओं तक पहुँच सकता हैं।
5. पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख जो कम्प्यूटर में फीड हो जाते हैं उन्हें डाउनलोड व साथ ही साथ प्रकाशित भी एक से अधिक उपयोक्ता अपने उपयोग के लिए करवा सकते हैं और यह सब निर्भर करता है सूचना प्राप्त करने के अधिकार व आज्ञा पर।
6. बहुसंख्यक और दूरवर्ती स्थानों से सूचना तक पहुँचने के मार्ग खोजना किसी भी व्यक्ति की मेज पर यथास्थान संभव है। यह बहुत बड़े परिसर के लिए एक वरदान साबित हुआ है जहाँ पर सैकड़ों पाठक व बहुत से विभाग उपलब्ध होते हैं।
7. ई–पत्रिकाएँ किसी अंक के खोजने की क्षतिपूर्ति कर देती हैं। यदि किसी प्रकाशित पत्रिका का कोई खंड पूर्ण नहीं है, पुस्तकालय कर्मचारी कम्प्यूटर में सभी लेखों को फीड कर सकता है। जो ऑनलाईन पर उपलब्ध हैं, अथवा डिजीटल स्वरुप में बचा (Save) कर रख सकता है जब तक कि प्रकाशकों द्वारा हार्डकॉपी की आपूर्ति नहीं की जाती है। बहुत से प्रकाशक प्रकाशित पत्रिकाओं के भेजे गए चन्दे के हित में ई–पत्रिकाओं के विभिन्न अंको तक पहुँचने का मार्ग निःशुल्क प्रशस्त करते हैं। निःशुल्क तरीके से ई–पत्रिकाओं के विभिन्न अंकों तक पहुँचने की सूचना प्रकाशित अंकों के मुख पृष्ठ पर अथवा उनके वेबसाइट पर और कभी–कभी प्रकाशकों के केटलॉग में उपलब्ध प्रकाशकों द्वारा कराई जाती है। कई ई–पत्रिकाएँ निःशुल्क भी उपलब्ध होती हैं।

पुस्तकालय के मध्य एक कन्सोर्शिया घटते हुए बजट के साथ, पत्रिकाओं के चन्दे की बढ़ती हुई दरों व उपयोक्ताओं की बढ़ती हुई सूचनाओं की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अनिवार्य हो गया है। ई–पत्रिकाओं का कन्सोर्शिया कुछ नहीं है लेकिन पुस्तकालयों के मध्य एक प्रकार का सहयोग प्रकट करना है जिससे एक साथ पत्रिकाओं का इलैक्ट्रोनिक तरीके से आपस में हिस्सा बाँटना है। इनसे भारत जैसे उन्नति करने वाले देशों की गति को बढ़ावा दिया है। यह बढ़ती हुई कीमतों पर व स्थिर पुस्तकालय बजट के विपरीत एक बहुत आकर्षक विकल्प है।

पुस्तकालय कन्सोर्शिया

शब्द कन्सोर्शिया का प्रादुर्भाव लेटिन भाषा से 19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भागीदारी शब्द के अभिप्राय से हुआ। ऑक्सफोर्ड एड्वान्स लर्नरस शब्दकोष के अनुसार कन्सोर्शिया से तात्पर्य व्यक्तियों, देशों, कम्पनियों के एक समूह से हैं, जो एक प्रोजेक्ट विशेष पर एक साथ कार्य कर रहे हैं। एक पुस्तकालय कन्सोर्शिया बहुत से पुस्तकालयों का एक समूह है जो उपभोक्ताओं की मांग को संतुष्ट करने के लिए अपने संसाधनों को आपस में बाँटने हेतु बनाया जाता है।

संसाधनों को आपस में बाँटना

संसाधनों को आपस में बाँटने को पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की ग्लोसरी में परिभाषित करते हुए यह उल्लेख किया है कि इस शब्द में बहुत सी गतिविधियों का समावेश किया गया है जो पुस्तकालयों का एक समूह संयुक्त रूप से पुस्तकालयी सेवाओं को सुधारने व कीमते घटाने के उद्देश्य से करती है। संसाधनों को आपस में बाँटने का कार्य औपचारिक

तथा अनौपचारिक सहमति से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व स्थानीय स्तर के अनुबंध द्वारा किया जा सकता है। जो संसाधन आपस में प्रयोग में लाने के लिए आपस में बाँटे जाते है वे इस प्रकार से है–जैसे भौतिक प्रलेख, ऑनलाइन/वेब संसाधन, बिब्लियोग्रॉफीक डाटा, व्यक्तियों, प्रक्रियाओं, तकनीकी, व नेटवर्क आदि जो संगठनों अथवा विभागों द्वारा संसाधनों के बाँटने की प्रक्रिया में समावेश करते है उससे कन्सोर्शिया नेटवर्क का स्वरूप बनता है। कन्सोर्शिया नेटवर्क सामान्य उद्देश्यों, प्रक्रियाओं व पद्धतियों को आपस के हित के लिए बाँटते है।

कन्सोर्शिया पर आधारित संसाधनों को बाँटने की आवश्यकता व महत्व

सूचना एक राष्ट्रीय संसाधन है और यह राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक है। डिजीटल युग में जैसे ही सूचना एक आवश्यक संसाधन बन जाती है, सूचना सेवाएँ सभी संगठनों द्वारा प्रदान करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। शैक्षणिक पुस्तकालयों में , पुस्तकालयाध्यक्षों को घटते हुए बजट के साथ अच्छी सेवाओं को प्रदान करने की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कन्सोर्शिया सूचना संग्रह की प्रक्रिया, इलैक्ट्रोनिक संसाधनों को डिजीटाईज, संगठित करने व उन्हें सूचना तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों को उपलब्ध कराने का एक बहुत बढ़िया तरीका है। संसाधनों को आपस में बाँटने व नेटवर्किंग के विचार वास्तव में पूर्व में कुछ ऐसे प्रयत्न हैं लेकिन आजकल इलैक्ट्रोनिक संसाधनों को आपस में बाँटने के लिए पुस्तकालय कन्सोर्शिया बनाने की प्रवृति बन रही है। ई–प्रकाशन ने पत्रिकाओं के प्रकाशन, उनके चन्दे तक पहुँचने के मार्ग प्रशस्त करने और यांत्रिक तरीके से उपलब्ध कराने में एक क्रान्ति ला दी है। पत्रिकाओं को ऑनलाईन तक पहुँचने की कुशलता पुस्तकालयों व सूचना केन्द्रों के मध्य सहयोग के नए और अभी अधिक विकसित करने के स्वरूप की ओर ले जा रहा है। प्रत्येक पुस्तकालय अब पत्रिकाओं की बहुत कम संख्या में प्रकाशित पत्रिकाओं को चन्दे अग्रिम भुगतान करके मंगवा रहे हैं, साधारणतया उन पत्रिकाओं को मंगवाते हैं जो अपने संगठनों के लिए सबसे अधिक सम्बन्धित हैं और पुस्तकालय तब एक जुट होकर कन्सोर्शियम् के द्वारा "इलैक्ट्रोनिकली" पत्रिकाओं को आपस में बाँटते हैं। बढ़ती हुई पत्रिकाओं के चन्दे की कीमतें व पुस्तकालय के घटते बजट का सामना करने के लिए यह एक बहुत अधिक आकर्षक विकल्प है। पुस्तकालय कन्सोर्शिया निर्मित करने की कुछ आवश्यकताओं का यहाँ वर्णन किया जाता है।

1. ज्ञान के विस्फोटक विकास ने प्रत्येक पुस्तकालय के लिए अधिक से अधिक असंभव बना दिया है कि वह सम्बधित सभी सूचनाओं का क्रय कर सके। इसका प्रभाव यह हुआ कि पुस्तकालयों को उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक अर्न्तपुस्तकालय आदान–प्रदान पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

2. वैज्ञानिक प्रकाशनों के विकास व कीमतों की नीतियों ने शैक्षणिक पुस्तकालयों के लिए पत्रिकाओं के क्रय व प्रबंध को अपने सीमाबद्ध बजट के अर्न्तगत रखने के लिए, नई चुनौतियों व अवसरों का सामना करना पड़ रहा है। अतः पत्रिकाओं के प्रवाह की समस्याओं के हल के लिए यह आवश्यक हो गया है कि पुस्तकालयों के मध्य संसाधनों को आपस में बाँटने के लिए एक सामान्य इन्फ्रास्ट्रक्चर वाली संस्था स्थापित हो।

3. सदस्य पुस्तकालयों की इन प्रक्रियाओं पर होने वाले खर्च को घटाया जा सकता है। यह गुण कन्सोर्शिया में निहीत होता है जो सदस्य पुस्तकालयों की तरफ/ओर से एक ऐजेन्ट के रुप में घटी हुई समूह में क्रय की दरों से सूचना के लिए प्राप्त करता है जैसा कि इलैक्ट्रानिक पत्रिकाऐं।

4. तेजी से बढ़ते तकनीकी विकास के फलस्वरूप नए–नए हार्डवेयर व पुस्तकालय कर्मचारियों को प्रशिक्षण व शिक्षा प्रदान करने पर लगातार दबाव बढ़ रहा है।

5. नई तकनीकियों को पूर्णतयाः लागू कर तथा सूचना तक पहुँचने और उसे चारों ओर वितरित करने के नए नए तरीको को अपनाकर उपभोक्ताओं की आशाओं को शीध्रता से पूरी करने में योगदान प्रदान कर रहे हैं।

उपसंहार : सूचना तकनीकी पुस्तकालयों के नेटवर्किंग के माध्यम से संसाधनों को आपस में बाँटने के लिए एक बहुत शक्तिशाली माध्यम है। पुस्तकालय के लिए कन्सोर्शिया इलैक्ट्रोनिक संसाधनों के लिए पुस्तकालय सहयोग का एक बहुत बड़ा कदम है।

कन्सोर्शिया के द्वारा संसाधनों को बाँटने का लाभ सभी सदस्यों को है और इस प्रक्रिया में सभी अपना स्वामित्व

समझते है इस प्रक्रिया से स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचाने के लिए नई तकनीकियों को अपनाकर कीमतों को घटाना चाहिए और सभी सदस्य पुस्तकालयों की उत्पादकता में सुधार लाना चाहिए। संसाधनों को आपस में बाँटने की प्रक्रिया में सदस्य पुस्तकालयों की स्वायत्ता और उपयोक्ताओं को सेवा प्रदान करने की भावना रखने की आवश्यकता है। कन्सोर्शिया पुस्तकालयों के नाम, कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए उनका पता आदि का विवरण, शर्तें व नियमों को भागीदारों को आपस में बाँटना चाहिए। प्रत्येक पुस्तकालय के संग्रहों का एक संगठित केटेलॉग होना चाहिए और वेब इन्ट्रानेट अथवा इन्टरनेट पर रखा जाना चाहिए। सेवाओं के बदले कोई फीस ली जाएगी इस बात का फैसला आपस में तयशुदा नियमों के द्वारा होगा। इलैक्ट्रोनिक मेल, इन्ट्रानेट व नेटवर्किंग की सुविधाओं की उपलब्धता ने संसाधनों को आपस में बाँटने का कार्य पुस्तकालयों के लिए और सरल, अच्छा, सस्ता और अधिक तीव्र गति से कर दिया है। संसाधनों के बाँटने की आधारभूत आवश्यकता सभी को इस तथ्य को ध्यान में रखकर व समझ कर अपने दिलो–दिमाग से माननी पडेगी कि कोई भी पुस्तकालय सदस्य अपने उपयोक्ताओं की मांग को आत्मनिर्भर होकर संतुष्ट नही कर सकते हैं। वेब संसाधनों को बाँटने के लिए एक प्रभावशाली साधन है। कन्सोर्शिया के भागीदारों का इन्ट्रानेट तक पहुँचने के मार्ग द्वारा सूचनाएँ खोजना संसाधनों को बाँटने में और भी वृद्धि करता है। वर्तमान समय में संयुक्त प्रयास से ही सीमित आर्थिक संसाधनों में अधिक सूचना सामग्री का लाभ कन्सोर्शिया के सभी पुस्तकालय सदस्य मिलकर उठा सकते हैं। पुस्तकालय कंसोर्शिया सभी को सूचना की समान प्राप्ति एवं शिक्षा–शोध–अनुसंधान विकास कार्यो में सहायक है। शोध के अच्छे परिणामों के आने से संस्थान की तरक्की के साथ ही देश की भी तरक्की सम्भव है।

बंजारानामा

एक

गर तू है लक्खी बंजारा और खेप भी तेरी भारी है
ऐ ग़ाफ़िल तुझसे भी चढ़ता इक और बड़ा ब्योपारी है
क्या शक्कर, मिसरी, क़ंद गरी क्या सांभर मीठा–खारी है
क्या दाख, मुनक़्क़ा, सोंठ, मिरच, क्या केसर, लौंग, सुपारी है
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

दो

तू बधिया लादे बैल भरे जो पूरब पच्छिम जावेगा
या सूद बढ़ाकर लावेगा या टोटा घाटा पावेगा
क़ज़्ज़ाक़ अजल का रस्ते में जब भाला मार गिरावेगा
धन दौलत नाती पोता क्या इक कुनबा काम न आवेगा
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा

–नजीर अकबराबादी

चूहे हैं मानव के दुश्मन

श्री संजय पौनीकर
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

चूहा एक नन्हा सा विनाशकारी, उपद्रवी एवं चतुर स्तनधारी जीव है। चूहे हमारे अनाज के भंडार, खाने पीने का सामान, कपड़े, कृषि व्यवसाय, अस्पताल, गोदामों, मुर्गी फार्म, विमान पट्टियों, गोदियों, चारागाहों एवं वनों में तथा अन्य वस्तु को नुकसान पहुंचाते हैं। चूहों से सब से ज्यादा परेशान ग्रामीण किसान रहते है क्योंकी चूहे इनके खेतों की खड़ी फसल को भारी क्षति पहुँचाते हैं और खेतों में हजारों की तादाद में गहरे बिल बनाकर मिट्टी का क्षरण करते हैं। इससे किसानों को काफी आर्थिक क्षति उठानी पडती है। चूहे भयानक रोगों/बिमारियों का घर भी है। चूहे मनुष्य एवं अन्य

घरेलू चुहिया गाजर को नुकसान पहुंचाते हुए

पालतु पशु–पक्षियों में लगभग 130 प्रकार की बीमारियाँ भी फैलाते हैं। प्लेग नामक रोग चूहों के कारण ही फैलता है। प्लेग नामक रोग के महामारी के कारण 18 वीं शताब्दी में लंदन जैसे शहर के शहर जन विहीन हो गये थे। हमारे देश में भी प्लेग नामक रोग के महामारी के कारण गांव के गांव खाली हो गये थे। अभी हाल ही में हिमाचल प्रदेश तथा गुजरात के सूरत शहर में प्लेग की महामारी के कारण हजारों लोगों की मौत हुई थी।

ये स्तनधारी जीव पृथ्वी पर मानव से बहुत पहले आये हैं। जबसे मानव ने खेती–बाड़ी के साथ एक स्थिर जीवन शुरु किया तभी से ये प्राणी प्रलयकारी गतिविधियों से मानव के प्रतिस्पर्धी बने हुए हैं। इनका संदर्भ वेदों एवं पुराणों में भी मिलता है। चूहा भगवान गणेश का वाहन भी है। राजस्थान के बीकानेर शहर में तो चूहों का एक प्रसिद्ध मंदिर है। वहाँ पर चूहें मानव के साथ–साथ खाते पीते हैं। हमारे अंधविश्वास, धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक बन्धन इनकी रक्षा करते हैं। जिस प्रकार से भारत में कृषि–जलवायु में विविधता है, उसी तरह चूहों की भिन्न भिन्न प्रजातियाँ पायी जाती हैं। एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में आर्थिक महत्व की कुल 15 प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

चूहा कृन्तक (रोडन्ट) परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। ये जीव हमेशा कुछ न कुछ कुतरते रहते हैं, इसलिए इस जीव को कृन्तक कहते है। ये वर्ग सभी स्तनधारी जीवों में सबसे बड़ा है। कृन्तक (रोडन्ट) वर्ग में अन्य जीव हैं, गिलहरी, साही, वोल, हेमस्टर और जरबिल है।. विश्व मे कृंतक (रोडन्ट) की 2277 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनके 481 जेनरा और 22 कुल हैं। हमारे देश में इनमें से 85 से अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत में चूहों की निम्नलिखित प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनमें प्रमुख भारतीय जरबिल, (टटेरा इंडिका), कोमल रोयेवाला मैदानी चूहा (रेस्टस मेल्टोडा), घरेलू चूहा (रैट्स रैट्स), घरेलू चूहिया (मस मस्कुलस), छोटी पूंछवाला चूहा (निसोकिया इंडिका), छोटी घूस (बेंडीकोटा बेंगालेंसिस), बडी घूस (बेंडीकोटा इंडिका), भारतीय रेगिस्तानी जरबिल (मेरियोनिस हरियाणी), पर्वतीय क्षेत्रों का चूहा (रैट्स रैट्स ब्रूनस कुलस), नार्वे रेट (रैट्स नार्वेनिकस), कच्छ रॉक रैट्स (रैट्स कच्छिकस) इत्यादि हैं। विश्व में मुख्यतः उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में चूहों की संख्या दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। इनमें हर परिस्थिति में सफलतापूर्वक रहने एवं प्रजनन की विशाल क्षमता है, इसीलिए आज विश्व में समस्त प्राणियों की अपेक्षा कृन्तकों (चूहों) की संख्या सबसे अधिक हैं।

कृन्तको के एक जोड़ी इन्साईजर (आगे के नुकिले दांत) होते हैं, जो प्रतिदिन 0.4 मि.मी. की दर से बढ़ते रहते हैं। इसी कारण चूहे हमेशा इनकी घिसाई करते या कठोर से कठोर वस्तु को कुतरते रहते हैं। जिससे इनकी लंबाई निश्चित रह पाये अन्यथा इन दांतो की लगातार बढ़त से ये

अंदर की तरफ मुड़कर मस्तिष्क तक को भेद सकते हैं। इससे बचने के लिए दांतो की घिसाई बहुत जरूरी है। इस गतिविधि में ये कठोर से कठोर वस्तु जैसे लकड़ी के दरवाजे, बिजली के तार, अन्य कई घरेलू वस्तु तक काट डालते हैं।

मैदानी चूहा – लकड़ी कुतरते हुए

चूहे की प्रजनन क्षमता इतनी जबरदस्त होती है कि एक चूहा जोड़ा साल में 800–1200 से ज्यादा बच्चे पैदा कर सकता है। चूहे साल भर प्रजनन करते हैं। चूहे का जीवनकाल 1 से 2 साल का होता है। चूहे 6 से 16 सप्ताह में जवान हो जाते हैं। मादा चूहे का गर्भकाल 18 से 20 दिन का होता है। चूहे खाते तो अपने वजन के दस प्रतिशत के बराबर ही, पर बरबाद ज्यादा करते हैं। इनमें स्पर्श, सुनने एवं सूघंने की तीव्र क्षमता होती है। इनकी जनसंख्या बढ़ाने में मानव का भी हाथ है। हमने जहाँ–तहाँ गंदगी फैलाकर चूहे की आबादी बढ़ाने में योगदान किया है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण हमारे रेलवे स्टेशन हैं। रेल के स्टेशन के किनारे या रेल कि पटरियों पर हम जूठे अन्न फेंक कर चूहों को भोजन मुहैया कराते हैं। रेल की पटरियों के किनारे चूहों के बड़े–बड़े बिल मिलेंगे जहाँ से निकलकर मोटे–मोटे चूहे दिनभर इधर–उधर धमाचौकड़ी मचातें रहते हैं। ये दिन में भी इतने बेखौफ होकर घुमते है कि मानव व अन्य जीवों से भी नहीं डरते है। कभी–कभी तो बेखौफ होकर रेल के अंदर पहुंच कर यात्रियों को परेशान करते हैं तथा रेल कि पटरियों के नीचे मिट्टी खोदकर पटरियों को नुकसान पहुँचाते हैं। इससे हमेशा रेल दुर्घटना होने कि संभावना बनी रहती है। चूहे विमान यातायात में भी बाधा डालते है। चूहे छोटे–बड़े बाँधों को भी नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे बरसात में बाँध ढह जाने से, बाढ़ का खतरा रहता है।

चूहा सर्वभक्षी जीव है, ये अनाज से लेकर पौधों के बीज और कीटों जैसे टिड्डा, झिंगुर तथा भृंगो को खा लेता है। इसी कारण चूहा हर वातावरण में रह लेता है। चूहों ने अपने आपको हर तरह के वातावरण के अनुसार ढाल लिया है। कुछ चूहों कि प्रजातियाँ जैसे छोटी घूस (बेंडीकोटा बेंगालेंसिस) तथा बडी घूस (बेंडीकोटा इंडिका) कभी भारत के रेगिस्तान में नहीं पाये जाते थे। पर हाल ही में इनको रेगिस्तानी इलाकों में देखा गया है। ऐसा अनुमान है कि, देश में रेल यातायात का विस्तार होने की वजह से ये चूहे रेल द्वारा रेगिस्तानी क्षेत्रों में फैल गये हैं। चूहे का बिल लंबा और गहरा होता है। इनके बिल छोटे–छोटे चेम्बरों में विभाजित होते है और एक दूसरे से जुड़े होते है। जब चूहे को खतरा हो तब दूसरे किसी भी बिल में छुप सकता है। एक चूहा 10 से लेकर 15 तक बिल बना सकता है।

चूहे कि कुछ प्रजातियाँ बहुत चतुर होती हैं। घूस जाति के चूहे अपने बिल को मिट्टी से बंद रखते हैं ताकि सांप जैसे उसके प्राकृतिक शत्रु बिलों में न घुस पायें। ज्यादातर चूहे निशाचर होते है। इसलिए चूहों की हर गतिविधियों का हमे पता नही चलता है। चूहे अच्छे तैराक होते है।

हमने चूहे के प्राकृतिक शत्रु जैसे सांप, बिल्ली, सियार, शिकारी कुत्ते, मॉनिटर छिपकली, नेवला, उल्लू, बाज तथा अन्य शिकारी पक्षियों के प्राकृतिक आवास को नष्ट किया है या हमने इनका बेइंतहा शिकार किया है। जिसकी वजह से चूहों के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम हो रही है और चूहों कि संख्या लगातार बढ़ रही है। खेतों की धान की खड़ी फसल को भी चट कर जाते है। चूहा अपने बिलों में एक क्विंटल प्रति हेक्टर की दर से खाद्यान्न भी जमा कर लेता है।ये प्राकृतिक शत्रु चूहों कि संख्या कम करते हैं, और प्राकृतिक संतुलन बनायें रखने में मदद करते हैं। ये वृक्षारोपण के पौधे तथा बड़े पेड़ों की जडों में सुरंग बनाकर रहते है, जहाँ वे जडों को कुतर कर उन्हे नुकसान पहुँचाते है जिस के कारण पेड़ की टहनियाँ, पत्तियों तक लवण का संवहन नहीं हो पाता है। इस कारण पेड़ सुखने लग जाता है और धीरे धीरे वह मृत हो जाता है। ये फसलोत्पादन, फलोत्पादन, वनों के महत्वपूर्ण प्रजातियों के बीज और पेड़, यातायात, सड़कों, बांधों, बंजर भूमि एवं आवासीय क्षेत्रों में बहुत ही आर्थिक नुकसान पहुँचाते हैं। अतः इनका नियंत्रण अति आवश्यक है।

जड़ी बूटियों की रानी-तुलसी

श्री अमीन उल्लाह खान
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

तुलसी के पौधे के आकार एवं लक्षणों के आधार पर इसे 'लेबिएटि' कुल में रखा गया है। तुलसी का पौधा विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं जलवायु वाली दशाओं में आसानी से उगाया जा सकता है। पहाड़ों एवं उबड़–खाबड़ मृदाओं में भी तुलसी का पौधा जंगली रुप में उग आता है। तुलसी की फसल एक कठोर प्रकृति की फसल है, इसलिये इस पर कीट पंतगों एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है।

तुलसी का पौधा 3–5 फुट ऊँची, पत्तियाँ आमने–सामने जोड़े में लगभग 5 से.मी. लम्बी, दीर्घवृत्तीय, अण्डाकार, आधार पर संकरी, गहरी दांतों वाली तथा दोनों सतहों पर रोमिल होती हैं। पत्तों पर कई छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। फूल सुंगधित तथा हल्के नीले रंग के होते हैं। बीज पीले या लाल रंग के समान होते है। तुलसी का पौधा सम्पूर्ण भारत में प्रायः घरों, उद्यानों एवं मन्दिरों में लगाया जाता है। यह पौधा हिमालय में छः हजार फुट की ऊंचाई पर भी फलता–फूलता रहता है।

भाषाई नाम भेद

भाषाई नाम भेद की दृष्टि से इसे संस्कृत में वृंदा, हिंदी में तुलसी, गुजराती में तुनसा, तेलगू में गगेरा, कन्नड़ में श्री तुलसी, मलयालम में मित्तवु, फारसी में रेहां, अरबी में बदरुत, अंग्रेजी में होली बेसिल तथा लैटिन में ओसिमम सैंक्टम (*Ocimum sanctum*) कहते हैं। तुलसी को इसके औषधीय गुणों के कारण जड़ी बूटियों की रानी भी कहते हैं।

तुलसी विश्वभर में एक पूज्य समझा जाने वाला पौधा है। विश्व में एकमात्र तुलसी का पौधा ही ऐसा है जिसकी विभिन्न धर्मों के अनुयायी बड़ी श्रद्धा से पूजा अर्चना करते हैं। यह हिंदु संस्कृति का अभिन्न अंग है। ठीक इसी प्रकार ईसाई धर्म के अनुयायी भी इसे पवित्र मानते हैं। इसलिये अंग्रेजी भाषा में इसे 'होली बेसिल' या 'सेक्रेट बेसिल' यानी पवित्र कहते हैं। विश्व के सभी ईसाई इस पौधे की पवित्रता की पुष्टि इस बात से करते हैं कि तुलसी का पौधा ही ईसा मसीह यानी क्राइस्ट की कब्र पर उगने में सफल रहा। विश्व के विभिन्न देशों में इसे औषधीय पौधे एवं धार्मिक श्रद्धा के कारण उगाया जाता है। हिंदू धर्म के अनुयायी तुलसी के पौधे की पूजा–अर्चना के उपरांत ही अपनी दिनचर्या प्रारंभ करते हैं। स्कंद पुराण के अनुसार कार्तिक माह में विष्णु और लक्ष्मी सम्मिलित रुप से इस पौधे में एकरुप में वास करते हैं–"पार्वती विल्ववृक्षस्था लक्ष्मी च तुलसी गताम्" भारतीय संस्कृति में कन्यादान के महत्व को ताजा बनाए रखने हेतु अभिभावकों को कन्याओं के प्रति संवेदनशीलता का ज्ञान करवाने हेतु कार्तिक एकादशी को तुलसी विवाह की प्रथा अत्यंत महत्वपूर्ण है। मध्यकाल से लेकर वर्तमान तक कन्यावध जैसी घृणित परंपरा देखने को मिलती है।

तुलसी (ओसिमम सैंक्टम)

आज भी सोनोग्राफी द्वारा पुत्री जन्म की संभावनाओं में गर्भपात करवाने की अनेक घटनाएं प्रकाश में आ रही है। अनेक हिंदू परिवार जिनमें कन्या नहीं होती वे तुलसी का विवाह शालिगराम जी (विष्णु) के साथ उमंग उत्साह से संपन्न करवाते हैं। ऐसा करने का धार्मिक आधार तो है ही लेकिन इसके साथ–साथ कन्या जन्म की संभावनाओं पर गर्भपात करने वाले व्यक्तियों को कन्याओं के प्रति संवेदनशीलता की अभिवृत्ति के विकास की प्रेरणा है। धार्मिक अनुष्ठानों में भी तुलसी की माला पहनी जाती है। इस प्राचीन परम्परा के पीछे भी यही कारण है कि इसे पहनने से अनेक रोगाणुओं से शरीर की रक्षा होती है। विष्णु, राम, कृष्ण आदि की प्रतिमाओं पर तुलसी का जल चढ़ाया जाता है।

तुलसी के तेल के प्रमुख उपयोग

ओसिमम जाति का तेल इसलिये महत्वपूर्ण है कि इसमें केम्फर (कपूर), यूजिनॉल, मिथाइल ईथर, थाइमॉल आदि प्राप्त होते है। ये सगंध उद्योग में बहुत काम आते हैं।

तुलसी का तेल विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने में प्रयुक्त किया जाता है जैसे कफ सीरप, खांसी की गोलियाँ अन्य फार्मास्यूटिकल औषधियाँ आदि। इसके अलावा तुलसी के तेल का प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधनों तथा आयुर्वेदिक दवाओं में भी किया जा रहा है। तुलसी के तेल से प्राप्त अवयवों से डेन्टल क्रीम, माऊथ वाश एवं टूथ पेस्ट आदि का भी निर्माण किया जाता है। तुलसी के तेल को खाद्य पदार्थों को सुवासित करने में भी प्रयुक्त किया जाता है।

हमारे जीवन से तुलसी बहुत नजदीक से जुड़ी है। प्राचीन काल से ही तुलसी के पौधों के उपयोग के प्रमाण मिस्त्र, यूनान एवं रोमन अभिलेखों में मिलते हैं। यह पौधा घरेलू वैद्य के रुप में अनेक बीमारियों के निवारण्0ण्ण में सहायक है।

तुलसी का उपयोग निम्न विकारों को दूर करने में उपयोगी पाया गया है।

- तुलसी की पत्तियों का उपयोग बैक्टीरियारोधी, फंगसरोधी तथा विषाणु जनित रोगों के निदान में किया जाता है।
- तुलसी का नियमित सेवन करने से मुंह से आने वाली दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है।
- तुलसी का काढ़ा पीने से सर्दी, जुकाम, सिरदर्द, बुखार आदि तकलीफों में आराम मिलता है।
- टी. बी. की औषधि बनाने के लिये भी तुलसी उपयोग में लाई जाती है।
- इसकी जड़ पीसकर द्रव के रुप में लगाने से बिच्छु, मकड़ी और साँप आदि के जहर की औषधी बनाई जाती है।
- तुलसी के पांच पत्ते और दो काली मिर्च खाने से वात रोग का नाश होता है।
- तुलसी की पत्तियों के रस को शहद के साथ मिलाकर चाटने से चक्कर आना बन्द हो जाता है।
- प्रातः काल खाली पेट तुलसी के पत्ते चबाकर खाने से पाचन शक्ति तेज होती है।
- पीने के पानी में अथवा चाय के पानी में लगातार नियमित रुप से कुछ पत्तियाँ डाल कर सेवन करने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।
- तुलसी की पत्तियाँ काली मिर्च के साथ पीस कर सूंघने से सिर दर्द में आराम मिलता है।
- तुलसी की पत्तियाँ और अदरक को पीसकर उनका रस निकाल कर एक–एक चम्मच दो–दो घंटे पर सेवन करने से पेट दर्द ठीक हो जाता है।
- पत्तियाँ सलाद और दूसरे भोजन में मसाले की भांति उपयोग की जाती है।
- बवासीर में तुलसी के 10 से 20 ग्राम बीज कूट कर मिट्टी के बर्तन में भिगो कर सुबह उसमें जीरा और शक्कर मिला कर उस पानी को पीने से खून गिरना बन्द हो जाता है।
- दही के साथ तुलसी के बीजों का चूर्ण लेने से भी मल के साथ रक्त जाना बन्द हो जाता है।
- तुलसी के पत्तों के सेवन से रक्तचाप सामान्य होता है।
- कान का दर्द दूर करने के लिये तुलसी के पत्तों के रस की बूंदे कान में डालते हैं।
- समय से पूर्व बाल पकने लगें तो आँवला चूर्ण के साथ तुलसी दल पीसकर दोनों का घोल बालों में लगाने से चमत्कारिक लाभ होता है।
- तुलसी के पत्तों की चाय बनाकर प्रायः जुकाम में दी जाती है।

सब मिलाकर यह केवल प्राकृतिक प्रदूषण की ही रोकथाम नहीं करती बल्कि प्रदूषण के फलस्वरुप व्याधिग्रस्त होने पर स्वास्थ्य लाभ के लिये भी अति महत्वपूर्ण है।

यदि तुलसी का पौधा प्रत्येक घर में रोपित है तो वहां प्रदूषण अपना साम्राज्य जमाने में असफल ही रहता है। तुलसी का पौधा जहां पर होता है वहां की वायु विषयुक्त जीवाणुओं से मुक्त रहती है क्योंकि तुलसी की महक से मच्छर और विषैले जीवाणु मर जाते हैं या दूर भाग जाते हैं। इसके पर्यावरणीय लाभ जबर्दस्त है। अतः प्रत्येक भारतीय नागरिक को विभिन्न प्रकार की बिमारियों से निजात पाने तथा वायु में स्वच्छता को बनाए रखने के लक्ष्य से अपने घर–आंगन में तुलसी का पौधा अवश्य लगाना चाहिए।

प्लास्टिक प्रदूषण से दूभर होता जीवन

श्रीमती रोशनी चौहान
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्लास्टिक की खोज पर जरुर वैज्ञानिकों ने उल्लास के साथ एक दूसरे की पीठ थपथपाई होगी, लेकिन आज इसका होना बन गया है मानव जीवन के गले की हड्डी जो न निगली जाय न उगली जाय।

अलग–अलग रुपों में और रंगों में बिखरा प्लास्टिक यहाँ–वहाँ पड़ा दिखाई देता है। जब वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक की खोज की तब हम भी बड़े खुश हुए कि वाह इतना टिकाऊ, हल्का और बहुत सारा वजन उठाने वाला एक पदार्थ हमने खोज लिया है, और उसे मनचाहे ढ़ंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। दुर्भाग्य से मानव प्लास्टिक पर अधिक निर्भर होता जा रहा है। वर्ष 2009 में 29 लाख टन प्लास्टिक का निर्माण हुआ तथा 15 लाख टन कचरे के रूप में फेंका गया। उस समय किसी ने भी ये नहीं सोचा कि ये प्लास्टिक कितना खतरनाक हो सकता है। इससे अनेक बीमारियाँ हो सकती है। हमारे चारों ओर का वातावरण दूषित होगा। प्लास्टिक से हमारे चारों ओर का पर्यावरण दूषित होने लगा और धीरे–धीरे वह भस्मासुर की तरह इस्तेमाल करने वाले के लिए ही मुसीबत बन गया है। प्लास्टिक मानव व जीव जन्तुओं के लिए खतरा बन गया है।

पहाड़ों में जहाँ प्रकृति ने अपने सौन्दर्य की छठा बिखेरी थी, अब वहाँ प्लास्टिक का कचरा जगह–जगह दिखाई पड़ता है। यहाँ–वहाँ हर जगह प्लास्टिक की थैलियाँ नजर आती हैं। सरकार ने भी प्लास्टिक पर प्रतिबन्ध (रोक) लगाने की कोशिश की मगर सफलता नहीं मिली क्योंकि हर इंसान इसका आदी बन गया है।

प्लास्टिक धरती की सबसे कीमती चीज पानी को न सिर्फ खराब कर रहा है बल्कि झीलों, तालाबों, नदियों ही नहीं समुद्र व महासागरों के लिए भी खतरा बनता जा रहा है।

धरती का सारा कूड़ा जिसमें बहुत सारा प्लास्टिक भी है, महासागरों की जान ले रहा है, समुद्री जीव जन्तु प्लास्टिक खाकर मर जाते है और तो और मानव के रक्त में भी प्लास्टिक ने अपनी जगह बना ली है। पुराने समय में कचरा प्राकृतिक होता था, समुद्र में घुल मिल जाता था। प्लास्टिक के साथ ऐसा नहीं होता ।

गैर सरकारी संगठन ग्रीन पीस के थीलोमाक कहते हैं, दुनिया के समुद्रों में बड़ी–बड़ी भंवरों वाली पाँच जगहें हैं वहीं समुद्री कूड़ा इकट्ठा होता रहता है। चूंकि हम बड़ी मात्रा में प्लास्टिक फेंकने लगे हैं तो वहाँ भी प्लास्टिक ही जमा हो रहा है। वह अधिकतर जमीनी कचरे के साथ समुद्रों में पहुँचता है। 80 फीसदी नदियों के रास्ते से और 20 फीसदी शिपिंग उद्योग के माध्यम से।

थीलोमाक सागर विज्ञान विशेषज्ञ हैं और ग्रीन पीस के एक जहाज द्वारा यह देखने निकल पड़े कि महासागरों में कितना कचरा जमा हुआ है वे कहते हैं, हम सोच भी नहीं सकते कि महासागरों में प्लास्टिक वाला कचरा जमा हो रहा है। हमने पानी में गोता लगाया और समुद्री भूतल पर हमने नीले लाल सुनहरे हरे रंग के प्लास्टिक के ऐसे टुकड़े देखे, जो जमीन से हजारों किलोमीटर दूर वहाँ पहुँचे थे। इस प्लास्टिक का सीधा असर पड़ता है, समुद्री जीवों पर, क्योंकि वे अपने चारे के साथ इसे भी निगल जाते हैं। फिर उनकी जान पर बन आती है, कई समुद्री जीव और चिड़ियाँ समुद्र में तैर रहे या उसके पानी में मिलने वाली चीजों को खाती है। वे अक्सर पानी में पड़े प्लास्टिक के टुकड़ों ब्रश के टुकड़ों को खा लेते हैं। यह चीजें उनके पेट में भरती जाती हैं और फिर वे मर जाते है।

प्लास्टिक से पूरी दुनिया पर खतरा मंडरा रहा है। ऐसा नहीं है कि हम ये सोच कर शांत रहें कि चलो हमारे पेट में तो प्लास्टिक नहीं जा रहा है। इन कृत्रिम पदार्थों से निकले खतरनाक केमिकल कभी न कभी हमारे शरीर में भी पहुँच जाते हैं। बात बिल्कुल साफ है। हम भी तो प्रकृति के खाद्य चक्र में आते है। तो फिर खतरे के कुचक्र से भला हम कैसे बच सकते हैं।

प्लास्टिक नाम की डाक्यूमेंटरी फिल्म बनाने वाले ऑस्ट्रेलिया के फिल्म निर्माता वेर्नर बूटे ने अपना खून ये जानने के लिए टेस्ट करवाया कि उनके खून में क्या कार्सजेनिक यानि कैंसर पैदा करने वाले तत्व हैं। बूटे बताते हैं मैं पहले से ऐसे शोधों के बारे में जानता था कि हममें से हर, एक के खून में प्लास्टिक है। इसलिए मेरे खून में भी थोड़ा बहुत बिस्फेनाल जरुर होगा। लेकिन इस खतरनाक रसायन की मात्रा मेरे शरीर में इतनी ज्यादा थी कि मुझे धक्का लगा। फिर हमने पूरी फिल्म टीम का खून चेक करवाया और सभी के खून में वे रसायन थे जो प्लास्टिक जैसे कृत्रिम पदार्थों से आते हैं।

घरों में कुछ समय पहले चांदी, तांबे, पीतल, कांस्य व ऐलूमिनियम के बर्तन खाना बनाने व खाने में प्रयोग में लाये जाते थे आज के दौर में उनकी जगह प्लास्टिक के बर्तन काम में लाये जाते हैं जो हानिकारक हैं। इनसे भयंकर बीमारियाँ हो जाती है।

प्लास्टिक से निजात पाने के लिए वैज्ञानिक खोज में लगे हैं तथा वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे जीवाणु खोज लिए है जो प्लास्टिक से निजात दिला सकते हैं।

प्लास्टिक कचरा देश में गंभीर समस्या बन गया है। राष्टपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने प्लास्टिक उद्योग से कचरा प्रबंधन के लिए उचित उपाय अपनाने की अपील की है।

लेकिन यह समस्या अकेले किसी संस्था या वैज्ञानिक वर्ग द्वारा दूर नहीं की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को इसके दुष्परिणाम जानते हुए बहुत ही बुद्धिमता तथा विवेक से काम लेकर इस अमर असुर से मानव जाति की रक्षा करने के लिए सतत् प्रयास करने होंगे।

अब समय आ गया है कि प्लास्टिक का प्रयोग कम करने की कोशिश करें। पूरी दुनिया को एकजुट होकर प्लास्टिक से निजात पाने के लिए कदम उठाने होंगे।

दुष्ट न छांड़े दुष्टता, कैसेहूँ सुख देत,
धोयेहू सौ बेर के, काजर होय न सेत।

—वृन्द

जे रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग,
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।

—रहीम

यारसा गुम्बा के समुचित दोहन की आवश्यकता

श्री अमित पाण्डेय, डॉ. एन.एस.के. हर्ष एवं श्री वी.के वार्ष्णेय
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

कवकों का उनके औषधीय गुणों के कारण उपयोग सदियों से चला आ रहा है। इसी श्रृंखला में यारसा गुम्बा (कोर्डीसेप्स साइनेन्सिस) जिससे कीड़ा जड़ी भी कहते हैं।

कोर्डीसेप्स साइनेन्सिस का लार्वा समेत फलकाय

पिछले कुछ दशकों से भारत के उत्तरी पर्वतीय भाग विशेषकर उत्तराखण्ड में अति महत्वपूर्ण बन चुका है। यह कवक पुरातन कालीन चीन में अति लोकप्रिय था और केवल चीन के राजा–महाराजाओं इत्यादि के लिये ही उपलब्ध था। इसकी औषधीय विशेषताओं में सबसे महत्वपूर्ण है सेवन करने वाले के शरीर में उर्जा बढ़ा देना व साथ ही साथ ये श्वसन क्षमता को भी बढ़ा देता है। इन्हीं दो कारणों से यह खिलाड़ियों के बीच चीन में अति लोकप्रिय हो गया है। वे नियमित रुप से इसका सेवन कर अपने प्रदर्शन को सुधारते हैं। इसके अलावा यह कवक कई प्रकार के रोग जैसे कैंसर, पाचन व उत्सर्जन संबंधित विकारों में उपयोगी साबित होता है। रक्त संबधित विकारों विशेषकर प्रतिरक्षा तंत्र को भी यह कवक मजबूत करता है।

यह कवक तब उगता है जब हिमालय के ऊंचे शीर्ष पर ग्लेशियर पिघलने लगते हैं और उसके नीचे से घास के मैदान लहलहाने लगते है। तब अप्रैल से लेकर जून तक के महीनों में यारसा गुम्बा पाया जाता है। वस्तुतः यह कवक एक कीट के लार्वा जिसे हिपीऐंलीस अरमौरीकेन्स कहते है, पर परजीवी की तरह उगता है और उसके शरीर के अंदर पूरी तरह फैल जाता है। कुछ समय पश्चात कीड़े की मृत्यु हो जाती है। यह लार्वा भूमि के भीतर रहता है और इसी दौरान इसे यारसा गुम्बा का संक्रमण होता है। जब ग्रीष्मकाल में ग्लेशियर की बर्फ पिघलने लगती है तो यारसा गुम्बा इस भूमि में स्थित लार्वा के सिर से निकलकर भूमि के बाहर आता है और कवक का फलकाय बनाता है। यह लगभग दो इंच लंबा होता है परन्तु घास के बीच छुपा होने के कारण आसानी से दिखायी नही देता है। भूमि पर बैठकर या लेटकर घास के बीच इसे बारीकी से खोजने पर यह नज़र आता है। इसे भूमि से लार्वा समेत निकाला जाता है।

औषधीय गुणवत्ता, सीमित उपलब्धता व विदेशी बाज़ारों में अत्यधिक मांग के कारण इसका मूल्य तीन लाख रुपया प्रति किलो से ज्यादा भी हो सकता है। इस मांग के चलते पर्वतों में रहने वाले ग्रामीण बुग्यालों (घास के मैदान) में अप्रैल–मई के मौसम में चले जाते हैं। वह जून तक इसे एकत्र करते रहते हैं। इस दौरान पर्वतीय इलाकों के स्कूलों में अनुंपस्थित छात्रों की संख्या काफ़ी बढ़ जाती है क्योंकि प्रायः ग्रामीण अपने पूरे परिवार सहित ऊपरी इलाकों में जाकर इसे इकठ्ठा करते हैं। इस कवक के मूल्यवान होने के कारण आपराधिक तत्व भी इन इलाकों में सक्रिय हो जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में यारसा गुम्बा से संबधित तस्करी की कई घटनाएं सामने आई हैं। इस कवक के अत्यधिक दोहन के कारण इन अछूते पर्वतीय इलाकों में आवागमन बढ़ने के कारण इस क्षेत्र की जैव विविधता को खतरा हो गया है और साथ ही साथ यारसा गुम्बा के अत्यधिक दोहन से इसके खुद के जर्मप्लाज़्म के क्षीण होने का खतरा बढ़ गया है।

वन अनुसंधान संस्थान इस कवक को कृत्रिम रुप से उगाने सम्बंधी शोध कर रहा है व शोध के दौरान इसे कई तरह के अनाजों पर उगाकर अध्ययन किया गया है। विभिन्न तापमानों, आर्द्रता व अन्य सम्बंधित आयामों का निर्धारण भी किया जा रहा है। इस तरह से उगाये हुये कृत्रिम यारसा गुम्बा का रासायनिक परीक्षण भी किया गया है व विभिन्न जर्मप्लाज़्म में रासायनिक तत्वों की मात्रा का निर्धारण भी किया गया है। इस प्रकार से यदि सफ़लतापूर्वक इसका कृत्रिम उत्पादन हो जाये तो कम मूल्य में यह औषधि आम जनता को उपलब्ध हो जाएगी और इसका प्रयोग कर वे अपनी बीमारियों के उपचार के साथ–साथ अपनी शारीरिक क्षमताओं को भी बढ़ा सकते है। कृत्रिम उत्पादन से इसके दोहन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी व इस क्षेत्र की जैव विविधता का संरक्षण हो सकेगा।

जिंको बाइलोबा का संरक्षण एक आवश्यकता

श्री सुरेश चन्द्र
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

देहरादून शहर मौलिक रुप से दून घाटी के नाम से जाना जाता है। इसका उद्भव सन् 1672 में श्री गुरुरामराय का औरंगजेब के शाही हुक्मनामे द्वारा टिहरी नरेश से सात गाँव की ज़ागीर मिलने के बाद से प्रारम्भ हुआ। श्री गुरुरामराय ने इस स्थल को अपना स्थाई कार्यक्षेत्र बनाया। गुरु महाराज द्वारा डेरा डालने पर इसके नाम से पहले डेरा जुड़ गया और उसका अपभ्रंश देहरादून हो गया। सन् 1817 में गोख्याणी (गोरखों द्वारा गढ़वाल पर आक्रमण) के पश्चात देहरादून पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। भारत में अंग्रजों ने सन् 1824 से चाय की खेती करनी प्रारम्भ की और सन् 1836 से उसका व्यापारिक उत्पादन प्रारम्भ कर दिया। इसी क्रम में उन्नीसवीं सदी के मध्य से उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक तक देहरादून में चाय बागानों की स्थापना की गई। जिनमें होम टाउन, हरबंसवाला, कारबारी, बंजारावाला, सिरमौर स्टेट, गुडरिक टी स्टेट, हरबर्टपुर, बिधौली टी स्टेट आदि चाय उद्यानों के मध्य छायादार वृक्षों को लगाया गया जो चाय बागानों के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

देहरादून को किसी समय "सिटी आफ ग्रीन ग्रासेज एण्ड ग्रे हेयर्स" अर्थात हरी घास और सलेटी बालों (अंग्रेजों के बाल पकने पर सफेद न होकर सलेटी हो जाते हैं) का शहर कहा जाता था। चीनी, चाय, चावल, चकोतरा और चोब (इमारती लकड़ी) देहरादून की पहचान थे। खैर, अब तो इस खूबसूरत शहर को नज़र लग गई है। वक्त और पैसे की खनक ने छबील बाग, महारानी बाग, भण्डारी बाग, मातावाला बाग और दर्जनों बगीचों की आभा को निगल लिया है।

बात यहां के चाय बागानों की हो रही थी। चाय बागानों की स्थापना के साथ–साथ कुछ खास किस्म के वृक्ष चाय बागानों के साथ लगाए गए उनमें जिंको बाइलोबा (*Ginko biloba*) नामक कुछ वृक्ष भी थे। आर्केडिया टी स्टेट से तेलपुर मार्ग पर यह वृक्ष मरणासन्न स्थिति में पहुँच गए हैं जिसका कारण मुख्यतः कुप्रबंधन है। पशुओं से बागान की रोकथाम के लिए जो कंटीले तार लगाये गये हैं उसने वृक्षों की छालों में घाव बना दिये हैं। पीपल के वृक्ष सहजीवी के रुप में इन वृक्षों पर उग आए हैं जिससे कुछ ही शाखाएं हरी रह गई हैं तथा शेष सूख गई हैं।

कंटीले तार से वृक्षों की छाल में घाव

जिंको बाइलोबा के उक्त वृक्ष मात्र वृक्ष के अतिरिक्त देहरादून का ऐतिहासिक जीवंत दस्तावेज भी हैं। यद्यपि इनकी उत्पति चीन से है जहां इस प्रजाति को इन–जिंग (Yin Zing) के नाम से जाना जाता है। सघन पर्णपाती के रुप में दिखने वाला यह वृक्ष वास्तव में शंकुधारी वृक्षों की श्रेणी में रखा गया है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पति के पश्चात उगने वाले वृक्षों की श्रेणी का यह प्राचीनतम प्रतिनिधि है। अनेक औषधीय गुणों वाला यह वृक्ष दुलर्भ एवं लुप्तप्राय प्रजातियों की श्रेणी में रखा गया है। इसी प्रकार के अनेक वृक्ष जो ऐतिहासिक एवं पर्यावर्णीय महत्व रखते हैं उनका संरक्षण किया जाना आवश्यक है। राज्य वन विभाग का कर्तव्य है कि वह ऐसे वृक्षों की सूची बनाए और उनके संरक्षण को सुनिश्चित करने की सार्थक पहल करें।

खाद्यान्नों के हानिकारक कीट एवं नियंत्रण

डॉ. के.पी. सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

खाद्यान्नों को हानि पहुँचाने वाले कीट मुख्यतया कोलियोप्टैरा एवं लेवीडोप्टेरा कर्म से सम्बन्धित हैं। इन हानिकारक कीटों का सम्बन्ध इस प्रकार है–

(अ) प्रमुख हानिकारक कीट

1. (क) साइटोफिलस ओराइजी (लिन)
   (ख) एस. जियामेज (माट्स)
   (ग) साइटोफिलस ग्रेनेरियस (लिन)
2. राइजोपर्था डोमिनीका (फेब)
3. ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम (एवट्र्स)
4. (क) कैलोसोबुकस चाइनेन्सिस (लिन)

(ख) कैलोसोबुकस माक्यूलेट्स (फेब)

5. साइटोट्रोगा सीरियेलेला (आलीवियर)
6. कोरसाइरा सिफेलोनिका (स्टैन्टन)
7. प्लोडिया इंटरपन्क्टेल्ला (ह्यूबनर)
8. काड्रा (इफैस्टिया) काटेल्ला (वाकर)

(ब) गौण हानिकारक कीट

9. (क) ट्राइबोलियम केस्टेनियम (हर्बस्ट)
   (ख) ट्राइबोलियम कनफ्यूजम (जैक्य)
10. लेथेटिकस ओराइजी (वाटर हाऊस)
11. ओराइजीफिलस सुरिनामेन्सिस (लिन)
12. (क) क्रिप्टोलेस्टिस फेंरूजिनियस (ओलीवियर)
    (ख) क्रिप्टोलेस्टिस पूसीलस (स्कोन)

खाद्यान्नों के हानिकारक कीटों का नियंत्रण

कीटों पर नियंत्रण पाने की वर्तमान विधियों में से निम्नलिखित प्रमुख विधियां ऐसी हैं जो कि खाद्यान्नों का सुरक्षित भंडारण करने में सहायक होती है–

(1) निरोधक उपाय

खाद्यान्नों के कीटों को नियंत्रण करने के लिए निम्नलिखित निरोधक उपायों की सिफारिश की गई है–

(i) स्वच्छता

(क) कटाई और गहाई मशीनों का इस्तेमाल करने से पहले उन्हे अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।

(ख) खाद्यान्नो की ढुलाई करने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले ट्रकों, ट्रालियों और बैलगाड़ियों को कीट जंतुबाधा से मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

(ग) नई काटी गई फसल का भंडारण करने से पूर्व ढांचों/गोदामों को साफ कर लेना चाहिए।

(घ) अनाजों की सुरक्षा के लिए बोरियों के चट्टे उचित ढंग से लगाना भी सहायक सिद्ध होता है।

(ii) भंडार गृहों का पीड़कजंतुनाशन

भंडारगृहों का इस्तेमाल करने से पूर्व कीटनाशक दवाईयों का छिड़काव करें जिनमें 1:100 के अपमिश्रण के साथ मेलाथियान 50% ई.सी. के छिड़काव को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इसे 3 लि./100 मी.^{2} की दर से इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

(iii) कानूनी विधि

किसी क्षेत्र विशेष में न पाए जाने वाले कीट के प्रवेश को नाशक और नाशक जीव अधिनियम, 1914 को लागू कर रोका जा सकता है।

(2) उपचारी उपाय

उपचारी उपायों में निम्न विधियाँ प्रमुख है :

(i) गैर–रासायनिक नियंत्रण उपाय

भंडारित अनाजों के कीट जीवों पर नियंत्रण पाने के लिए जहाँ रासायनिक उपाय नहीं किए जाते, वहां निम्नलिखित उपाय किए जाते हैं–

(क) पारिस्थितिकी नियंत्रण उपाय

भंडारित अनाजों के कीट जीवों से सुरक्षा अधिकांशतः निम्नलिखित बातों का उचित ढंग से प्रबंध करने पर निर्भर करता है:

(1) तापमान
(2) अनाज में नमी की मात्रा
(3) आक्सीजन की उपलब्धता

(i) तापमान

20°से.ग्रे. से 40°से.ग्रे. की रेंज का तापमान कीटों के विकास में तेजी लाता है लेकिन 43° से.ग्रे. से अधिक परन्तु 15°से.गे. से कम तापमान इसके प्रजनन और विकास को रोकता है जबकि लम्बे समय तक के लिए 45°से.ग्रे. से अधिक और 10°से.ग्रे. तक उष्णता देने से कीट मर जाते है लेकिन ऐसा करने की सलाह नहीं दी जाती है क्योंकि इससे अनाज प्रभावित हो जाते है और उनकी जीवनक्षमता समाप्त हो जाती है।

(ii) नमी की मात्रा

खाद्यान्नों का सुरक्षित भंडारण करने के लिए नमी एक महत्वपूर्ण कारक है। यदि अनाज को लगभग 10% की नमी पर भंडारित किया जाए तो उसे कीटों के आक्रमण से बचाया जा सकता है (खपरा कीट को छोड़कर)।

(iii) आक्सीजन

भंडारण में सांस लेने के दौरान अनाज और कीट आक्सीजन लेते है और कार्बन डाईआक्साइड पैदा होती है। कीट खाद्यान्नों के उतने ही वजन की तुलना में 20,000 से 1,30,000 बार सांस लेते है अतः आक्सीजन स्तर 1% से कम हो जाएगा और कार्बन डाईआक्साईड स्तर स्वतः ही बढ़ जाएगा जोकि कीटों की सभी अवस्थाओं के लिए घातक होगा।

(ख) भौतिक नियंत्रण उपाय

(1) उष्ण उपचार

अधिकांश भंडारित खाद्यान्नों के कीट 55°–60° से.ग्रे. पर 10–20 मिनट की अवधि में मर जाते हैं। अतः आटा मिलों और अन्य किस्मों के खाद्य विधायन की संयंत्रों के पास कीटों पर नियंत्रण पाने के लिए इन्फ्रा रेड हीटरों द्वारा अत्यधिक उष्णता देने की व्यवस्था होती है।

(2) नियंत्रित वातावरण

भंडारण स्थानों में विद्यमान सामान्य वातावरण की गैसों की सान्द्रता में परिवर्तन करके कृत्रिम वातावरण पैदा किया जाता है ताकि कीटों–फफूंद के विकास तथा खाद्यान्नों की गुणवत्ता की बर्बादी को रोका जा सके। भंडारण वातावरण में निम्नानुसार परिवर्तन किया जा सकता है :

नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाकर, कम दबाव का आक्सीजन वातावरण (2/4%) बनाया जाता है। अधिक CO_2 को मिलाकर CO_2 का वातावरण बनाया जाता है देखा गया है कि वायु में 9.0–9.5% CO_2 सभी कीटों के लिए घातक होती है।

(ग) जैविक नियंत्रण उपाय

भंडारित खाद्यान्नों के कीट, जीवों की आबादी जब अधिक हो जाती है तब परभक्षियों, परजीवियों और रोगजनकों जैसे प्राकृतिक साधन भंडारित खाद्यान्नों के कीट जीवों की आबादी को नियंत्रणाधीन रखते हैं।

(घ) अभियांत्रिकी नियंत्रण उपाय

(1) वायुरुद्ध भंडारण

वायुरुद्ध बंद किए गए ढांचों में रखे गए खाद्यान्न कीटमुक्त रहते हैं जिसका कारण यह है कि भंडारण के दौरान अनाज सांस लेते हैं और कार्बन डाईआक्साईड छोड़ते हैं। अधिक CO_2 के जमा हो जाने तथा आक्सीजन कम हो जाने से कीट जिन्दा नहीं बचते हैं।

(2) अनाज को सुखाना

जिस अनाज में 10% से कम नमी होती है, उसमें कीटों की अधिकांश प्रजातियाँ जीवित नहीं रहती। गाँवों में खाद्यान्नों की एक पतली तह बनाकर सूर्य की रोशनी में फैला कर सुखा ली जाती है अथवा इसे ड्रायरों से सुखाया जाता है तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि अनाज को शीघ्रता के साथ सुखाने अथवा अधिक सुखा देने से अनाज के बीज क्षतिग्रस्त हो सकते हैं, उनमें झुर्रियाँ पड़ सकती हैं, बीज की सतह पर

दरार पड़ सकती है, और उनके विटामिन नष्ट हो सकते हैं और बीजों की जीवन क्षमता भी नष्ट हो सकती है।

(ii) रासायनिक नियंत्रण उपाय

कीट नियंत्रण की वर्तमान विधियों में से रासायनिक नियंत्रण विधि सर्वाधिक लोकप्रिय है और संभवतः अत्यधिक प्रभावकारी है। उन सभी रसायनों को कीटनाशकों का नाम दिया जा सकता है जिनका कीटों को मारने अथवा उन्हें नियंत्रण करने के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं। इन्हें दोनों किस्मों के उपचारों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

(क) रोगनिरोधक उपचार

(ख) रोगहर उपचार

(क) रोगनिरोधक उपचार

कीट जंतुबाधा और संकर जंतुबाधा को कीटनाशकों का छिड़काव कर रोका जाता है। तथापि, इन कीटनाशकों का सीधा ही खाद्यान्नों पर छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए। भंडारित खाद्यान्नों का रोगनिरोधक उपचार करने के लिए सिफारिश किये गये कुछ कीटनाशकों और उनकी सान्द्रता का ब्यौरा नीचे दिया गया है:–

कीटनाशक का नाम	स्प्रे घोल की सान्द्रता	तैयार करना और खुराक	उपचार की आवृत्ति
1. मेलाथियान 50: ई.सी.	0.50%	1:100 में 3 लि./100 व.मी. की दर पर	15 दिन
2. पिरिमिफॉस मिथाइल 50: ई. सी.(एक्टैलिक)	0.50%	1:100 में 3 लि./ 100 व.मी. की दर पर	15 दिन
3. पाइरेथ्रम (2.0: पाइरेथ्रिन ई. सी.)	0.02%	1:100 में 3 लि0/ 100 व.मी. की दर पर	15 दिन

(ख) रोगहर उपचार

नियमित रोगनिरोधक उपचार करने के बावजूद, छिपी हुई जंतुबाधा अथवा क्रास जंतुबाधा आदि के कारण जंतुबाधा पैदा हो जाती है। इसे निम्नलिखित कीटनाशक दवाईयों और प्रधूमकों से नियंत्रित किया जा सकता है:–

(i) अचेत कर देने वाले रसायन

ये ऐसी कीटनाशक दवाइयां होती हैं जो कीटों को तत्काल अचेत कर देती है अथवा उन्हें मार देती हैं। सामान्यतया ये उड़ने वाले कीटों के लिए होती हैं लेकिन ये जमीन के कीड़ों तथा दरारों में रह रहे कीड़ों को भी मार सकती हैं। इस प्रकार के रसायन हैं– पाईरेथ्रम स्प्रे, लिन्डेन स्मोक जेनरेटर अथवा प्रधूमक स्ट्रिप्स।

(ii) प्रधूमक

प्रधूमक एक ऐसा रसायन होता है जोकि अपेक्षित तापमान और दबाव में पर्याप्त घनत्व में गैस में बदल जाता है जोकि कीट जीवों के लिए घातक होती है। आजकल कीटों पर नियंत्रण करने के लिए कई अच्छे प्रधूमकों का इस्तेमाल किया जाता है। कुछेक प्रभावकारी प्रधूमकों का वर्णन नीचे किया गया है:–

(क) इथाइलीन डाईब्रोमाइड (ई.डी.बी.)

भंडारित खाद्यान्नों को क्षति पहुंचाने वाले कीटों को नष्ट करने के लिए ई.डी.बी. एक अत्यधिक विषाक्त रसायन है। घरों में थोड़ी मात्रा रखने के लिए बनाए गए ढांचों जिन्हें अच्छी तरह से वायुरोधी किया जा सकता है, में भंडारित खाद्यान्नों का प्रधूमन करने के लिए ई.डी.बी. को एम्प्यूलों में भरकर इस्तेमाल करना उपयुक्त सिद्ध हुआ है। प्रधूमक को शीशे से बने एम्प्यूलों में भर दिया जाता है और उनके सिरे को बंद कर दिया जाता है। प्रत्येक बंद एम्प्यूल को रूई, ब्लाटिंग पेपर में लपेट दिया जाता है। उसके बाद प्रत्येक को कपड़े की थैली में सिल दिया जाता है अथवा बोबिन में पैक कर दिया जाता है। जब ई.डी.बी. तरल से भरे इस एम्प्यूल को तोड़ कर अनाज के ढेर में डाल दिया जाता है तो ई.डी.बी. भाप में परिवर्तित हो जाती है।

उपयोग विधि

एम्प्यूल 3 मि.लि., 6 मि.लि. और 10 मि.लि. के आकार के उपलब्ध हैं। ई.डी.बी. का इस्तेमाल सभी खाद्यान्नों पर किया जा सकता है लेकिन इसका इस्तेमाल पिसे हुए पदार्थों, तिलहनों और नमी युक्त खाद्यान्नों पर नहीं किया जाना चाहिए। इससे भी अधिक मात्रा विशेषकर बोरियों में भरे अनाज के मामले में ई.डी.बी. का प्रयोग 22 ग्राम/घन.मी. की दर पर किया जा सकता हैं।

(ख) ई.डी.बी.$^{+}$

यह ई.डी.बी. और कार्बन टैट्राक्लोराइड का 1 : 8 डब्ल्यू/डब्ल्यू (वजन) वजन के अनुपात में मिश्रण होता है। यह अधिक असरदार होता है और इसलिए इसका इस्तेमाल गैसप्रूफ चादरों से ढ़की हुई अनाज से भरी बोरियों के लिए किया जा सकता है। यह ग्रामीण भंडारण ढांचों के मामले में भी उतना ही प्रभावकारी होता है। ई.डी.बी. एम्प्यूल ग्रमीण भंडारण ढांचों में थोड़ी मात्रा में भंडारित खाद्यान्नों के लिए 11 मि.लि., 22 मि.लि. और 30 मि.लि. के आकार में भी उपलब्ध है। कुछ ही किलोग्राम के वजन के अनाजों, दालों और अरहर के लिए छोटे आकार (1.5 मि.लि.) के एम्प्यूल भी उपलब्ध हैं।

उपयोग विधि

इसकी उपयोग विधि भी वही है जो ई.डी.बी. के मामले में अपनाई जाती है। बोरियों में भरे गए अनाज के मामले में एम्प्यूलों को चट्टों में बराबर–बराबर बांट कर रखा जाता है। एम्प्यूलों को हल्के से तोड़ दिया जाता है और चट्टे को तत्काल गैसप्रूफ चादर से ढक दिया जाता है। चादरों के सिरों को गारे अथवा रेत से प्लस्तर कर दिया जाता है। इसकी खुराक गेहूं और दालों के मामले में 11 मि.लि. प्रति क्विंटल तथा चावल व धान के लिए 15 मि.लि. प्रति क्विंटल होती है। स्टॉक को 7 दिन तक बिना छेड़े रखा जाता है। खपत से पूर्व इस अनाज का वातन किया जाता हैं इससे भी अधिक मात्राओं के लिए ई.डी.बी.$^{+}$ का तरल रूप में इस्तेमाल तकनीकी दृष्टि से योग्य और अनुभवी स्टाफ की कड़ी देख–रेख में किया जा सकता है।

(ग) इथाइलीन डाइक्लोराइड कार्बन टैट्राक्लोराइड (ई.डी.सी.टी.)

यह दो रसायनों का मिश्रण है जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है। इनका अनुपात 3:1 वी/वी (आयतन) आयतन होता है। खाद्यान्नों का प्रधूमन करने के लिए इसका भारी पैमाने में इस्तेमाल किया जाता है। यह बाजार में 500 मि.लि., एक लि., 5 लि. आदि के टिन के डिब्बों में उपलब्ध होता है। बड़े पैमाने के भंडारण में इसकी खुराक 30–40 कि. ग्राम/100 घन मी. होती हैं। छोटे भंडारों के लिए खुराक की मात्रा 55 मि.लि. प्रति क्विंटल होती है। इसका इस्तेमाल खुले रूप में रखें गए खाद्यान्नों अथवा बोरियों में रखे गए खाद्यान्नों पर किया जाता है।

उपयोग विधि

भण्डारण ढांचे का सभी तरफ से गारे आदि से प्लस्तर कर दिया जाता है ताकि उसे उचित ढंग से हवाबन्द कर दिया जाता है लेकिन ऐसा करते समय उसमें एक अथवा दो खुले सुराख प्रधूमक डालने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। प्रधूमक की अपेक्षित मात्रा अनाज के ढेर पर रखी गई पटसन की खाली बोरियों के बंडल पर छिड़की जाती है। इन खुले स्थानों को तत्काल भर दिया जाता है। बोरियों में भरे गए अनाज के भंडारण के मामले में बोरियों को गैसप्रूफ चादरों से ढक दिया जाता है और उनके किनारों को गारे से प्लस्तर कर दिया जाता है अथवा उन पर रेत की थैली चढ़ा दी जाती है। तापमान और जतुंबाधा के स्वरूप पर निर्भर करते हुए स्टॉक को 36–48 घंटे के लिए बिना छेड़े रखा जाता है। इसका इस्तेमाल पिसे हुए पदार्थो पर नहीं किया जाना चाहिए।

आयापान का औषधीय महत्व

श्री एस.आर. बलौच
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

कुल नाम	:	ऐस्टैरेसी
लैटिन नाम	:	यूपाटोरियम आयापान वैंट
अंग्रेजी नाम	:	आयापान
संस्कृत	:	विशल्यकर्णी
हिन्दी	:	आयापान
गुजराती	:	अयापान
मराठी	:	अयापान
बंगाली	:	विशल्यकारणी, आयापान और अजापर्ण

परिचय

आयापान वास्तव में अमेरिका का आदिवासी पौधा है, परन्तु अब सम्पूर्ण भारतवर्ष में बगीचों के अन्दर उगाया जाता है। बंगाल में विषेशतः यह रोपा हुआ और जंगली दोनों अवस्थाओं में प्रचुरता से होता है।

बाह्य स्वरुप

आयापान के सुगन्धित गुल्म 2–4 इंच लम्बे, मालाकार, रक्ताभ अभिमुख क्रम में तीन स्पष्ट शिराओं से युक्त तीव्र गन्धी (मसलने पर उग्रसुगन्ध आती है) पुष्प नीलाभ मुंडको में फल, पंचकोणीय एवं रूंदित होते हैं।

रासायनिक संघटन

आयापान की पत्तियों में एक उड़नशील तेल पाया जाता है। सूखी पत्तियों में एक क्रिस्टल सत्व तथा ताजी पत्तियों में आयापान एवं आयापानेन नामक दो क्रिस्टलाइन स्वरुप के तत्व पाये जाते है, जिनमें तीव्र रक्त स्तम्भक गुण पाया जाता है।

गुण–धर्म

यह व्रण को भरने वाला, रक्तस्राव रोधक है तथा रक्त अतिसार रक्त प्रदर रक्तार्श आदि में यहाँ तक कि आमाशय में होने वाले रक्तस्राव में या शरीर के किसी भी भाग से गिरने वाले रक्त को रोकने के लिए इसके पत्तों का रस बहुत लाभदायक होता है।

अर्श

अर्श में इसके पत्तों को पीसकर लगाने तथा स्वरस 10–20 ग्राम दिन में 2–3 बार पीने से चमत्कारी लाभ होता है।

वमन

इसके पंचाग के गरम काढ़े को अधिक मात्रा में देने से वमन हो जाती है तथा दस्त लग जाते हैं। इसको विरेचन के लिए प्रयोग करना चाहिए।

पौष्टिक

इसके पत्तों का रस अल्प मात्रा में पीने से बल बढ़ता है।

ज्वर

जाड़ा लगकर यदि ज्वर हो तो इसके 20 ग्राम पत्तों को 200 ग्राम जल में फांट बनाकर गरम–गरम दिन में दो तीन बार पिलाने से लाभ होता है। इसका फांट पीत ज्वर में भी लाभदायक है।

बाह्य प्रयोग

व्रण तथा रक्तस्राव में इसकी पत्तियों क़ो पीसकर लेप करने से आराम होता है।

कीट दंश

जहरीले कीड़ों के दंश पर इसका लेप करने से वेदना शांत होती है।

रक्तस्राव

कहीं भी रक्तस्राव होने पर इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से तथा पत्र स्वरस 10–20 ग्राम की मात्रा में सेवन करने से रक्तस्राव बंद हो जाता है।

घाव

शस्त्र का कितना भी गहरा घाव लगा हो, इसके पत्तों को पीसकर लगाने से तथा मौखिक रूप से शस्त्र स्वरस 5–10 ग्राम दिन में 3–4 बार पीने से गहरे से गहरा घाव बहुत जल्दी भर जाता है।

मलेरिया ज्वर

इसके 20 ग्राम पंचाग को 400 ग्राम पानी में पकाकर चतुथीश शेष काढ़ा 5–10 ग्राम की मात्रा में सुबह–शाम पिलाना मलेरिया ज्वर में लाभकारी है।

केंचुआ खाद (जैविक खाद की तैयारी)

डॉ. पी. के. दास
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

केंचुआ खाद

- केंचुआ खाद तैयार करने के लिए छायादार स्थान की आवश्यकता होती है, ताकि सीधी धूप एवं वर्षा से बचाया जा सके।

जैविक खाद की तैयारी मे केंचुए

- यह स्थान खुली जगह पर भी हो सकता है।
- केंचुआ खाद तैयार करने के लिए कुछ विशेष जातियों के केंचुओं को इस्तेमाल किया जाता हैं। उदाहरण के लिए आईसेनिया, यूड्रिलस, पेरिऑपिक्स आदि।

स्थायी जैविक खाद उत्पादन इकाई

- ये खाद वातावरण के अनुकूल होती है। पौधों के लिए लगभग जरूरी सारे रासायनिक तत्व (N, P, K, Ca, Mg, Na, Mo, Mn, Cu, Ni, Zn, B, Co) इसमें पाये जाते है।
- साथ ही साथ यह खाद अम्लीय नहीं होती है एवं जमीन की अम्लीयता से रक्षा करती है।
- इसकी गुणवत्ता गोबर की अन्य खाद के मुकाबले 8–10 गुना ज्यादा होती है।
- केंचुआ खाद तैयारी के लिये दो बेड का सेड बनाने का खर्चा 500 से 700/– रुपया है।
- केंचुआ खाद तैयारी के लिए लगभग 2–3 रुपया खर्चा होता है ।

केंचुआ खाद बनाने के लिए उपयोगी चीजें

- गोबर, पुआल, हरी पत्तियाँ इत्यादि।
- गोबर और बाकी जैविक चीजों के मिश्रण का अनुपात कम से कम 60:40 होना चाहिए।
- केंचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया शुरु करने से पहले जैविक चीजों को (जैसे पुआल, हरी पत्तियां आदि) 15–20 दिनों तक सड़ने के लिए छोड़ देना चाहिए।

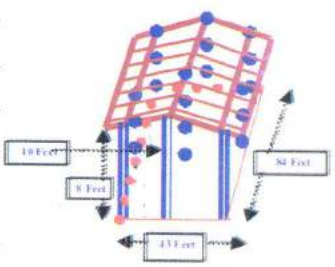

कम खरचे वाले जैविक खाद सेड

जमीन के ऊपर बेड (क्यारी) तैयारी एवं खाद बनाने का तरीका

- समतल भूमि पर 10 फुट लम्बा, 4 फुट चौड़ा एवं 15 से 18 इन्च गहरा गड्ढा खोद लीजिए।
- गड्ढे को लम्बवत एक साईड पर ढ़ाल रखिए।
- गड्ढे के ऊपर पॉलीथीन सीट का टुकड़ा बिछाइये।
- केंचुआ खाद बनाने का बेड तैयार हो जायेगा।
- बेड के ऊपर बाँस, पुआल अथवा जगंली झाड़ी से सेड बनाइये।
- इसके ऊपर 15–20 इन्च गोबर (2–3 दिन पुराना) अथवा गोबर, पुआल और हरी पत्तियों का मिश्रण डालें।
- इस पर केंचुए को फैलाएं (करीब 40 वर्गफुट की क्यारी पर 4–5 हजार केंचुए पर्याप्त होते हैं।)

कम खरचे वाले जैविक खाद क्यारी

क्यारी में तैयार जैविक खाद

- केंचुओं को फैलाने के उपरांत उसके ऊपर गोबर की 2–3 इन्च की सतह बनाएं।

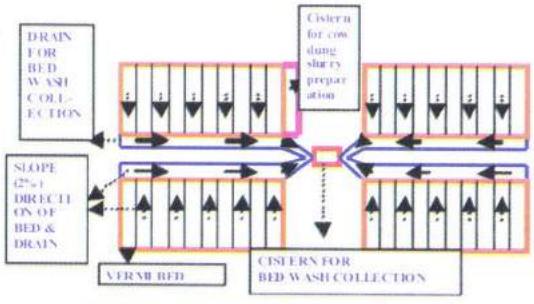

रेखाकिंत जैविक खाद उत्पादन इकाई

- अब इसके ऊपर मोटी टाट पट्टी या जूट की बोरियाँ ढक दें।
- झरनी से इस पर आवश्यकतानुसार प्रतिदिन पानी छिड़कते रहें, ताकि लगभग 40–50 प्रतिशत नमी बनी रहे।
- सप्ताह में एक बार क्यारी का कचरा ऊपर नीचे करते रहें।

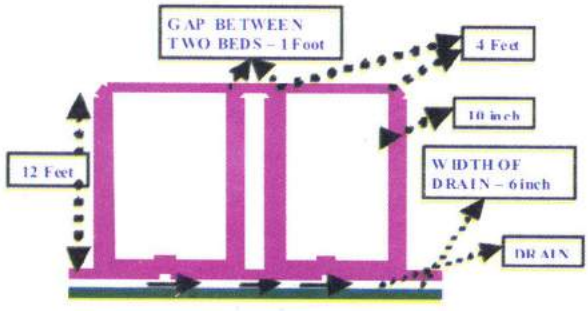

वैज्ञानिक विधि अनुसार जैविक खाद क्यारी

- 45 दिन बाद पानी छिड़कना बन्द करें।
- खाद तैयार होने में लगभग 45 दिन का समय लगता हैं।
- इसे निकालें और छोटे–छोटे ढेर बना लें, जिससे केंचुए निचली सतह पर ही रहे।
- खाद हमेशा हाथ से अलग करें।
- केंचुआ खाद दानेदार गहरे भूरे रंग की होती है।

जैविक खाद उत्पादन इकाई

- केंचुआं खाद की गुणवत्ता को नीम खल्ली, सरसों खल्ली, करंज खल्ली, इत्यादि का इस्तेमाल करके बढ़ाया जा सकता है।
- सूक्ष्म कीटाणू से जैविक वस्तुएँ जल्दी सड़ जाती हैं।

चाय खेती में जैविक खाद का लाभान्वित असर

प्रशिक्षण सुविधा

- हमारे सस्थान में केंचुआ खाद बनाने के विषय पर प्रशिक्षण की सुविधा है। साथ ही हमारे यहाँ मृदा जांच की भी सुविधा है।

समान नागरिक संहिता

श्री वी. के. धवन एवं श्रीमती अर्चना धवन
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

भारतवर्ष एक महान देश है। एक विशाल देश विभिन्न संस्कृति व सभ्यताओं को व अलग–अलग धर्मों को मानने वालों का देश उस समय विषमताओं का शिकार हो जाता है जब एक काल में एक देश के नागरिक अलग–अलग न्यायिक प्रणालियों को मानते हैं या यूं कहें कि मानने के लिए बाध्य कर दिए जाते है। जब हम समान नागरिक संहिता की बात करते हैं तो हमें यह जानना भी आवश्यक है कि अंततः समान अधिकार कौन से हैं जिनके लिए संहिता को कानून बनाना चाहिए। समाज में महिलाओं की क्या स्थिती है। उन्हें क्या अधिकार मिलने चाहिए, तलाक की स्थिती में उन्हें क्या मिलना चाहिए। बच्चों के क्या अधिकार होने चाहिए। पुरुषों के क्या अधिकार हों विधवाओं की क्या स्थिती हो, उत्तराधिकार कानून कैसा हो ऐसे नागरिक अधिकार है जिनमें समरुपता का होना आवश्यक हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की तीन सदस्यीय खंडपीठ में जिसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी. एन. खरे ने की व जिसके अन्य दो सदस्य न्यायमूर्ति एस.बी. सिन्हा व न्यायमूर्ति ए.आर. लक्ष्मण थे, ने 23 जुलाई सन् 2003 को दिए एक महत्वपूर्ण फैसले में समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) का समर्थन करते हुए कहा कि ऐसी संहिता बनाना राष्ट्रीय एकता को और मजबूत बनाने में सहायक सिद्ध होगा। यह फैसला उन्होंने ईसाई पादरी जान वल्ला माटोन की धारा 118 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देती हुई अपील के फैसले में ईसाई समुदाय को बड़ी राहत देते हुए भारतीय उत्तराधिकार की धारा 118 को असंवैधानिक करार देते हुए रद्द कर दिया जिसके अन्तर्गत ईसाई समुदाय के लोग वसीयत में अपनी सम्पति को धार्मिक कार्य हेतु किसी संस्था को दान में नहीं दे सकते थे क्योंकि उन्हें ऐसा करने की पाबन्दी थी। इस खंड पीठ ने कहा कि एक सभ्य समाज में धार्मिक और निजी कानून के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है और इसके स्थान पर सभी धार्मिक समुदायों पर शासन करने वाली एक संहिता हो।

समान नागरिक संहिता के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य पर नजर डालें तो 1956 में तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तुत हिन्दु कोड बिल इस परिस्थिती की विषमताओं का जन्म दाता कहा जा सकता है। जब हिन्दु कोड बिल जिसके अन्तर्गत हिन्दु धर्म के अनुयायियों का समस्त नागरिक व धार्मिक मान्यताओं को एक कानून के अन्तर्गत करने का बिल संसद द्वारा पास किया गया तो तत्कालीन राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने उसे अपनी मंजूरी न देने की मंशा प्रकट की थी क्योंकि उनकी राय में यह भेदभाव पूर्ण था परन्तु इस कदम के लिए उन्हें सनातनिष्ट घोषित कर दिया गया और वह अनिच्छा से इस बिल को मंजूरी देने के लिए मजबूर हो गये। इस तरह एक विरोधाभासी बिल उस अकेले देश का कानून बन गया जिसे इस बात का गौरव हासिल हुआ कि उसने अपने नागरिकों के लिए अलग–अलग स्तर पर धार्मिक कानून बनाये और शायद यही कारण था कि हमारे नेतागण इस कानून के चलते स्थायी तौर पर लोगों को अलग करने में सक्षम हो गये।

समान नागरिक संहिता से जुड़े अगर हम संविधान की कुछ धाराओं पर निगाह डालें तो पायेंगे कि :

1. अनुच्छेद 14 के अनुसार विधि के समक्ष समता–भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जायेगा।
2. अनुच्छेद 25 के अनुसार अंतःकरण की व धर्म के अबोध रूप में मानने आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।
   1. लोक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता।
   2. इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विध्यमान पद्धति के पर्वतन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी।

(क) धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बंधन करती है।

(ख) सामाजिक कल्याण या सुधार के लिए सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपलंब करती है।

स्पष्टीकरण

1. कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के मानने का अंग समझ जायेगा।

2. खंड 2 के उपखंड (ख) में हिन्दुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जायेगा कि उसके अन्तर्गत सिख जैन या बौद्ध धर्म के मानने वालों के लिए निर्देश हैं और हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जायेगा।

अनुच्छेद 26 धार्मिक कार्य के प्रबंध की स्वतंत्रता लोक व्यवस्था सदाचार व स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को :

(क) धार्मिक और पूर्व प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का

(ख) अपने धर्म विषयक कार्यों के प्रबन्ध का

(ग) जंगल और स्थावर सम्पति के अर्जन व स्वामित्व का

(घ) ऐसी सम्पति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का

अनुच्छेद 44 नागरिक संहिता के लिए एक समान नागरिक संहिता राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

न्यायमूर्ति खरे ने कहा कि अनुच्छेद 44 में इस बात की व्यवस्था है कि राज्य पूरे भारत में समान नागरिक संहिता बनाने का प्रयास करें। मुख्य न्यायधीश ने कहा कि यह खेद का विषय है कि संविधान के लागू होने के 53 वर्षों के बाद भी अनुच्छेद 44 को लागू नहीं किया जा सका है। देश को इस ओर प्रयास करना पड़ेगा। अनुच्छेद 25 व 44 में अन्तर बताते हुए न्यायमूर्ति खरे ने कहा कि अनुच्छेद 25 धार्मिक आजादी प्रदान करता है जबकि 44 धर्म को सामाजिक सम्बन्धों व निजी कानूनों से अलग करता है धर्म निरपेक्ष चरित्र वाले मसलों को अनुच्छेद 25 व अनुच्छेद 26 के दायरे में लाने के किसी भी प्रयास से बाज आने की चेतावनी देते हुए मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि ऐसा कोई भी कानून जो अनुच्छेद 25 व 26 के दायरे में उत्तराधिकार व धर्म निरपेक्ष चरित्र वाले मसलों को लाता हो एक संदिग्ध कानून है। न्यायमूर्ति खरे ने ही केवल समान नागरिक संहिता के मुद्धे की चर्चा की जबकि दो अन्य न्यायाधीशों ने खरे के फैसले पर सहमति जताई। खंड पीठ ने इस बात पर भी सहमति जताई कि धारा 118 ईसाइयों को संविधान में समस्त बराबरी के मौलिक अधिकारों और संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत प्रदत्त समानता के अधिकार का उल्लंघन करती है।

यहाँ यह कहना भी अप्रंसगात्मक नहीं होगा कि यह तीसरी बार कहा गया है कि सरकार को समान नागरिक संहिता लागू करती चाहिए इससे पहले 1985 में शाह बानों के केस में न्यायालय ने फैसला दिया था कि सी.आर.पी.सी. का सैक्शन 125 लागू रहेगा चाहें यह मुस्लिम पर्सनल लॉ की अवहेलना ही क्यों न हो।

दूसरी बार जोरडन डेंग डेन ने सरला मुदगिल धेस में सिर्फ शाह बानों केस को दोहराया व समान नागरिक संहिता का हवाला देते हुए हिन्दुओं के दूसरे विवाह की अवैधता व भारतीय उत्तराधिकार कानून की धारा 118 में कोई समबन्ध नहीं बताया व इसे अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत अवैधानिक बताया इन दोनों केसों को भी पहले Uniform Civil Code को लागू करने की दशा में ठोस कदम माना गया परन्तु जताये गये विचार सिर्फ समस्या को बढ़ाने वाले माने गये। कारण कि अलग–अलग समुदाय विशेष तौर पर अल्प समुदाय भारत की एक रूपता के साथ अपने को कभी जोड़ नहीं पाये उसकी वजह उनका अलग धर्मों का होना था। अलग कानून मानना नहीं वरन यह है कि राज्य ने उनको कभी देश की मुख्य धारा में लाने का प्रयास नहीं किया जैसा कि तत्कालीन बेस्ट बेकरी कांड़ में हुआ।

आज वास्तविक समस्या यह है कि क्या आज समान नागरिक संहिता को पर्सनल लॉ की आवश्यक संहिता बना दिया जाये जिससे कि उनका अपना धर्म आड़े न आये।

अंबेडकर ने इसके विपरीत सोंपा था। अनुच्छेद 44 को जानबूझ कर सोच समझ कर मौलिक अधिकार की श्रेणी में नहीं लाया गया था। 23 नवम्बर 1948 को श्री अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि इस बारे में बहुत कुछ पढ़ा जा चुका है यह महज एक प्रस्तावना है कि राज्य को समान नागरिक संहिता बनाने के लिए प्रयास करने चाहिए। यह नहीं कहा गया है कि अगर यह संहिता बन गई तो राज्य को इसे सभी नागरिकों पर थोपना चाहिए। हो सकता है कि शुरूआत में संसद एक रास्ता बताये कि यह संहिता सिर्फ उन्ही पर लागू होगी जो इस बात की घोषणा करेंगे कि वह इसे मानते है इसलिए प्रारम्भिक स्तर पर इस संविधान की घोषणा सिर्फ ऐच्छिक स्तर पर की जाएगी।

देश के विभिन्न न्यायालय समय–समय पर समान नागरिक संहिता की माँग करते रहे है जिससे कि अलग–अलग कानून मिलकर संविधान की वैधता को भंग न कर दे। हिन्दु कोड बिल के समय भी इसे नज़र अंदाज नहीं किया गया। यह समझा गया कि सुधार की एक प्रक्रिया चल रही है और उससे देश में एक वातावरण बनेगा और समय आने पर यह लागू कर दिया जाएगा। लेकिन 80 के दशक के बाद देश की राजनीति विशुद्ध रूप से वोटों की राजनीति बन गई। रूढ़ियों व परम्पराओं में जो बदलाव अपेक्षित था वह संकीर्ण बहस में बदल गया।

हमारे संसदों से जो अल्पमत वोट बैंक पर टिके हैं इस विषय में सकारात्मक रवैया अपेक्षित नहीं है। समान नागरिक कानून पर बहस अपेक्षित है। सभी समुदायों व वर्गों को इसमें जोड़ा जाये तभी एक अच्छा कानून अपेक्षित है। सर्वोच्च न्यायालय कानून नहीं बनाया। यह तो विधायकों का ही कार्य क्षेत्र है। उच्च न्यायालय का यह फैसला एक अवसर प्रदान करता है कि सारे राजनैतिक विरोधो व स्वार्थों को ताक पर रख कर आपसी समझ के साथ बात करें व इस दिशा में आगे बढ़े। आज इस संहिता की ज़रुरत को समझना आवश्यक है। हम सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को जिस रूप में देख रहे हैं उसमें किसी धर्म का विरोध निहित नहीं है। सभी धर्मों के लोग बैठें और यह तय किया जाये कि समाज के लिए व्यापक रूप में क्या अच्छा है और क्या बुरा। इसमें सभी धर्मों की अच्छी बातों को शामिल किया जाये व समाज को बाध्यकारी बनाया जाये यही समाज के हित में होगा।

लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिए संग।
गहिरि नदी नारा जहां, तहां बचावै अंग।।
तहां बचावै अंग, झपटि कुत्ता कहं मारै।
दुश्मन दावागीर होय तिनहुं को झारै।।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धरके बाठी।
सब हथयारन छांड़ि, हाथ महं लीजै लाठी।।

–गिरिधर

दन्त चिकित्सा में उपयोगी पेड़-पौधे

डॉ. (श्रीमती) माला राठौड़, श्री आर. के. मीणा
एवं श्रीमती संगीता त्रिपाठी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

प्राचीन काल से मनुष्य अपने दाँतों को मजबूत एवं दीर्घकाल तक स्वस्थ बनाए रखने के लिए पेड़–पौधों का उपयोग करता रहा है। आज बढ़ते बाजारीकरण से बाजार में उपलब्ध प्लास्टिक के ब्रश अधिक इस्तेमाल में आने लगे हैं जबकि इनकी तुलना में दातुन दाँतों की साफ–सफाई में ज्यादा प्रभावकारी होते हैं। दाँतों एवं मुख संबंधी बिमारियाँ, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर करती है। अपर्याप्त पोषण, अस्वच्छता एवं धूमपान से बिमारियाँ जैसे– दाँतों का दर्द, सड़न, प्लेक, अस्थि–क्षय, पायरिया आदि हो जाती हैं। सिनोवेट इण्डिया द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में, जिसे कोलगेट – पामोलिव (इण्डिया) ने प्रायोजित किया था, यह पता चलता है कि भारत में मुँह की साफ–सफाई के प्रति जागरुकता की कमी के कारण दाँतों की तकलीफ होती है। इस सर्वेक्षण द्वारा भारत की करीब 50 प्रतिशत जनसंख्या अपने दांतों के प्रति लापरवाह पाई गई है।

पेड़–पौधों से प्राप्त दातुन दाँतों की सफाई तो करती ही है, साथ ही साथ इससे मसूढ़ों की मालिश भी हो जाती है। इसको चबाने से जो रस निकलते हैं वह दाँतों की सफाई के साथ–साथ अन्य बिमारियों को भी ठीक करने में सहायक होते हैं। यह पेट एवं सिर के लिए भी अच्छी होती है। इनमें आवश्यक तेल होते हैं जिनमें वायुसारी, प्रतिरोधात्मक एवं दर्द निवारक गुण होते हैं। दातुन दाँतों को सफेद बनाती है, मुँह की दुर्गंध को दूर करती है एवं मसूढ़ों एवं दाँतों को मजबूत करती है। इनमें उपलब्ध टेनिन मुँह में कसैलापन लाते हैं।

दन्त चिकित्सा में काम आने वाले पेड़–पौधे

क्रसं	हिन्दी नाम	वानस्पतिक नाम	उपयोगी भाग
1	कैर	कैपेरिस डेसीडुआ	जड़
2	भटकटेरी	सेलेनम सारन्टेंस	सूखे हुए फलों का धुँआ
3	खारा जाल	सल्वाडोरा पर्सिका	टहनियाँ
4	नीम	अजाडिरैक्टा इण्डिका	टहनियाँ
5	वज्रदंती	डाइकोमा टोमेन्टोसा	जड़ एवं शाखाएँ
6	बबूल	अकेशिया अरेबिका	छाल एवं टहनियाँ
7	पलाश	ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	टहनियाँ
8	रतनजोत	जैट्रोफा करकस	जड़, पत्तियाँएवं टहनियाँ
9	कुमट	अकेशिया कटैचू	गोंद
10	देशी बबूल	अकेशिया निलोटिका	गोंद एवं टहनियाँ
11	अपामार्ग	एकेरेन्थस एस्पारा	जड़
12	पीपल	फाइकस रिलिजिओसा	टहनियाँ
13	तुलसी	ओसिमम सेंक्टम	पत्तियाँ
14	बरगद	फाइकस बैंगालेंसिस	वायवीय जड़ें एवं लेटेक्स
15	सत्यानासी	आर्जिमोन मैक्सिकाना	जड़, पत्तियाँएवं टहनियाँ
16	आक	कैलोट्रोपिस प्रोसेरा	जड़ एवं लेटेक्स

भारत में करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है एवं करीब 27.5 प्रतिशत लोग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे हैं। ऐसे में बाजार में उपलब्ध अधिक कीमत वाले मंजन एवं ब्रश की अपेक्षा यह पेड़–पौधे सस्ते एवं अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकते हैं।

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि अति प्राचीन काल से ही पेड़–पौधों का उपयोग पारंपरिक दन्त चिकित्सा एवं दातुन के रुप में किया जाता रहा है। ये पारंपरिक चिकित्सा न केवल ग्रामीण अंचलों में दाँतों को दीर्घकाल तक मजबूत एवं निरोगी रखने में प्रभावी सिद्ध हुई है अपितु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक अनुसंधानों के उपरांत प्रामाणिकता की कसौटी पर भी सही पाई गई है क्योंकि वर्तमान में बाजार में मिलने वाले वाले लगभग सभी हर्बल दन्त मंजनों में इनका उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है।

हमारे चेहरे का नक्शा एवं हमारी मुस्कान हमारे दाँतों पर ही निर्भर है। दाँतों को खोना नरक भोगने से कम नहीं है। रोजमर्रा की क्रियाओं के लिए हमारे दाँत अति उपयोगी हैं। अतः इन्हें हमें आरम्भ से अंत तक स्वस्थ बनाए रखना अति आवश्यक है। ये पेड़–पौधों के दातुन दाँतों की सफाई के लिए अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकते हैं। अतः आम जनता भी इनका उपयोग कर अपने दाँतों को मजबूत एवं दीर्घकाल तक स्वस्थ बनाए रख सकती है। सत्य ही कहा गया है कि मनुष्य का एक दाँत एक हीरे से भी अधिक कीमती है।

बंजारानामा

तीन

जब चलते–चलते रस्ते में यह गौन तेरी रह जावेगी
इक बछिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पावेगी
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बंट जावेगी
धी, पूत, जमाई, बेटा क्या, बंजारिन पास न आवेगी
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा।

–नजीर अकबराबादी

गर्म शुष्क क्षेत्रों की लवण प्रभावित मृदाओं में माउण्ड संरचनाओं में नीम की संभाव्यता

डॉ. रंजना आर्या, श्री आर. आर. लोहरा एवं श्रीमती संगीता त्रिपाठी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

प्रस्तावना

लवणीयता एक प्रमुख अजैविक कारक (Stress) है, जो फसल उत्पादन को पूर्णतः प्रभावित करती है। इसका सर्वाधिक प्रभाव शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में होता है। भारत के विभिन्न राज्यों में 6.73 मिलियन हैक्टेयर का वृहत् क्षेत्र लवणीयता और क्षारीयता की समस्या से ग्रस्त है। आफरी, जोधपुर के अधिक्षेत्र में स्थित 2.60 मि.है. क्षेत्र लवणीय है जिसका विस्तार राजस्थान एवं गुजरात में क्रमशः 0.38 मि.है. तथा 2.22 मि.है. है। इस क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव अत्यधिक है और कृषि भूमि भोजन, खाद्य, चारा एवं अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति करने में सक्षम नहीं है। अतः यह नितांत आवश्यक है कि भोजन, खाद्य, चारा एवं अन्य आवश्यकताओं की आपूर्ति करने हेतु लवण सह प्रजातियों का रोपण किया जाए। हालांकि इन लवण प्रभावित जल भराव वाले क्षेत्रों में वृक्षारोपण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है।

अजाडिरैक्टा इण्डिका (नीम)

भारतीय उपमहाद्वीप की एक स्थानीय प्रजाति है। यह देश के सभी शुष्क क्षेत्रों : उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में पाया जाता है (एनो.,1981)। यह विभिन्न मृदाओं यथा– काली कपासी मिट्टी, संहत चिकनी मिट्टी या लेटैराईट क्रस्ट, मध्यम क्षारीय मिट्टी, पथरीली और कठोर चूनेदार उथली मिट्टी एवं उत्तम निकासी युक्त दुमट मिट्टी में उगता है। यह जलभराव वाले क्षेत्रों में भली–भाँति नहीं पनपता, सिल्ट/गाद भराव युक्त मृदा में कम सफलापूर्वक एवं गाद युक्त समतल स्थानों तथा चिकनी मिट्टी युक्त अवनमन (Depressions) जिनमें मृदा वातन (Soil aeration) और अंतःस्रवण (Percolation) बाधित होता है, नहीं पनप सकता है। जल भराव वाले क्षेत्रों में माउण्ड संरचनाएँ अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई हैं। विभिन्न माउण्ड तकनीकों जैसे– दोहरी खाँच, तश्तरीनुमा खाँच एवं कण्ट्रोल का उपयोग कर आफरी, जोधपुर द्वारा शुष्क क्षेत्र के लवणीय जल भराव युक्त क्षेत्र पर किए गए अध्ययन के अंतर्गत अत्यंत लाभप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं। दोहरी खाँच विधि (डबल रिज माउण्ड– डी आर एम) आस्ट्रेलिया में किए गए अध्ययन (रिटसन एवं पेटिट, 1992) से ग्रहण की गई जबकि तश्तरीनुमा खाँच (सर्कुलर डिश माउण्ड–सी डी एम) हमारे प्रायोगिक क्षेत्र के अनुभव (आर्या इत्यादि, 2006) से विकसित की गई।

विधियाँ

स्थल की स्थितियाँ

अध्ययन क्षेत्र शुष्क राजस्थान के जोधपुर जिले में स्थित है। यह रेतीला मैदानी क्षेत्र है जिसमें बहुत कम गहराई पर कठोर एवं संहत उपस्तर है, जिसे जल एवं जड़ भी नहीं भेद पाते (काजरी, 1999)। प्रायोगिक क्षेत्र की मृदा पथरीली, चूने युक्त, स्थूल रेतीली से दुमट रेतीली, उथली (25 से 40 सेमी मृदा गहराई) एवं इसकी निचली/अंदरुनी सतह पर कैल्शियम कार्बोनेट की कठोर परत है। इसका पी. एच. मान 8.8 से 9.8 तथा ई.सी. 4.2 से 16 डेसीसीमन्स/मीटर है। इसमें अनेक स्थानों पर लवणों की पपड़ी जमी हुई है एवं इन स्थानों पर ई.सी. का मान 48 डेसीसीमन्स/मीटर अंकित किया गया है। प्रतिशत जैविक कार्बन की मात्रा 0.1 से 0.2 प्रतिशत है। विनिमय योग्य सोडियम 30 से 60 प्रतिशत पाया गया है। मृदा जिप्सम आवश्यकता 6 टन/हैक्टेयर ज्ञात की गई है। क्षेत्र की माध्य वार्षिक वर्षा 350 मिमी है, जो केवल मानसून के समय (जुलाई–सितम्बर में) होती है। वर्ष में वर्षा वाले दिनों की संख्या 8 से 17 है। ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम तापमान 48°सेल्सियस तथा शीत ऋतु में न्यूनतम तापमान 4°सेल्सियस रहता है। ग्रीष्म ऋतु में औसत वायु वेग 20 से 30 किमी/घण्टा दर्ज किया गया है।

आँकड़े एवं प्रायोगिक क्षेत्र अध्ययन

अगस्त 2001 में कण्ट्रोल, सी. डी. एम. व डी. आर. एम. उपचारों में प्रायोगिक क्षेत्र में अध्ययन आरम्भ किया गया। जिप्सम 100 प्रतिशत मृदा जिप्सम अनुपात, 3 किग्रा गोबर की खाद (एफ. वाई. एम.) प्रति पौधा एवं 15 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट (एस. एस. पी.) गड्ढ़े की मिट्टी के साथ मिलाया गया। 3 मी. x 3 मी. की दूरी पर 6 पौधे प्रति उपचार रेन्डामाइज्ड ब्लाक विन्यास में लगाकर तीन रेप्लीकेट लगाए गए। मिट्टी में 0.2 प्रतिशत क्लोरोपाइरीफास अच्छी तरह मिला दिया गया। रोपण के उपरांत वर्षा नहीं होने के कारण एक बार सिंचाई की गई। डी. आर. एम. बनाने के लिए ट्रैक्टर द्वारा बण्ड (0.50 मीटर चौड़ी एवं 0.45 मीटर ऊँची) बनाई गई एवं 20 सेमी ऊँची मेड़ (रिज) बनवाई गई। दो मेड़ों के मध्य स्थान (रोपण स्थान 1.2 मी.) रखा गया। मिट्टी को तश्तरीनुमा आकृति (व्यास 2.0 मी.) में 20 सेमी. ऊँची उठाकर सी. डी. एम. बनवाई गई।

परिणाम एवं परिचर्चा

उत्तरजीवितता

मृदा संरचनाओं से उत्तरजीवितता में आशातीत वृद्धि हुई एवं यह 12 एवं 60 माह पश्चात् कण्ट्रोल की अपेक्षा 18.2 से 32.6 प्रतिशत अधिक थी (तालिका–1)। डी. आर. एम. में 48 महीनों तक अच्छी उत्तरजीवितता (47.2 प्रतिशत) प्राप्त हुई लेकिन 60 वें महीने में सी. डी. एम. में सर्वाधिक उत्तरजीवितता (41.6 प्रतिशत) अंकित की गई।

तालिका–1: विभिन्न मृदा संरचनाओं में नीम की आवर्ती प्रतिशत उत्तरजीवितता (माध्य + मानक त्रुटि)

उपचार	12*	24*	36*	48*	60*
सी. डी. एम	46.0 ± 6.1	41.6 ± 4.8	41.6 ± 4.8	41.6 ± 4.8	41.6 ± 4.8
डी. आर. एम	49.9 ± 8.06	49.9 ± 8.3	49.9 ± 8.3	47.2 ± 16.9	33.3 ± 14.4
माध्य	47.9	45.8	45.8	44.4	37.5
कण्ट्रोल	17.0 ± 12.7	17.0 ± 12.7	17.0 ± 12.7	13.8 ± 10.0	8.8 ± 5.3

*आयु महीनों में

ऊँचाई एवं छत्र व्यास

आरम्भ के 12 महीनों को छोड़कर ऊँचाई से संबंधित आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि 24 से 60 महीनों में सी. डी. एम. में, डी. आर. एम. की अपेक्षा 12, 14, 10 और 25 प्रतिशत ऊँचाई अधिक अंकित की गई (तालिका–2)। कण्ट्रोल में प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि उत्तरजीवितता बहुत कम मिली परंतु पौधों की ऊँचाई अच्छी थी। छत्र व्यास के संबंध में कण्ट्रोल व सी. डी. एम. की अपेक्षा डी. आर. एम. में अच्छे परिणाम प्राप्त हुए तथा 24 से 60 माह की आयु तक अंतर 21.4, 14.0, 8.3 तथा 24 प्रतिशत अधिक था।

वायवीय

मृदा संरचनाओं में कण्ट्रोल की अपेक्षा अधिक जैवभार का उत्पादन हुआ और 36 माह की आयु में भूमि की सतह पर सर्वाधिक वायवीय हरा जैव भार उत्पादन सी.डी. एम. में

तालिका–2: विभिन्न मृदा संरचनाओं में नीम की आवर्ती वृद्धि (माध्य ± मानक त्रुटि)

उपचार	ऊँचाई					छत्र व्यास				
	12	24	36	48	60	12	24	36	48	60
सी.डी.एम.	65.0	95.0	138.1	167.5	204.0	18.4	68.3	94.0	117.2	161.0
	5.9	25.4	26.3	1.9	37.9	4.3	9.3	2.5	6.7	49.2
डी.आर.एम.	71.0	84.9	121.0	153.2	163.0	15.3	56.7	86.0	108.0	130.0
	5.9	11.1	12.6	6.9	5.6	3.8	9.6	9.3	15.5	5.4
माध्य	68	90	129.5	160.3	183.5	16.8	62.5	90.0	112.6	145.5
कण्ट्रोल	46.0	123.0	128.0	170.0	171.0	17.0	55.0	64.0	94.0	89.0
	5.0	31.7	21.8	25.0	28.7	3.0	0.0	9.03	8.7	1.2

36 एवं 60 माह की आयु में हरा एवं सूखा जैवभार उत्पादन

1725 ग्राम प्राप्त हुआ जो कि डी. आर. एम. व कण्ट्रोल की अपेक्षा क्रमशः 1.9 तथा 2.5 गुना अधिक था (तालिका–3)। यही क्रम 60 माह की आयु तक जारी रहा और सी. डी. एम. में जैव भार 2500 ग्राम प्राप्त हुआ जो कि डी. आर. एम. और कण्ट्रोल की अपेक्षा क्रमशः 1.6 तथा 6.2 गुना अधिक था।

तालिका–3: विभिन्न मृदा संरचनाओं में 36 व 60 माह में जैव भार उत्पादन (ग्राम)

आयु महीनों में	सी. डी. एम				डी. आर एम				कण्ट्रोल			
	पत्तियाँ	शाखाएँ	तना	योग	पत्तियाँ	शाखाएँ	तना	योग	पत्तियाँ	शाखाएँ	तना	योग
36 माह	650 (211)	350 (145)	725 (313)	1725 (699)	420 (140)	230 (96)	245 (104)	895 (340)	294 (86)	250 (105)	155 (73)	699 (264)
60 माह	775 (252)	225 (93)	500 (648)	2500 (993)	700 (233)	325 (136)	550 (234)	1575 (603)	125 (68)	40.0 (17)	90.0 (42)	255 (127)
माध्य	7125	287.5	11125	21125	560	2725	397.5	1235	209.5	145.0	1225	477

हरा भार – सूखा भार

भूमिगत

अधिकतम हरा जड़ भार सी.डी.एम. में (750 एवं 825 ग्राम) एवं तदोपरांत डी.आर.एम. (245 एवं 325 ग्राम) व कण्ट्रोल (234 एवं 125 ग्राम) संरचनाओं में क्रमशः 36 व 60 माह की आयु में प्राप्त हुआ। अधिकतम जड़ भार एवं जड़ की लम्बाई सी.डी.एम. संरचना में प्राप्त हुई जो कि अन्य मृदा संरचनाओं की अपेक्षाकृत बहुत अधिक थी। संरचनाओं में जड़ भार में आयु के साथ–साथ वृद्धि हुई किंतु जड़ों की संख्या में कमी हुई। यद्यपि जड़ तंत्र केवल मृदा संरचनाओं तक ही सीमित रहा एवं इसने कैल्शियम कार्बोनेट की कठोर परत को नहीं भेदा (तालिका–4)।

तालिका–4: विभिन्न मृदा संरचनाओं में 36 व 60 माह में जड़ों का विकास

आयु	सी. डी. एम			डी. आर एम			कण्ट्रोल		
	भार (ग्राम)	जड़ों की कुल लंबाई सेमी	जड़ों की संख्या	भार (ग्राम)	जड़ों की कुल लंबाई सेमी	जड़ों की संख्या	भार (ग्राम)	जड़ों की कुल लंबाई सेमी	जड़ों की संख्या
36 माह	750 (311)	644	13	245 (102)	671	20	234 (98)	304	8
60 माह	825 (342)	674	10	325 (126)	360	7	125 (52)	162	4

हरा भार – सूखा भार

निष्कर्ष

लवणीय जल भराव वाले क्षेत्रों में माउण्ड संरचनाएँ अत्यंत प्रभावी हैं और इनके प्रभावी होने के प्रमुख कारण हैं– जल निकास की समुचित व्यवस्था (Site Drainage), जल भराव (कम आक्सीजन उपलब्धता वाला क्षेत्र) से अधिक ऊँचाई पर पौध का उन्नयन (Elevation) एवं पौध की जड़ क्षेत्र से लवणों का निक्षालन। 60 माह की आयु के उपरांत नीम में सी.डी.एम. (41.6%), डी.आर.एम. (33.3%) व कण्ट्रोल में (8.8%) उत्तरजीविता, मासिक सिंचाई (अप्रैल से जून प्रति वर्ष) देने के उपरांत अंकित की गई। कण्ट्रोल की अपेक्षा माउण्ड संरचनाओं में पौधे की अच्छी वृद्धि एवं जैव भार का उत्पादन अधिक प्राप्त हुआ। सी.डी.एम. संरचना में अच्छा विकसित जड़ तंत्र प्राप्त हुआ। इस प्रकार सामान्य जल से मासिक सिंचाई करने पर अ. इण्डिका में लवणीय–क्षारीय मृदा में उगने की अपार क्षमता है।

कीटों का अद्‌भुत संसार

डॉ. मीता शर्मा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

संसार में कीट प्रजातियों की अनुमानित संख्या 10,000,00 (दस लाख) है। एक ही प्रजाति के कीट अनेक प्रकार या रुप रंग में मिलते हैं, इसलिए इनकी सही सही संख्या बता पाना कठिन है। एक कीट का शरीर तीन भागों में बंटा होता है, सिर, वक्ष व उदर। सिर पर दो संयुक्त आँखें होती हैं। संयुक्त आँख से यह तात्पर्य है कि एक आँख कई फलिकाओं से मिलकर बनी होती हैं।

मोनार्क तितली

चींटीं जैसे छोटे कीट की प्रत्येक आँख में पचास से भी अधिक फलिकाएँ होती हैं। घरेलू मक्खी की प्रत्येक आँख 4000 फलिकाओं से मिलकर बनी होती है। कीटों के नेत्र की इस विशेषता के कारण ही वे अपनी गर्दन घुमाए बिना चारों ओर देख सकते हैं।

कीटों के निवास स्थान में भी बहुत विचित्रता पाई जाती है। बर्र जाति के कीट मिट्‌टी से अपना घर बनाते हैं। इनके अंडे मिट्टी से ढके रहते हैं। "खटमल" नामक कीट कालीनों और गद्दियों में अपना घर बनाते हैं तथा वहीं निवास करते हैं। कुछ कीट अनाज के भंडार में अपना स्थान बना लेते हैं। गेहूँ में लगने वाला कीट "घुन" कहलाता है। चावल में लगने वाले कीट को "सूररी" कहते हैं। चने में लगने वाले कीट को "इल्ली" कहते हैं। कीटों का निवास स्थान ठण्डे व गर्म सभी प्रदेशों में हैं। हिम प्रदेशों में पाये जाने वाले कीट सूर्य–किरणों को सोखकर जीवित रहते हैं।

मध्य प्रदेश के पंचमढ़ी में एक पर्यटन स्थल का नाम "बी फाल" है क्योंकि यहाँ मधुमक्खियों के छत्ते भारी मात्रा में पाए जाते हैं। कीट अपने बच्चों की सुरक्षा भी अच्छी तरह करना जानते हैं। मक्खियाँ अपने अण्डे कूड़े–करकट पर देती हैं जहाँ वे सुरक्षित रहते हैं। बर्र के अण्डे मिट्टी के खोल से ढके रहते हैं। टिड्डे अपने अण्डे भूमि पर देते है। खटमल अपने अण्डे पलंग या गद्दो के कोने पर सुरक्षित रखते हैं। जूँ अपने अण्डो को बालों में चिपका देती हैं। कीटों के घर भी बहुत अदभुत होते है। मधुमक्खियों के छत्ते को अनुशासन का घर कहा जाता है। इसमें रानी, सिपाही व श्रमिक मक्खी के लिए अलग–अलग जगह सुनिश्चित कर बनाया जाता है। कुछ कीट वृक्ष के कोटर में घर बनाते हैं। कई कीट अपने अण्डो व बच्चों के उपर जाला सा बुनकर उसमें सुरक्षित रहते है। मादा मच्छर क्युलेक्स अपने अण्डे ठहरे हुए पानी में देते हैं तथा अण्डों को सुरक्षा देते है। कीट समुद्र के खारे जल में नहीं रह पाते। कीटो के शरीर में पतले बाल होते है जो उनके कवच से बाहर निकले होते है उनमें नीचे गड्‌ढे होते हैं जिन्हें "स्पाइरेकल्स" कहते है। अधिकतर कीटों के उड़ान भरने पर उनके पंखों से भन–भन की आवाज निकलती है। कीट जितनी तेजी से उड़ते है आवाज भी उतनी ही तेजी से होती है। भँवरा जब उड़ता है तो उसके पंख गुंजन करते हैं मानो छोटा सा वायुयान उड़ रहा है। कीटों में गुंजन की आवाज उनके पैरों से होती है। यह गुंजन परो के आपस में रगड़ खाने या हिलाकर चलने से भी होती है। इस आवाज के सहारे ही कीट एक–दूसरे को पहचानते हैं तथा अपनी उपस्थिति का आभास कराते हैं। कीट वनस्पति के अलावा फल, पौधों, ऊन, चमड़े, बालदार खाल, लकड़ी तथा कागज जैसी कीमती वस्तुओं को भी खा जाते हैं। कीटों का जन्म वहाँ होता है जहाँ उन्हें आसानी से उनका भोजन मिल जाए।

दीमक

कुछ कीट जिनका जीवन कुछ ही घण्टों या दिनों का होता है वे कीट अण्डे देते है और तुरन्त ही मर जाते है।

मधुमक्खियाँ, चींटियाँ, दीमक आदि अपना घर बनाते है इनका जीवन काल भी लम्बा होता है, इसलिए अपने बच्चों को पालते है। एक अन्य तथ्य और भी रोमाचंक है कि कीट पौधों को खाते हैं और पौधे कीटों को खाते हैं। घटपर्णी पौधा कीट–भक्षी पौधे के नाम से जाना जाता है। उनकी पत्तियाँ खोखली तथा घड़े के आकार की होती है इसके पेंदे में भरे रस में कीट गिरकर मर जाता है। कुछ समय बाद यह पौधा कीटों को अपना भोजन बना लेता है।

मधुमक्खी छत्ता

फूलों पर मधुमक्खी

सनड्यू, मिल्कवीड नामक पौधे भी इसी प्रकार प्राणियों को अपना भोजन बनाते है। फासिल्स से यह जानकारी मिलती है कि अमुक कीट कितना पुराना है? कीट अपने शरीर की प्राकृतिक छाप या नाप छोड़ जाता है और जब चट्टानों को तोड़ा जाता है तो इनका यह रूप देखने को मिलता है, जिसे फासिल्स कहते हैं। कीटों के फासिल्स 24 करोड़ वर्ष पुराने मिलते हैं, कॉकरोच का इतिहास 35 करोड़ वर्ष पुराना है। इसकी एक विशेषता यह होती है कि यह अपने शरीर को सिकोड़ लेता है। अतः यह छोटे से छोटे बिल में घुसकर खा सकते है। कॉकरोच के शरीर से एक चिपचिपा पदार्थ निकलता है जिसकी सहायता से यह दीवार पर उल्टे व सीधे चल सकते है। खेतों में ये सड़े पौधों और वृक्षों को खाकर सफाई का काम करते है तथा भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। तितलियाँ परागण का कार्य करती है। बीजों के ऊपर कुछ ऐसी संरचनाएं होती है जो कीटों के शरीर के रोमों में फँस जाते है, फिर उड़कर कीट के साथ अन्यत्र पहुँच जाते है।

वास्प

बहुत से जन्तु वातावरण के अनुसार रंग बदलकर दुश्मन की नजर से बच जाते हैं। जबकि अधिकांश कीटों की शारीरिक बनावट ही ऐसी होती है कि वे वातावरण में घुल–मिल जाते हैं। जैसे घास पर पलने वाले अनेक प्रकार के कीटों को हम पहचान नहीं पाते, जब वे उड़ते हैं तब यह पता चलता है कि ये कीट हैं।

अफ्रीका के आदिवासी बाँस की सहायता से कीटों के लिए लालटेन बनाते हैं। उसमें वे जुगनुओं को पकड़कर भर देते है। यह रात में प्रकाश देने का काम करता है। कीट हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। रेशम और लाख का कीड़ा बहुत ही उपयोगी होता है। इससे रेशम तथा लाख प्राप्त होता है। कीट परागण का बहुत बड़ा दायित्व निभाते हैं। इनमें मधुमक्खी, तितलियाँ हैं। झीगुंर भूमि में उपस्थित पत्थर के कणों, लकड़ी के मल पदार्थों को पीसते हैं। खोद–खोदकर भूमि को नरम कर उपजाऊ करते हैं। मधुमक्खियाँ शहद बनाती हैं। जोकि औषधि रूप में प्रयोग किया जाता है। कीटों को खाद्य पदार्थों के रुप में भी काम

टिड्डा

में लिया जाता है। अफ्रीका की अनेक हब्सी जातियाँ दीमक को आटे में मिलाकर रोटियां बनाकर खाती है। डंग बीटल्स गोबर में छिपी गंदगी को समाप्त करते हैं। घरों के सैप्टिक टैंक में डंग बीटल्स पाए जाते हैं। ये मल में रहे अन्न के शेष भाग को खाकर उसे खाद में बदलते रहते हैं । मानव में कीटों द्वारा अनेक रोग भी फैलते हैं। अफ्रीका में पाई जाने वाली सिसि फ्लाई स्लीपिंग सिकनेस का रोग फैलाती है। ऐनाफलीज मच्छर मलेरिया रोग फैलाता है । एडिस नामक मच्छर पीत ज्वर फैलाता है। मधुमक्खी तथा बर्र मानव को बहुत जोर से काटते हैं। टिड्डीयों द्वारा पूरे के पूरे खेतों को नुकसान पहुँचाया जा सकता है। लेडी बर्ड बीटल एक ऐसा कीट है जो कि दूसरे कीटों को खाता है। हार्स फ्लाई, घोड़ों की पूँछ के बालों पर अपने अण्डे देती है। इससे इन जानवरों को कष्ट होता है। माइटस (कीट) परजीवी होते है। ये कुत्ते, गाय, भैंसे तथा घोड़ो के शरीर पर चिपककर खून चूसते हैं।

गैर परम्परागत नकदी फसलों की खेती

डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. डी . के. मिश्रा
एवं श्री मनीष मेहरा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

भारत की उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर स्थित राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। यहां की पर्यावरणीय परिस्थितियां अत्यन्त प्रतिकूल है। यहां पर कम एवं अनियमित वर्षा, अधिक तापक्रम, चलायमान रेतीले टीबे एवं धूल भरी आंधियाँ आदि जैसी परिस्थितियाँ सामान्यतः रहती है। यहां के अधिकांश लोग खेती पर निर्भर रहते है तथा परम्परागत फसलों जैसे–बाजरा, तिल आदि की खेती करते है। विकट परिस्थितियों एवं वर्षा की अनियमितता के कारण अकाल जैसी परिस्थितियों का अंदेशा बना ही रहता है। कुछ गैर परम्परागत फसलों जैसे सोनामुखी, जोजोबा, तुम्बा आदि की खेती द्वारा इस क्षेत्र के किसान न केवल वर्षा की अनियमितता से होने वाली हानि से बच सकते है वरन् उन्हें इससे एक अच्छी आमदनी भी मिल सकती है। इस के अतिरिक्त इन गैर परम्परागत फसलों की खेती से क्षेत्र की परती भूमि में हरियाली भी लाई जा सकती है।

जोजोबा : जोजोबा या "होहोबा" के नाम से पुकारे जाने वाली इस मध्यम आकार की एवं सदा हरी रहने वाली झाड़ी का वानस्पतिक नाम "साइमोन्डीया चाईनेनसिस" है तथा यह कुल "साइमोनडिएसी" का सदस्य है। यह द्विलिंगी प्रकृति की झाड़ी मरु क्षेत्र की विकटतम परिस्थितियों में भी अच्छी तरह वृद्धि कर सकती है। इसके नर एवं मादा पौधे में भेद मात्र पुष्पन के दौरान ही किया जा सकता है। यह पादप मुख्यरुप से मैक्सिको एवं कैलिफोर्निया के सोनारन रेगिस्तान भू–भाग का है तथा शुष्क अनुसंधान संस्थान (काजरी) द्वारा भारत में लाया गया है। जोजोबा मुख्य रुप से इसके वसीय तेल के व्यापारिक महत्व के कारण उगाया जाता है।

खेती : इसे सर्व प्रथम 1965 में काजरी द्वारा इजराइल से लाकर उगाया गया था। इसके पौध रोपण हेतु बीजों का उपयोग मुख्यतः किया जाता है। बीजों को मुख्यतः पॉलीबैग में लगाकर उगाया जाता है परन्तु कभी–कभी सीधे ही पौधशाला में बीजारोपण भी किया जाता है। सीधे बीजरोपण से बहुत कम अंकुरण होने की पुष्टि के बाद इसकी खेती हेतु पॉलीबैग में ही बीज रोपण किया जाता है। बीजरोपण हेतु बीजों को ताजे पानी में 24 घंटे तक डुबाकर रखा जाता है तथा तत्पश्चात् क्ले, मिट्टी व फॉर्मयार्डमैन्योर (FYM) के 1:1:1 मिश्रण से भरी पॉलीबैग में बीजारोपण कर दिया जाता है। बीजारोपण साधारणतः अक्टूबर में किया जाता है तथा प्रारम्भ में दिन में दो बार हल्की सिंचाई भी की जाती है। रोपणी में पौधे 8–9 महीने में तैयार हो जाते है।

इस प्रकार रोपणी में तैयार पौधों को मानसून के दौरान 45 x 45 x 45 आकार के गड्ढ़ों में 5 किलोग्राम फार्मयार्डमैन्योर व कुछ कीटनाशी डालकर पौधरोपण कर दिया जाता है। बड़े पैमाने पर इसकी खेती हेतु 4x3 का अन्तर साधारणतः रखा जाता है। इसकी खेती में नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1:4 रखने के लिए अधिक पौधों (नर अथवा मादा) को हटा लेते है। शुरुआत में खरपतवारों को उखाड़कर अथवा नष्ट करके इसकी वृद्धि दर को बढ़ाया जा सकता है। जोजोबा में फल उत्पादन अप्रैल–मई में शुरु हो जाता है। आरम्भ में फलोत्पादन बहुत कम होता है, परन्तु यह शनैः–शनैः बढ़ता जाता है तथा 10$^{वें}$ वर्ष में औसत प्रति पौधे से 1 किलोग्राम बीजोत्पादन, फलों से प्राप्त किया जा सकता है।

उपयोग : जोजोबा का मुख्य उपयोगी पदार्थ इससे मिलने वाला तेल है जिसका उपयोग कास्मेटिक उद्योग में, फार्मास्यूटीकल उद्योग में, स्नेहक तेल के रुप में, खाद्य तेल के रुप में, विद्युत रोधी के रुप में, आग प्रतिरोधी पदार्थ के रुप में तथा ट्रान्सफार्मर में तेल के रुप में आदि में प्रयुक्त होता है। इसके तेल का उच्च क्वथंनाक तथा गंलनाक होता है तथा इसका क्षय बिन्दु (Decomposition Point) भी 315^{0} से.ग्रे. है।

सोनामुखी : सेना एवं सोनामुखी के नाम से पुकारे जाने वाले इस पौधे का वानस्पतिक नाम "कैसिया अंगुस्टीफोलिया" है। इसे अरब के फिजिशियनों द्वारा भारत में प्रवर्तित किया गया तथा तत्तपश्चात इसे भारती, ब्रिटिश एवं विश्व के अन्य फार्मोकोपियास में सम्मिलित किया गया। यह प्रायः हर प्रकार की भूमि में उग सकता है। इसमें सेनोसाइड "ए" एवं सेनोसाइड "बी" ग्लाइकोसाईड नामक रासायनिक पदार्थ पाये जाते है। यह एक छोटी बहुवर्षिय शाकिया पादप है जिसे सम्पूर्ण फसल के रुप में या मिश्रित फसल के रुप में परम्परागत फसलों के साथ उगाया जाता है।

खेती : इसे साधारणतः बीजों द्वारा उगाया जाता है। बीजों की बुवाई छिड़काव विधि से की जाती है परन्तु 30 से.मी. दूरी पर बुवाई करना उपयुक्त रहता है। वर्षा आधारित खेती की परिस्थितियों में सामान्यतः 27 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर तथा सिंचित क्षेत्र में 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज उपयुक्त रहते है। बीजों की बुवाई से पहले बीजों की सतह को अच्छी तरह रगड़ लेना चाहिए। बीजों की बुवाई के बाद अंकुरित बीजों में एक से दो बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। जब पुष्प वृन्त की मोटाई, पौधे के निचले भाग की मोटाई के बराबर होने पर उसे काट लेते है जिससे पौधे में अधिक शाखाएं निकलती है तथा वृद्धि दर भी बढ़ जाती है। जोजोबा की खेती में हल्की सिंचाई उपयुक्त रहती है, परन्तु अत्यधिक वर्षा नुकसानदेय होती है। सोनामुखी की फसल की 2 महीने बाद कटाई की जा सकती है, परन्तु पत्तियों की कटाई तीन माह बाद करना उपयुक्त रहता है। सेना या सोनामुखी की पत्तियाँ व्यापारिक महत्व की होती है तथा उन्हें उचित तरीके से सुखाना एवं संग्रहित करना चाहिए। सोनामुखी की पत्तियाँ एवं फलियों की जैविक क्षमता 5 वर्षो तक बरकरार रखी जा सकती है। भारत में उत्पन्न होने वाला लगभग सम्पूर्ण सेना विदेशों में निर्यात होता है। सोनामुखी की फसल 2–3 वर्ष तक खेत में खड़ी रह सकती है। इसकी जड़ें बहुत गहरी जाती हैं तथा पादप तेज गर्मी में भी खड़ा रह सकता है।

लैग्यूमिनस कुल का पादप होने के कारण यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होता है तथा इसका स्वाद बहुत कड़वा होने के कारण इसे जानवर भी नहीं खाते है। सोनामुखी की फसल से 1–1.4 टन पत्तियाँ तथा 1.5 क्विंटल फली प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो सकती है। सोनामुखी की खेती हेतु फरवरी से मार्च एवं जुलाई से अक्टूबर तक का समय (वर्ष में दो बार) उपयुक्त रहता है।

तुम्बा : इसे वैज्ञानिक भाषा में "सिट्रूलस कोलोसिन्थिस" कहते है। यह "कुकुरबिटेसी" कुल का एक रेंगने वाला शाकीय पादप है। यह मूलतः अफ्रीका प्रायद्वीप का पादप है तथा लगभग सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। यह "मतीरे" कुल (कुकुरबिटेसी) का एक महत्वपूर्ण सदस्य है तथा मरु क्षेत्र की विकट परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि करने के अतिरिक्त आर्थिक रुप से भी उपयोगी है। इसी कारण इसे मरु क्षेत्र के रेगिस्तानी भू–भाग हेतु उपयुक्त माना गया है।

"तुम्बा" का पौधा बहुत तेजी से वृद्धि करता है तथा इसमें 30 दिनों में ही पुष्पन शुरु हो जाता है तथा बुवाई के 60 दिन बाद फलों का उत्पादन भी शुरु हो जाता है। यह पौधा मिट्टी को बांधे रखने एवं रेतीले टीलों के स्थिरीकरण में सहायक है। इसके फलों में एक उपयोगी ग्लूकोसाइड "कोलोसिन्थिस" होता है जबकि बीजों में 20 प्रतिशत तेल एवं 11 प्रतिशत प्रोटीन होता है।

कृषि : इसकी व्यापक खेती हेतु बीजों को 5 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड विलयन में डुबो देते है तथा उसमें से कुछ देर बाद ऊपर तैरने वाले बीजों को एकत्र कर खड्डों में 20 से.मी. गहराई पर डालकर 30–35° तापक्रम में बुवाई करते है। 10–12 दिन बाद ही बीजों में अंकुरण शुरु हो जाता है। बीजों की बुवाई हेतु मानसून का समय उपयुक्त रहता है तथा देरी से बीजों की बुवाई अगस्त के मध्य तक भी की जा सकती है। बीजों की बुवाई ड्रिलिंग द्वारा खांचों में बुवाई विधि से की जा सकती है अथवा 120 से.मी. x 120 से.मी. गहरे गड्ढो में भी की जा सकती है। गड्ढ़ों में बुवाई के पहले 2 टन फार्मयार्डमैन्योर तथा 5 कि.ग्रा. कीटनाशक प्रति हैक्टेयर मिट्टी में मिलाना लाभकारी रहता है। जोजोबा की खेती हेतु दो बार खरपतवार उन्मूलन 20 एवं 45 दिन बाद करना श्रेयकर रहता है। जोजोबा पर कोई विशेष कीट आक्रमण/रोग नहीं होता है परन्तु कायिक अवस्था में पत्तियों पर बीटल्स आक्रमण क़र सकते है तथा इसे कार्बेराइल 0.2 प्रतिशत स्प्रे द्वारा नियंत्रित कर सकते है। इसके हरे फलों को जानवरों को खिलाया जाता है जबकि पूर्णतः पके हुए विकसित पीले फलों को एकत्र कर सुखाया जाता है तथा इनके बीज निकाले जाते है। उपयुक्त प्रयासों के द्वारा एवं अनुकूल परिस्थितियों में 120 से 150 क्विंटल फल प्रति हैक्टेयर प्राप्त किये जा सकते है।

उपयोग : इसके फलों का औषधीय महत्व है तथा हमारे देशी चिकित्सा शास्त्र में इसे औषधी के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। साधारणतः इसे जुलाव (Purgative) के रुप में प्रयोग में लिया जाता है। इसके बीजों में 20 प्रतिशत तेल एवं 12 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। इसके तेल का उपयोग साबुन उद्योग में, मोमबत्ती बनाने में आदि में होता है। राजस्थान में यह साबुन उद्योग के लिए कच्चे माल के रुप में प्रयुक्त होता है। इसके बीजों को साधारण नमक के साथ मिलाकर रखने से इसका खारापन समाप्त किया जा सकता है। सूखे बीज बाजरे के साथ मिश्रित कर पीसे जाते हैं तथा इस प्रकार बना आटा गरीबों द्वारा अकाल में खाया जाता है।

मानव और पर्यावरण

कुमारी नीलू विश्वकर्मा
उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

प्रकृति में हमें जो कुछ भी परिलक्षित होता है–जैसे वायु, जल, मृदा, पादप व प्राणी सभी सम्मिलित रुप में पर्यावरण की रचना करते हैं। कोई भी जीव सर्वथा एकल या विलगित जीवन व्यतीत नहीं करता है। पृथ्वी पर विभिन्न जीव इतनी अधिक संख्या में हैं, कि किसी भी स्थान पर निवास करने वाले किसी भी जीव का दूसरे जीवों के साथ सहवासित होना एक अनिवार्यता है। इस प्रकार के सहवासों का जीव के अस्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार भौतिक व रासायनिक पर्यावरण का भी बहुत महत्व होता है, क्योंकि जीव की अधिकांश ऊर्जा अपने पर्यावरण की भौतिक व रासायनिक परिस्थितियों के प्रति अनुकूल होने पर ही व्यय होती है। अतः पर्यावरण व जीव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

समस्त प्राणी भोजन के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से हरे पादपों पर ही निर्भर हैं। अनेक पादप भी प्राणियों पर निर्भर करते हैं। पादप परागण के लिए कीटों पर निर्भर रहते हैं, कुछ हरे पादप सूर्य से प्राप्त ऊर्जा व मृदा से प्राप्त पोषक तत्वों के सहारे कुछ समय पर्यावरण में स्वतंत्ररूप से जीवित रह सकते हैं। परंतु जैसे ही बीजाणु की वृद्धि आरंभ होती है, उनमें प्रतिस्पर्धात्मक संबंध प्रकट होने लगता है। इस प्रकार प्रत्येक जीव के पर्यावरण में अन्य जीव भी आवश्यक व अपरिवर्तनीय अंग के रूप में उपस्थित रहते हैं। अन्य जीवों की तरह ही मानव भी पर्यावरण का ही एक अंग है। किन्तु अन्य जीवों की तुलना में मानव ने अपने चारों ओर के पर्यावरण को प्रभावित व कुछ अर्थों में उसे नियंत्रित कर पाने की क्षमता प्राप्त कर ली है।

प्रारंभ में आदि मानव अन्य प्राणियों के समान ही अपने पर्यावरण के साथ समायोजन कर अपना अस्तित्व बनाए रखने वाली मात्र एक प्रजाति भर था। वह जैविक समुदाय का एक सदस्य था तथा उसके अंतर्गत जीवन बिता रहा था। प्रकृति के इस संतुलन को उसने जैसा पाया उसी के अनुसार उसने स्वयं को समायोजित कर लिया था, उसमें परिवर्तन की अधिक कोशिश नहीं की। किन्तु धीरे–धीरे उसकी आवश्यकतायें बढ़ने लगीं और उसी अनुपात में उसका प्रकृति में हस्तक्षेप भी बढ़ा।

विगत सौ वर्षों में मानव ने जीवन के प्रत्येक पक्ष में प्रगति के लम्बे–लम्बे डग भरे हैं। उसने इस प्रयास में इनके सम्पूर्ण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। कृषि में उसने केवल उन फसलों का चुनाव किया जिन्हें वे अत्यधिक पसंद करता था। दूसरी फसलों को नष्ट किया।

जीवन का अधिकांश रूप विशिष्ट प्रकार के पर्यावरण के लिए अनुकूलित होता है। दूसरे शब्दों में ये रुप सामान्य जीवन परिस्थितियों, भोजन स्रोतों द्वारा सीमित रहते हैं। संपूर्ण पृथ्वी को अनुमाप मानकर देखें तो पर्यावरण का अध्ययन जैव मण्डल का अध्ययन ही है। जैव मण्डल से तात्पर्य उस संपूर्ण स्थान से है जहाँ किसी न किसी रुप में जीवन पाया जाता है।

जीवन के विभिन्न रुप समुद्र की अनंत गहराईयों से लेकर पर्वतों के शिखिरों तक सभी जगह मिलते हैं। जैव मण्डल का विस्तार पृथ्वी की सतह से 10,000 मीटर की ऊँचाई तक, समुद्र में लगभग 8,000 मीटर की गहराई तक व पृथ्वी की सतह के नीचे 250 मीटर तक फैला हुआ है।

जैव मण्डल के सिद्धान्तानुसार पृथ्वी पर मौजूद कोई भी जीव पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया हेतु आवश्यक क्रिया विधि या संसाधनों के बिना अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है। सभी जीवद्रव्यी इकाईयों की यह एक आधार भूत प्रतिक्रिया होती है। ये विशिष्टीकरण व पर्यावरण परिवर्तनों के प्रति विशेष रुप में संवेदनशील होते हैं।

पर्यावरण द्वारा आरोपित परिस्थितियाँ पृथ्वी पर मौजूद सभी प्रकार के जीवों के जीवित रहने के लिए सर्वदा अनुकूल नहीं होती हैं फलस्वरुप कोई भी जीव विशेष विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों के प्रति अनुकूलित हो

सकते हैं। अनुकूलन सर्वदा परिस्थिति विशेष हेतु होने वाले विशेष समायोजन है, जो उत्तर जीविता हेतु अपेक्षित होते हैं। अधिकांश जन्तु अपने अनुकूलन संबंधों की विशिष्टिता धारण कर चुके हैं। इस कारण वे जितने अधिक पूर्णता से एक पर्यावरण के प्रति अनुकूलित होते हैं इतनी ही उनकी एक भिन्न प्रकार के पर्यावरण में समायोजन क्षमता कम हो जाती है।

पृथ्वी के समस्त जीवों में पर्यावरण परिवर्तनों से समायोजन की थोड़ी बहुत क्षमता अवश्य ही होती है। यह यथार्थ में दशानुकूलन का सिद्धान्त हैं जिसका तात्पर्य उस प्रकिया से होता है जिसके द्वारा कोई भी जीव अपने जीवन चक्र की सीमा में उन परिस्थितियों का अभ्यस्त होने में सक्षम होता है जो सामान्यतः उसे हानि या चोट पहुँचा सकती है। जैसेः ताप, शीत, जलमाध्यम की लवणीयता, आक्सीजन दबाव, विष व अन्य अनेक कारकों की चरम अवस्थायें। यह प्रक्रिया उन समायोजनों से भिन्न होती है, जो कि अनेकानेक सन्ततियों के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। दशानुकूलन का तात्पर्य सामान्य व तीव्र समायोजनों से है, जो कि क्रियाकारी अंगों में उनकी सामान्य क्रियाशीलता के मध्य उत्पन्न होते हैं। जैसे धुंधुले प्रकाश या तीव्र प्रकाश में समायोजन की क्षमता।

पृथ्वी पर कोई भी जीव अपने पर्यावरण से अलग जीवनयापन नहीं कर सकता है। समस्त प्राणी पर्यावरणीय बलों द्वारा प्रभावित होते हैं। पर यह परस्पर सम्बन्ध अन्योन्य प्रकृति के होते हैं। जिनमें जीव भी अपने पर्यावरण के कारकों को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण के दो कारकों–जैविक व भौतिक में जैविक कारकों के अन्तर्गत प्राणी विशेष व उसके पास अन्य प्राणियों के परस्पर संबंधों का समावेश रहता है जबकि भौतिक कारकों के अन्तर्गत तापमान, आद्रर्ता, मृदा, वायु, प्रकाश सम्मिलित हैं। इन दोनों समूहों के परस्पर संबंध भी भिन्न होते हैं क्योंकि एक ही प्रजाति के सदस्यों में भोजन, आवास व जल की आवश्यकतायें ही समान होने से प्रतिस्पर्धायें होती हैं। जबकि विभिन्न प्रजातियों के सदस्यों की समस्यायें–भोजन श्रृंखला आबादी का दबाव व अन्य सामान्य सामुदायिक संबंधों से जुड़ी होती हैं। इन सभी पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव से एक प्राकृतिक पर्यावरण सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

अपेक्षाकृत नवीन पर्यावरणीय पारिस्थितिक विज्ञान अब विज्ञान की एक परिपक्व व सर्वमान्य शाखा व शोध के एक विशिष्ट क्षेत्र के रुप में स्थापित हो चुका है। यही नहीं पिछले कुछ वर्षों में मानव ने जन साधारण में पर्यावरण के प्रति जागरुकता बढ़ी है और पारिस्थितिकी एक घरेलू शब्द बन गया है। जनसामान्य की पर्यावरण परिस्थिति के प्रति बढ़ी जागरुकता का मुख्य कारण हाल के वर्षों में तीव्र औद्योगिक प्रगति एवं बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं की अनुभूति है।

मानव ने सदा ही पर्यावरण पर परिवर्तनकारी प्रभाव ड़ाले हैं, जो प्राकृतिक तंत्रों के प्रति उपेक्षा के कारण अक्सर विनाशकारी सिद्ध हुए हैं। मानव पर्यावरण में प्रदूषण में वृद्धि, जनसंख्या विस्फोट तथा अन्य पर्यावरणीय समस्यायें इन्हीं का परिणाम हैं अन्य प्राणियों के समान ही मानव भी अपने पर्यावरण के भौतिक अभिलक्षणों से प्रभावित होता है।

पर्यावरण में यह परिकल्पना व अनुभूति कि मानव भी जटिल पर्यावरण जैव–भूरासायनिक चक्रों का भाग है आधुनिक पारिस्थितिकी की मूलभूत संकल्पना है। प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण के प्रयासों से इन तथ्यों को दृष्टिगत रखना हितकर होगा। अत्यधिक दोहन से प्राकृतिक स्रोतों को बचाने में मानव का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

यद्यपि प्रकृति में पर्यावरण को सुधारने की स्वचालित प्रणाली होती है तथापि इसकी भी सीमायें हैं। जैसे प्राकृतिक स्रोतों में मिलने वाले प्रदूषित जल के शुद्धीकरण की क्षमता प्रकृति में होती है। पर यदि प्रदूषण अधिक और लगातार होता रहता है तो एक समय के बाद ये प्राकृतिक स्रोत अपनी शुद्धिकरण की क्षमता खो देते हैं व उनका जल मानव उपयोग की दृष्टि से अनुपयोगी हो जाता है।

पर्यावरणीय तंत्र सामान्यतः स्वचालित और सन्तुलित कार्यिकी तंत्र की तरह ही व्यवहार करते हैं। यदि वातावरण में परिवर्तन होता है तो उसका प्रभाव वहाँ के जीव–जन्तुओं पर अवश्य ही पड़ता है। इससे सन्तुलन बिगड़ने की सम्भावना रहती है। परन्तु पर्यावरणीय तंत्र में कुछ सीमा तक परिवर्तन की प्रक्रिया के विपरीत सन्तुलन को नष्ट होने से बचा लेने की भी क्षमता होती है। पर्यावरण की यह प्रक्रिया गणित विज्ञान की नई शाखा सायवरनेटिक्स द्वारा समझी जा सकती है। इस प्रकार– सायवरनेटिक्स अर्थात नियंत्रक विज्ञान पर्यावरणीय पारिस्थितिकीय अध्ययन में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेषकर इसलिये भी मानव की

प्राकृतिक नियंत्रक को नष्ट करने या प्राकृतिक क्रियाविधि को कृत्रिम क्रियाविधि द्वारा विस्थापित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। मस्तिष्क के असाधारण विकास होने से मानव पृथ्वी के सभी जीवों से अधिक शक्तिशाली व श्रेष्ठ हो गया है। विज्ञान की प्रगति के साथ मानव द्वारा पर्यावरणीय स्थितिक तंत्र की प्रक्रिया को निरन्तर परिवर्तित करने की क्षमता असाधारण रूप से बढ़ गयी है।

यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें अत्यन्त सतर्क वस्तुनिष्ठ नियमित आकलन और दूर दृष्टि सम्पन्न समेकित वैज्ञानिक नियंत्रण प्रणाली विकसित करनी होगी। क्योंकि विश्व में मूलभूत पारितंत्रों का समायोजन करने से या तो मानव का भविष्य बहुत उज्ज्वल हो जायेगा या बड़े पैमाने पर की गई त्रुटियों के कारण मानव इस विश्व को विनाश के कगार पर ही पहुँचा देगा।

दोहे

रहिमन ओछे नरन सो, बैर भली ना प्रीत,
काटे चाटे स्वान के, दोउ भाँति विपरीत।

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग,
बाँटनवारे को लगै, ज्यौं मेंहदी को रंग।

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय,
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय।

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि,
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तलवारि।

रहिमन विपदा ही भली, जो थोरे दिन होय,
हित अनहित यहि जगत में, जानि परत सब कोय।

– रहीम

ग्लोबल वार्मिंग - समस्या व समाधान

कुमारी शिल्पा एवं श्री दुष्यन्त कुमार
हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

सौर मण्डल के समस्त ग्रहों में केवल पृथ्वी पर ही जीवन संभव है। लगभग 3.8 बिलियन वर्षों पूर्व इस ग्रह पर सूक्ष्मतम जीव–कोशिका का प्रादुर्भाव हुआ तथा धीरे–धीरे जैव–विकास की प्रक्रिया में पादप जगत व जन्तु जगत की विभिन्न प्रजातियों ने पृथ्वी पर विद्यमान भौगोलिक परिस्थितियों में अनुकूलन द्वारा अपने–आपको स्थापित किया। उत्तरोतर मनुष्य ने विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की, परन्तु भौतिकवाद की दौड़ में अपने चारों ओर के परिवेश को अत्यधिक क्षति पहुंचाई तथा इन सबकी पराकाष्ठा के रूप में ग्लोबल वार्मिंग तथा जलवायु परिवर्तन जैसी भयावह पारिस्थितिकीय समस्याएं पैदा हो गई। वायुमण्डल कई प्रकार की गैसों का समिश्रण हैं। इसकी संरचना में मुख्य रूप से नाईट्रोजन (78.09%), ऑक्सीजन (20.95%) तथा कार्बन डाईऑक्साईड (0.03%) पाई जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य गैसें जैसे ऑर्गन, नियॉन, हिलीयम, क्रिपटॉन, हाईड्रोजन तथा जल–कण व धूलीकण भी विद्यमान होते हैं। विभिन्न मानवीय गतिविधियों जैसे औद्योगीकरण, शहरीकरण, जैविक ईधन दहन, उत्खनन, वन कटाव तथा परिवहन जनित प्रदूषण–द्वारा या प्राकृतिक कारणों से वायुमण्डल में कार्बन डाईऑक्साईड की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग अर्थात भूमण्डलीय उष्णता की समस्या उत्पन्न होती है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात CO_2 की मात्रा 280 पी.पी.एम. से बढ़कर 380 पी.पी.एम. हो गई है। विश्व के विभिन्न देशों द्वारा कार्बन डाईऑक्साईड उत्सर्जन के आंकड़े निम्नांकित है :

क्रसं	देश	(मात्रा 'मीट्रीक टन)
1	अमेरिका	5,762,050
2	चीन	3,473,600
3	रूस	1,540,360
4	जापान	1,224,740
5	भारत	1,007,980
6	जर्मनी	837,425
7	इंगलैण्ड	5,58,225
8	कनाडा	5,21,404
9	इटली	4,46,596
10	फ्रांस	3,63,484
		स्रोत : विश्व ससाधन संस्थान

इस स्थिति में पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक के कुछ वर्षों में तापमान वृद्धि के आंकड़ो के अवलोकन इस प्रकार से है :

क्रसं	वर्ष	तापमान वृद्धि
1	2001	0.40^0C
2	2002	0.46^0C
3	2003	0.46^0C
4	2004	0.43^0C
5	2005	0.48^0C
6	2006	0.42^0C
7	2007	0.41^0C
		स्रोत : आई.पी.सी.सी एवं मौसम विज्ञान संगठन

यदि यही स्थिति बनी रही तो एक दिन ध्रुवों की बर्फ पिघल कर महासागरों के जलस्तर को बढ़ाकर, हमारी वसुन्धरा का जलमग्न कर देगी।

इस पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए पर्यावरण विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों द्वारा एक ठोस सकारात्मक रणनीति तैयार करने की आवश्यकता है तथा इस दिशा में निम्न उपाय कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

1. समग्र योजना के तहत विभिन्न प्रशासनिक उपायों द्वारा कार्बन डाईऑक्साईड व ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में कमी।
2. प्राथमिकता के आधार पर पर्यावरण मित्र प्रौद्योगिकी का विकास व प्रसार।
3. उर्जा के गैरपारम्परिक स्रोतों का उपयोग।
4. प्राकृतिक संसाधनों–जल, जमीन व वनों का उचित प्रबन्धन व संरक्षण।
5. रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर प्राकृतिक खाद का इस्तेमाल व जैव पीड़क–नियंत्रण विधियों का प्रयोग।
6. सबसे अधिक महत्वपूर्ण, पर्यावरण तथा वृक्ष रोपण सम्बन्धी परियोजनाओं को प्रायोगिक तौर पर क्रियान्वित करना।

प्राकृतिक रंजक

डॉ. आभा रानी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

रंग प्रकृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा प्रकृति को सुन्दरता से भरते हैं। मुनष्य अपने को खुशनुमा बनाने के लिए रंगों को अनेक प्रकार से उपयोग में लाता है। रंगीन फूल, पत्तियाँ व फल विभिन्न तरीकों से कीड़ों को आकर्षित करते हैं। कीड़े फूलों पर परागण करते हैं जिससे कि पौधें के बीज तथा फल बनते हैं। प्राकृतिक रंग की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। प्राकृतिक रंग खाद्य पदार्थों तथा पेय पदार्थों में मिलाने पर वाछित रंग देते हैं।

प्राकृतिक रंगों को 3 प्रमुख भागों में बांटा गया है :

1. **प्राणियों से प्राप्त रंग**–यह रंग कीड़ों और जीव–जन्तुओं से प्राप्त किये जाते है। उदाहरण –

लेसीफर लाका	लाख का रंग	लाल रंग
कोकस केक्टी	कार्मिनिक अम्ल	नील लोहित रंग

2. **पौधों / वनस्पतियों से प्राप्त रंग**– इसमें पौधे के विभिन्न भागों जैसे–पत्ती, जड़, छाल, नट, फल, बेरी, बीज तथा फूलों से रंगो को अलग किया जाता है। ये ही प्राकृतिक रंगों के मुख्य स्त्रोत हैं।

बिक्सा ओरीलाना	अनेटो	नारंगी बीजों से	लाल रंग
ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	पलास	पीले फूल से	पीला रंग
मेलोटस फिलीपाइनेनसिस	सिंदूरी	बेरी से	नारंगी
बुडफोरडिया फुटीकोसा	फयर फलेम वुश	गुलाबी लाल फूल से	लाल रंग

3. **खनिज पदार्थो से प्राप्त रंग** – इनमें रंगों को खनिज पदार्थो से प्राप्त किया जाता है। उदाहरण –

सफेदा	सफेद लेड्
सिंदूर	लाल लेड्
चीनी मिट्टी	के आल् इन

कृत्रिम रंगों का प्रभाव विषैला होने के कारण संसार भर में विकसित तथा विकासशील देशों ने खाद्य एवं पेय पदार्थों, सौंदर्य सामग्री तथा औषधियों में कृत्रिम रंगों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया तथा कुछ ही कृत्रिम रंगों को व्यावहारिक प्रयोग में लाने की अनुज्ञा दी गई जिससे प्राकृतिक रंगों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

खाद्य सामग्री में उपयोग होने वाले कृत्रिम रंग जिनकी अनुज्ञा विश्व भर में दी गई है–

1. ब्रिलेन्टब्लू, 2. इरीथ्रोसिन, 3. फास्टग्रीन, 4. इंडीगोटिन, 5. सनसेट येलो, 6. टारट्राजीन

भारत में खाद्य पदार्थों में उपयोग होने वाले प्राकृतिक रंग (खाद्य एवं मिलावट अधिनियम,1954)		
1.	ऐनेटो सत्	पनीर, कृत्रिम मक्खन
2.	बीटा केरोटिन	कृत्रिम मक्खन, पनीर
3.	बीटा–एपो–8–करोटिनल	गूदा एव छिलके वाले सिट्रस फल
4.	मिथाइल एस्टर ऑफ बीटा–एपो–8– केरोटिनोइक अम्ल	खाने योग्य वसा, तेल
5.	केन्थाजेन्थिन	खाने वाले मशरूम
6.	केरामल	कार्बोहाइड्रेट, शुगर, स्टार्च
7.	कुरकुमिन	हल्दी
8	कोकस सेटाइवस	केसर

प्राकृतिक रंग के वांछित गुण

1. यह मनमोहक तथा मन लुभावना होना चाहिए।
2. इन पर प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
3. पानी तथा साबुन से कपड़े को धोने पर रंग निकलना नहीं चाहिए।
4. रंगा हुआ कपड़ा पहनने पर रंग नहीं बदलना चाहिए।
5. रंगे हुए कपड़े को रगड़ने पर रंग नहीं बदलना चाहिए।
6. पसीने से रंग उतरना तथा फीका नहीं पड़ना चाहिए।
7. कपड़े के तन्तुओं को कमजोर नहीं पड़ना चाहिए।

बुडफोरडिया फुटीकोसा का 1. पौधा, 2. फूल की डंडी एवं 3. एकत्र फूल

प्राकृतिक रंगों के फायदे

1. प्राकृतिक रंगो का पूरे तरीके से मिलान हो जाता है।
2. इनसे प्रदूषण नहीं होता है।
3. इनसे बनी रंग की छटा, गहरी एवं मनभावन होती है।
4. यह रंग एक साथ फीका पड़ता है तथा अपनी स्वाभाविक प्रकृति को बनाए रखता है।
5. इससे एलर्जी नहीं होती है।
6. इसकी रंगाई जलाऊ लकड़ी के द्वारा की जाती है।
7. इसके लिए साधारण सामग्री एवं उपकरण प्रयोग में लाये जाते हैं।
8. यह कीट अवरोधक होता है।
9. इनका उपयोग आर्थिक दृष्टि से फायदेमंद होता है।

कृत्रिम बनाम प्राकृतिक रंग

क्रम	विशेषताएं	कृत्रिम	प्राकृतिक
1.	रंगने की क्षमता	ज्यादा	कम
2.	रंगने के लिए आवश्यक मात्रा	बहुत कम	कुछ ज्यादा
3.	पुनरूत्व	ज्यादा	कम
4.	मिलान	ज्यादा	कम
5.	पानी में घुलनशीलता	बहुत ज्यादा	बहुत कम
6.	जीवनकाल	बहुत ज्यादा	कम होता है
7.	गर्मी का प्रभाव	ज्यादा	ठीक–ठाक
8.	रोशनी का प्रभाव	ज्यादा	कम या सामान्य
9.	अम्ल रोधक	ज्यादा	कम
10.	रासायनिक क्रिया से रंग हटाना (ब्लीचिंग)	ज्यादा	कम या सामान्य
11.	शुद्धता	ज्यादा	बदलती रहती है
12	अशुद्धता	ज्ञात की जा सकती है	आसानी से ज्ञात नहीं की जा सकती है
13.	पहचान	सरल	जटिल

राजस्थान में पाए जाने वाले रंग देने वाले पौधे

वानस्पतिक नाम	व्यापारिक नाम	उपयोगी भाग/अंग	प्राप्त रंग
अकेशिया निलोटिका	कीकर (बबूल)	फली, छाल	भूरा–काला
अकेशिया ल्यूकोसिफेला	सफेद कीकर	छाल तथा पत्ती	लाल छाल, पत्तियाँ काला
केसिया फिसटुला	अमलतास	छाल	लाल
केसिया ओरीकुलेटा	टेनरस केसिया	छाल	काला
ऐनोजीसस लैटीफोलिया	धवा	पत्ती व छाल	काला
टर्मिनेलिया अरजुना	अरजुन	पत्ती, छाल व फल	
टर्मिनेलिया एलेटा		छाल	काला
टर्मिनेलिया बेलारिका	बहेरा	फल व छाल	भूरा काला
जिंजीफस जाइलोफाइरस		छाल व फल	
पुनिका गैनेटम	अनार	फल के छिलके व जड़	लाल
ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	ढाक/पलाश	फूल	पीला
फाइलेन्थस इम्लिका	आंवला	फल	भूरा
मेलोटस फिलीपाइनेनसिस	कमला (सिंदूरी)	फल	गहरा नारंगी
निकटेन्थस अरबोर–टरिसटसि	हरसिंगार	करौला टयूव	नारंगी
लासोनिया इनरमिस	मेंहदी	पत्ती	भूरा लाल
सोमइडा फेवरीफूजा	इडियन रेड वुड	छाल	

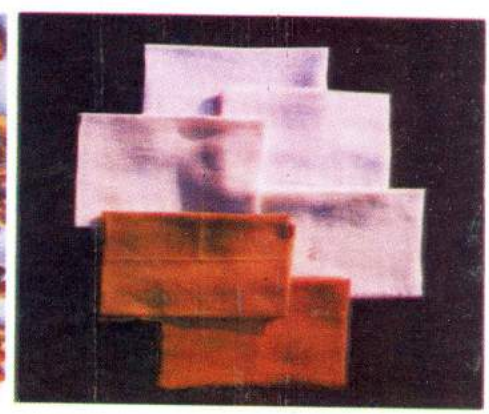

ब्यूटिया मोनोस्पर्मा : पलास का 1. पौधा, 2. फूल तथा 3. पलास के रंग से डाई किये सूती वस्त्र

रंगाई की विधियां–

सूत एवं रंग के प्रकार के अनुसार रंगाई मुख्य रूप से चार प्रकार से की जा सकती है–

1. सीधे (Substantive) रंगाई– इस विधि में सूत को सीधे रंग के घोल में भिगोया जाता है। उदाहरण–ऊन एवं रेशम।

2. चमकदार (Mordant) रंगाई– इस विधि में कपड़े को पहले मॉरडॉन्ट् में भिगोया जाता है, फिर कपड़े को रंग में भिगोया जाता है। ये पदार्थ अपने आप कपड़े को रंगने में असमर्थ होते हैं लेकिन रंगाई में बांधने वाली सामग्री का काम करते हैं। मॉरडॉन्ट् दो प्रकार के होते हैं–

(क) रासायनिक मॉरडॉन्ट्– फिटकरी, सिरका, तूतिया, बोरिक एसिड, साइट्रिक एसिड, टाइट्रिक एसिड, ऐसिटिक ऐसिड, लाल थोथा, कास्टिक सोडा आदि।

(ख) प्राकृतिक मॉरडॉन्ट– खैर की छाल, अमरूद की पत्ती, इमली का सत, हरी चाय की पती का उबला सत आदि।

इसमें रंगाई करने के मॉरडॉन्ट (पोटेशियम एल्यूमीनियम सल्फेट) को टाइट्रिक अम्ल के साथ मिलाकर किसी बर्तन में गरम किया जाता है एवं बीच–बीच में तब तक हिलाया जाता है जब तक कि मॉरडॉन्ट पूरी तरह से घुल न जाए। अब इसमें ऊन डालकर धीमी आंच पर तकरीबन आधा घंटा रखा जाता है। इसके बाद इसको ठंडा किया जाता है। अब ऊन को निकालकर रंग के घोल में सीधे भिगोया जाता है अथवा सुखा कर रख दिया जाता है।

1. **इंग्रेन रंगाई–** ये रंग तंतुओं के ऊपर खुद ही उत्पादित किए जाते है। कपड़े को पैराथ्याल (क्षारीय) में भिगोने के पश्चात सुखा कर और पुनः पैरानाइट्रोएनिलीन में डुबोने से तंतुओं पर पक्का रंग चढ़ता है।

2. **वेट रंगाई–** ये पानी में अघुलनशील होते हैं, परन्तु क्षारीय माध्यम (Reducing Agent) के सम्पर्क में आ जाने पर रंगहीन हो जाते है। कपडे को रंगते समय इस रंगहीन वेट रंग का घोल तैयार कर उसमें कपड़े को डुबाकर हवा में सुखाया जाता है। हवा के संपर्क में आने पर रंग ऑक्सीकृत होकर कपड़े को रंग देता है।

भारत में पाए जाने वाले रंग देने वाले पौधे			
वानस्पतिक नाम	व्यापारिक नाम	उपयोगी भाग/अंग	प्राप्त रंग
अकेशिया केटेचू	खैर (कत्था)	छाल/हाडबुड	लाल व भूरा
एल्यूराइट्स मोल्यूकेना	जंगली अखरोट	जड़, फल	जड–भूरा, फल–काला
बिक्सा ओरिलाना	अनेटो	बीज	नारंगी तथा लाल
बरबेरिस ऐरिस्टेटा	रसवत	जड़	पीला
ब्यूटिया सुपर्बा	पलाश लता	जड़	लाल
सीरिओपस केन्डोलियाना	गोरन	ढाल	लाल व भूरा
क्रोकस सेटाइबस	केसर	फूल	पीला
करक्यूमा लौंगा	हल्दी	कंद	पीला
डायोसपाइरोस मालाबेरिका	तेंदू	फल	काला
इंडिगोफेरा टिंक्टोरिया	नील	पत्ती व फूल	नीला
मानिकारा लिटोरैलिस	—	छाल	लाल
टेरोकार्पस मार्सुपियम	बीजासाल	छाल	लाल
टेरोकार्पस सेन्टेलिनस	लाल चन्दन	लकड़ी	गहरा लाल
सेन्टेलम् एलबम्	चन्दन	लकड़ी	पीला
रूबिया कोर्डिफोलिया	मंजीठी	जड़	लाल
सार्कोक्लेमिस पलचेरिमा	दोगल	पत्ती व टहनी	भूरा
सेमीकार्पस एनाकार्डियम	भिलवा	फल	काला
साइज़ियम क्यूमनी	जामुन	छाल	लाल
टर्मिनेलिया चैबुला	हर्रा	फल	भूरा
टर्मिनेलिया कट्पा	बादाम	छाल, पत्ती	काला
टूना सिलियेटा	टून	फूल	लाल
वेन्टीलागो डेन्टीकुलेटा	पिट्टी	छाल व जड़	लाल,बैंगनी व भूरा
जिंजीफस मैरिटियाना	बेर	पत्ती व छाल	गुलाबी–लाल

भारत में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्राकृतिक रंजक पर किये गये अनुसंधान कार्य :

दयाल और डोभाल द्वारा 2001 में जल माध्यम का उपयोग करके युकेलिप्टस संकर की पत्तियों एकेशिया टोरा एवं गीबीया ओपटिवा के बीज के रंजक पर शोध पत्र प्रकाशित किया। उन्होंने बताया ये रंजक रेशम, कपास और जूट वस्त्रों पर तेज रंग प्रदान करते हैं। प्राकृतिक रंजक हिना, हरदा एवं बबूल को वस्त्रों की व्यवहारिक रंगाई पर वेनकर द्वारा 2002 में शोध पत्र प्रकाशित किया गया। कपूर और पुप्पा नगन द्वारा 2002 प्राकृतिक रंजक से हर्बल गुलाल तैयार करने की प्रौद्योगिकी विकसित की। शुष्क क्षेत्र की डाई उपज पौधों की जानकारी माहेश्वरी या अमित कोटया और अश्विनी कुमार द्वारा 2002 के शोध पत्रों में दी गई। पश्चिम बंगाल की पारम्परिक वनस्पति रंगों को घोष द्वारा 2003 में प्रकाशित किया गया। युकेलिप्टस छाल से डाई के निष्कर्षण को सचिन और कपूर द्वारा 2004 में प्रकाशित किया गया। आर. सिंह, ए. जैन, एस. पनवन, डी गुप्ता और एस. के. खरे ने 2005 में अकेशिया केटेचू, रूबिया कोर्डिफोलिया और रूमेक्श मेरीटीमस के प्राकृतिक डाई पाउडर में एंटीमाइकोवियल एक्टीविटी का अध्ययन किया। पूर्वोत्तर राज्यों में प्राकृतिक रंजक के ज्ञान को शुक्ला, 1992; महंत और तिवारी, 2005 एवं रागमी यादव, 2005 द्वारा प्रकाशित किया गया। बिक्सा ओरिलाना ब्यूटिया मोनोस्पार्मा, बुडफोरडिया फुटीकोसा, लासोनिया इनरमिस, इकलपिट अल्बा और निकटेन्थस अरबोर–टरिसटसि पर शोध पत्र आभा रानी और बिसेन द्वारा 2000 में शुक्ला और बिसेन द्वारा 2005 में शोध पत्र प्रकाशित किये गये। एम.ए. खान, पी.के. श्रीवास्तव और एफ मोहम्मद ने 2006 में कच्चे रतनजोत एवं मदार से निकाले रंजक उत्पादों का अध्ययन किया। प्राकृतिक रंजक गुलमोहर के फूलों से निकाले रंजक का परीक्षण कपास और रेशम पर ए. पुरोहित, एस. मतिक, ए. नायक, बीनंदा और एस. साहू द्वारा भारत में प्राकृतिक रंजक और डाई उपज पौधों की स्थिति की समीक्षा शिव द्वारा 2007 में की गई। उन्होंने बताया कि डाई उपज पौधों या उनके उत्पादों के डेटाबेस की जानकारी उपलब्ध नहीं है। सचिन और कपूर द्वारा 2007 में प्राकृतिक रंजक हल्दी की निकासी और रंगाई के अनुकूलन के बारे में शोध पत्र प्रकाशित किया। गौर ने 2008 में उत्तराखण्ड हिमालय के परम्परागत 106 डाई उपज पौधों के बारे में शोध पत्र प्रकाशित किया। वी.पी. कपूर, के. कटियार, पी. पुष्पा नगन, समीक्षा शिव द्वारा 2007 में की गई। उन्होंने बताया कि डाई उपज पौधों या उनके उत्पादों के डेटाबेस की जानकारी उपलब्ध नहीं है। सचिन और कपूर द्वारा 2007 में प्राकृतिक रंजक हल्दी की निकासी और रंगाई के अनुकूलन के बारे में शोध पत्र प्रकाशित किया।

बिक्सा ओरीलाना का 1. पौधा तथा 2. कैप्सूल

गौर ने 2008 में उत्तराखण्ड हिमालय के परंपरागत 106 डाई उपज पौधें के बारे में शोध पत्र प्रकाशित किया। वी. पी. कपूर, के. कटियार, पी. पुष्पा नगन और एन. सिंह द्वारा 2008 में सुरक्षित, गैर विषैले और पर्यावरण के अनुकूल प्राकृतिक सिंदूर उत्पाद की तकनीक विकसित की। ए.के. सामंत, पी. अग्रवाल, एस. दत्ता और ए. कोनार द्वारा 2008 में यू वी बिजबल स्पेक्ट्रा, डी एस सर और एफ टी आर द्वारा लाल चंदन की लकड़ी, कटहल, पतंग, गुलमोहर और बबूल से निकाले रंजक पर शोध पत्र प्रकाशित किया। सामंत और अग्रवाल द्वारा 2009 में वस्त्रों पर प्राकृतिक रंजक के उपयोग की समीक्षा पर एक शोध पत्र प्रकाशित किया। रतनजोत, आरनिबया नोबेलिसद्ध की पहचान और विशेषताओं पर शोध पत्र, अरोड़ा, एम. गुलराजनी और डी गुप्ता द्वारा 2009 में प्रकाशित किया गया।

– खेद प्रकाश –

डॉ. आभारानी, वैज्ञानिक– डी, शु.व.अ. संस्थान, जोधपुर का लेख 'छत्तीसगढ़ राज्य में वन्य बेल की उपलब्धता, फलन एवं प्रसंस्करण' तरुचिन्तन के गतांक में त्रुटिवश डॉ. संगीता सिंह के नाम से छप गया था। उसी अंक में लेख 'मोरों की स्वर्ग स्थली : आफरी परिसर' में श्री राजेश कुमार गुप्ता का नाम द्वितीय लेखक के रुप में छप गया जबकि वे प्रथम लेखक थे। इन त्रुटियों के लिए अत्यन्त खेद है।

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

श्री तिलक राज कक्कड़
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

फोटो फीचर

रात्रि दृश्य

वन अनुसंधान संस्थान
फोटो फीचर

वन अनुसन्धान संस्थान, संग्रहालय

वन अनुसंधान संस्थान
फोटो फीचर

शताब्दी वन विज्ञान केन्द्र

वन अनुसंधान संस्थान
फोटो फीचर

दीमक की अधिकता एवं वितरण को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

श्री सचिन कुमार एवं श्री विवेक त्यागी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

दीमक एक सामाजिक कीट है जिसको कभी–कभी सफेद चींटी के नाम से पुकारा जाता है। किसी भी क्षेत्र में दीमक की उपस्थिति अनेक कारकों पर निर्भर करती है जैसे–वर्षा, भूमि व वनस्पति के प्रकार। पर्यावरण व पानी की उपलब्धता भी महत्वपूर्ण भाग है। दैनिक व मौसमी परिवर्तन भी दीमक के विस्तार को प्रभावित करते हैं। अधोलिखित कारकों के प्रभाव के कारण दीमकों की प्रजातियाँ अलग–अलग समूहों में बंट जाती हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

वर्षा का प्रभाव

1. कुछ प्रजातियाँ केवल भुवक पर्यावरण तक ही सीमित होती है जबकि कुछ विस्तीर्ण क्षमता वाली होती है जो सभी प्रकार के पर्यावरण में पायी जाती है।

2. एनाकेन्थोटर्मिस मेकरोसिफेलस, सैमोटर्मिस राजस्थानिकस, माइक्रोसीरोटर्मिस राजा, माइक्रोसीरोटर्मिस लक्ष्मी व एन्गुलिटर्मिस जोधपुरेनसिस केवल उन स्थानों पर पायी जाती है जहाँ वर्षा सदैव 300 मिमी. तक होती है।

3. गण ओडोन्टोटर्मिस की कुछ प्रजातियाँ जैसे–ओडोन्टोटर्मिस गाइरिएन्सिस, ओ. डिस्टेन्स, ओ. इन्डिकस, ओ. लोकानन्दी, ओ. केटीगुलोइडिस, ओ. माइक्रोडेन्टेटस व गण माइक्रोटर्मिस की कुछ जातियाँ जैसे माइक्रोटर्मिस इन्सरटोइड्स, माइक्रो. ओबेसाई, व माइक्रो. यूनीकोलर मुख्यतः नम स्थानों से प्राप्त की गई है।

4. गण ट्राइनरविटर्मिस भुवक पर्यावरण में नहीं पायी जाती है बल्कि मुख्यतः समभुवक व नम खुले स्थानों को पसन्द करती है।

5. यद्यपि अनेक प्रजातियाँ ऐसी है जो भुवक से लेकर नम स्थानों तक लिपिबद्ध की गई हैं। गण एरीमोटर्मिस, स्पीकुलीटर्मिस माइक्रोटर्मिस व ओडेन्टोटर्मिस की कुछ प्रजातियों में अनेक प्रकार के पर्यावरण में रहने की क्षमता पायी जाती है।

वनस्पति का प्रभाव

1. एनाकेन्थोटर्मिस मेकरोसिफेलस, सैमोटर्मिस राजस्थानिकस व माइक्रोसीरोटर्मिस कैमरोनाई रेतीली स्थानों पर उगने वाली वनस्पति से लिपिबद्ध की गयी है।

2. गण स्पीकुलीटर्मिस, माइक्रोसीरोटर्मिस, एन्गुलीटर्मिस व माइक्रोटर्मिस की कुछ प्रजातियाँ उन शाकों को पसन्द करती है जो खुले स्थानों पर पायी जाती है।

3. सिनहेमीटर्मिस क्वाड्रीसेप्स व ओडेन्टोटर्मिस इन्डीकस घनें जंगलों को पसन्द करती है।

4. ट्राईनरविटर्मिस बाइफोरमिस कटीली झाड़ियों व भुवक वनस्पतियों से लिपिबद्ध की गई है।

5. अनेक जातियाँ बहुप्रकार की वनस्पतियों से लिपिबद्ध की गई है गण माइक्रोटर्मिस व एरीमोटर्मिस की कुछ प्रजातियाँ फसलों को नष्ट करने वाले मुख्य कीटों में से है। कुछ प्रजातियाँ (जैसे कोपटोटर्मिस हाइमाई, माइक्रोसीरोटर्मिस बीसोनाई व अनेक प्रजातियाँ गण ओडेन्टोटर्मिस की) बगीचों में और वन पौधशालाओं में पाई जाती है।

मृदा का प्रभाव

1. अधिकतर दीमकें भूमिगत (वे दीमकें जो भूमि के अन्दर रहकर अपने भोजन तक भूमि के ऊपर से छुपे हुए मार्ग द्वारा पहुँचती हैं) हैं, और अपने क्रिया कलाप भूमि के अन्दर ही करती हैं। मृदा व वनस्पति के प्रकार एक साथ मिलकर दीमक के वितरण व अधिकता को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं।

2. रेगिस्तानी दीमक सैमोटर्मिस राजस्थानिकस केवल उन स्थानों से लिपिबद्ध की गई है जो रेतीले व अनउपजाऊ हैं।

3. एनाकेन्थोटर्मिस मैकरोसिफेलस रेतीले उपजाऊ व अनउपजाऊ दोनों प्रकार की मृदा से लिपिबद्ध की गई हैं।

4. यद्यपि गण ओडेन्टोटर्मिस की कुछ प्रजातियाँ जैसे ओडेन्टोटर्मिस ब्रुनियस, ओ. गुरदासपुरेन्सिस, ओ. लेटीगुलेइडिस, ओ. लोकानन्दी, ओ. रेडीमनी आदि एलुवियल मृदा से लिपिबद्ध की गई हैं।

5. कुछ प्रजातियाँ जैसे हैटरोटर्मिस इन्डीकोला, कोप्टोटर्मिस हाईमाई, स्पीकुलीटर्मिस साइक्लोप्स, माइक्रोसीरोटर्मिस बीसोनाई, ओडोन्टोटर्मिस डिस्टेन्स, ओ. गाइरीमेन्सिस, ओ. होराई, माइक्रोटर्मिस माइक्रोफैंगस माइक्रोटर्मिस ओबेसाई, माइक्रोटर्मिस यूनीकोलर व ट्राईनरविटर्मिस बाईफोरमिस मुख्यतः काली मृदा से लिपिबद्ध की गई हैं।

6. जबकि गण ओडेन्टोटर्मिस की कुछ प्रजातियाँ बाम्बी का निर्माण करती है। बाम्बी बनाने वाली अधिकतर प्रजातियाँ नम लकड़ीमय व भारी मृदा को रेतीली व भुवक मृदा की तुलना में अधिक पसन्द करती है।

7. दीमक के जीवन में मृदा की महत्ता नमी के लिए ही नहीं बल्कि अन्य प्रकार से भी महत्वपूर्ण है। जैसे अनेक प्रकार की मृदा के कण बाम्बी बनाने के निर्माण में, भूमिगत मार्ग में व आवासीय नालियों के निर्माण में आदि।

अन्य जीवजन्तुओं का प्रभाव

दीमक के वितरण व अधिकता को प्रभावित करने वाले जीव–जन्तु को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है –

(अ) परभक्षी व परपोषी

(ब) समानार्थी जीव

(स) टरमाइटोफिल्स

(अ) परभक्षी व परपोषी

1. कुछ परपोषी जैसे कवक (एस्कोमाइसिटीज, पाइरीनोमाइसिटिस, एन्टीलोपसिस गेयी व एन्टीलोपसिस गलिका), निमेटोड (गोलकृमि), कोलिमोपटेरा (ब्रेन्थिडी, केन्थीरिडी व सिलफीडी) लिपिबद्ध किये जा जुके हैं।

2. चीटियों की अनेक प्रजातियाँ दीमकों की परभक्षी समझी जाती है, जो दीमकों की जनसंख्या को मुख्य रूप से प्रभावित करती हैं।

3. कुछ कवक व जीवाणु दीमकों में बीमारी पैदा करते हैं। कवक तन्तु जीवित दीमक के अन्दर घुसकर उनकी मृत्यु का कारण बनते हैं जैसे एन्टीलोपसिस दीमक का परपोषी है।

(ब) समानार्थी जीव

मिलनी (1961) के अनुसार वे सब जीव जन्तु उन सभी साधनों का उपयोग करते है जिनका दीमक उपभोग करती है जैसे आवासीय स्थान व भोजन। अतः जनसंख्या की तुलना में प्रतियोगिता की भावना बढ़ जाती है। जैसे दीमकों की ही दूसरी जातियाँ खरगोश व कंगारू आदि।

(स) टरमाइटोफिल्स

बहुत से जीवजन्तु अधिकतर कीट दीमकों की बाम्बी में रहते व बच्चे देते हैं ऐसे जन्तुओं को टरमाइटोफिल्स कहते है। गोडलैण्ड (1965) ने छिपकली व रेटल सॉप को दीमक की बाम्बी से लिपिबद्ध किया। बंदरों, तोता व कौओं को आसानी से दीमकों की बाम्बी में छेद करके उन्हें अपना भोजन बनाते हुये देखा जा सकता है। इस प्रकार वातावरणीय कारकों के साथ–साथ जीवजन्तु भी दीमकों के अधिकता व वितरण को प्रभावित करते हैं।

खड़ा हिमालय बता रहा है

खड़ा हिमालय बता रहा है
डरो न आंधी पानी में।
खड़े रहो तुम अविचल होकर
सब संकट तूफानी में।

डिगो ना अपने प्रण से, तो तुम
सब कुछ पा सकते हो प्यारे,
तुम भी ऊंचे उठ सकते हो
छू सकते हो नभ के तारे।

अचल रहा जो अपने पथ पर
लाख मुसीबत आने में,
मिली सफलता जग में उस को
जीने में मर जाने में।

राष्ट्रकवि पंडित सोहन लाल द्विवेदी

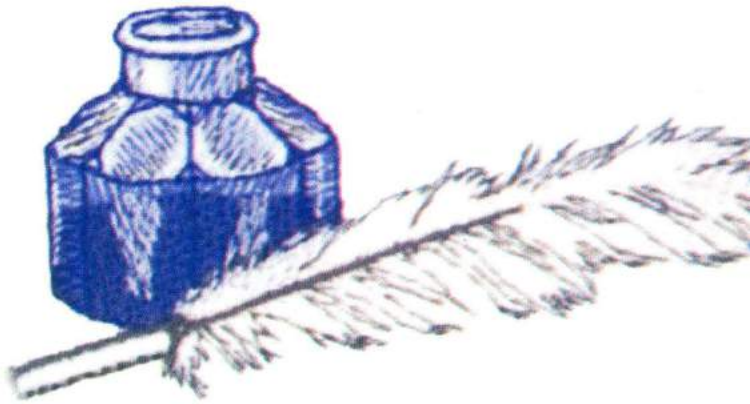

लालित्य

जग जांचिअ कोउ न जांचिअ जो जिय जांचिअ जानकि जानहि रे,
जेहि जांचत जाचकता जरि जाति जेहि जारत जोर जहानहि रे।

संवेदना

डॉ. रवीन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

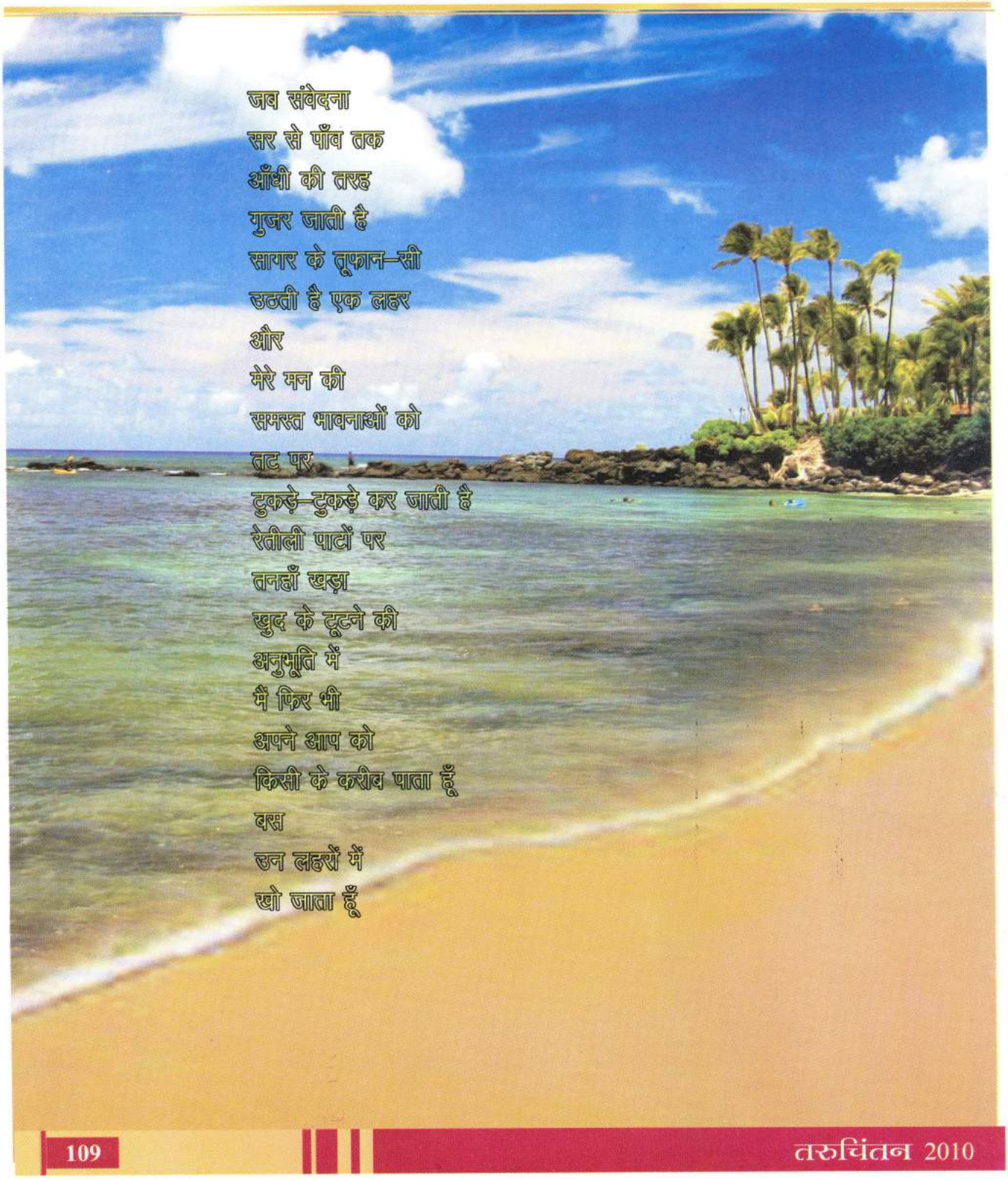

तनहाई

डॉ. रवीन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

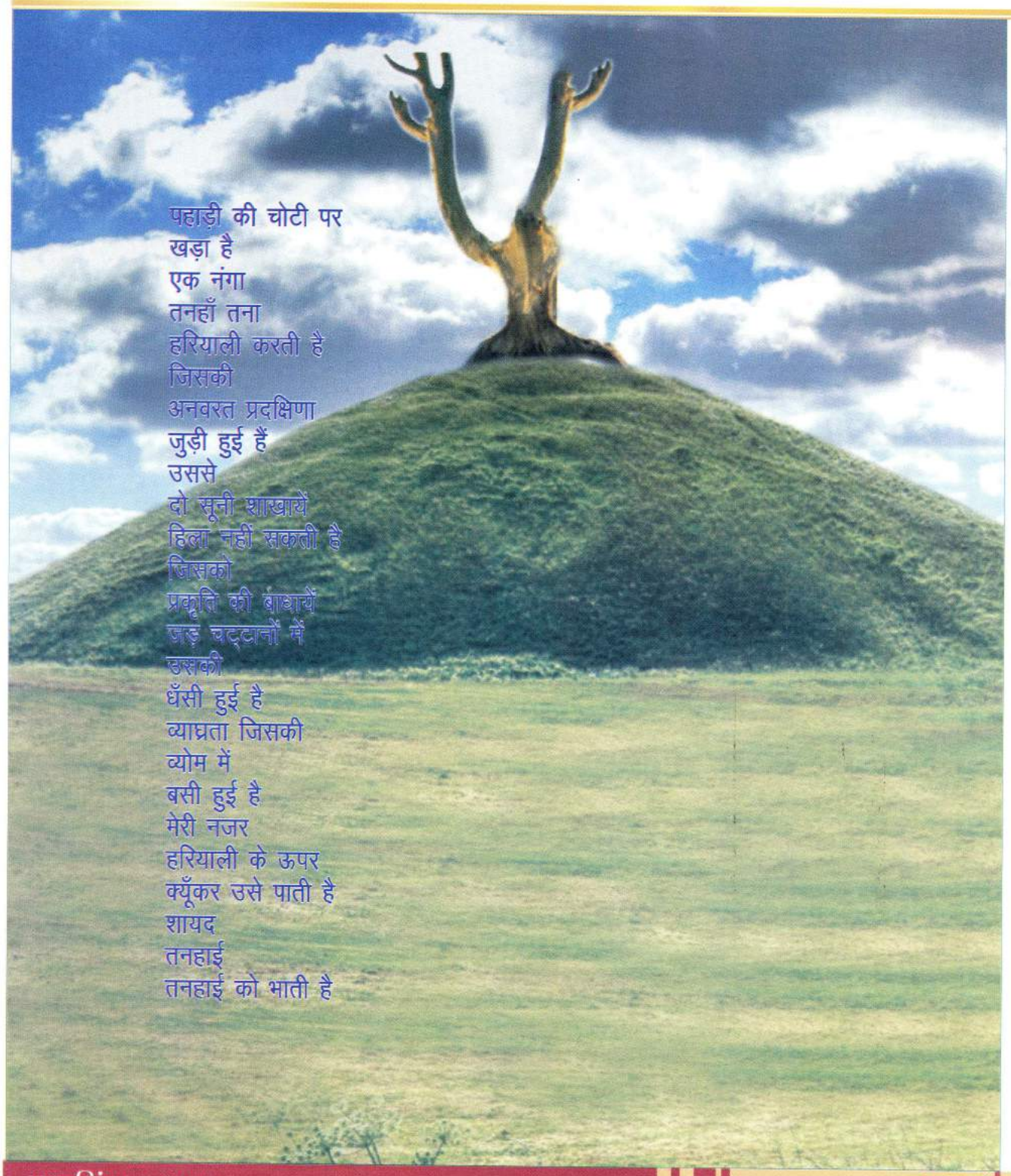

पहाड़ी की चोटी पर
खड़ा है
एक नंगा
तनहाँ तना
हरियाली करती है
जिसकी
अनवरत प्रदक्षिणा
जुड़ी हुई हैं
उससे
दो सूनी शाखायें
हिला नहीं सकती है
जिसको
प्रकृति की बाधायें
जड़ चट्टानों में
उसकी
धँसी हुई है
व्याघ्रता जिसकी
व्योम में
बसी हुई है
मेरी नजर
हरियाली के ऊपर
क्यूँकर उसे पाती है
शायद
तनहाई
तनहाई को भाती है

पर्यावरण ही जीवन

श्री छत्रपाल सिंह सैनी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

अपनी हरी भरी धरती का हरा भरा आंचल रहने दो।
पर्वत को पर्वत रहने दो, जंगल को जंगल रहने दो।

मत यह पर्यावरण बिगाड़ो मत अपना आचरण बिगाड़ो।
चलने दो अपने नियमों से, मत इसका व्याकरण बिगाड़ो।
इसका स्वर लय छन्द न छीनों, रुप रंग रस गंध न छीनो।
इतनी कृपा करो, छेड़ो मत, तुम इसको सकुशल रहने दो।
पर्वत को.....

यह भी कैसी जीवन शैली, तुमने कर दी गंगा मैली।
कैसे अमृत की नदियों में, ऐसी लहर जहर की फैली।
यों ही रहा स्वार्थ हठधर्मी, होती रही यों ही बेशर्मी।
कैसे धरम करम निबहेगा, कुछ तो गंगा जल रहने दो।
पर्वत को .....

सागर से लेकर जल खारा, बरसाता है अमृत धारा।
घूम–घूम कर, झूम–झूम कर, कजरारा बादल मतवाला।
जो सावन को सावन कर दे, तन–मन शीतल पावन कर दे।
ऊँचे खड़े तने पेड़ों पर, झुके घने बादल रहने दो।
पर्वत को .....

सुबह–शाम, दिन–रात न हो तो, शीत ग्रीष्म बरसात न हो तो।
कैसे यह जीवन महकेगा, हममें–तुममें बात न हो तो।
ठीक न ये कट–कट कर रहना, अलग–अलग बंट–बंट कर रहना।
हो ऐसा परिवेश कि मरूथल, को भी मत मरूथल रहने दो।
पर्वत को .....

जरा देखो अपना आवासीय परिसर।
कभी था कितना निरुपम और सुन्दर।
इसकी सड़कों पर कुत्तों की गन्दगी।
आगंन में गायों का गोबर।
अपने इस एतिहासिक परिसर में कुछ तो स्वच्छ हवा बहने दो।
पर्वत को.....

अपनी हरी भरी धरती का हरा भरा आंचल रहने दो।
पर्वत को पर्वत रहने दो, जंगल को जंगल रहने दो।

वर्षा जल संरक्षण

कुमारी मोनिका त्यागी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वर्षा जल अमृत बनकर देता जीवन दान,
व्यर्थ एक बूंद न जाने पाये, हो अपना अभियान।

अब तक इसका अस्सी प्रतिशत नदियों में बह जाता,
वर्ष भर इंतजार करें पर कुछ प्रतिशत ही मिल पाता
अपने अनजानेपन से हम करते अपना नुकसान
व्यर्थ एक बूंद न जाने पाये, हो अपना अभियान।

आओ मेघों की बूंदों को, संग्रह करने कसें कमर,
वृक्ष–वनस्पति बाँधों द्वारा बहने ना दें किसी डगर,
जगह–जगह अवरोध बना, नव कर दें अनुसंधान
व्यर्थ एक बूंद न जाने पाये, हो अपना अभियान।

तालाबों पोखरों के द्वारा, पृथ्वी में समायें जल,
बढ़ेगा भू–जी स्तर ऊपर, बारह मास उगाये फल
होगी दूर समस्या जल की, श्रम की शक्ति महान
व्यर्थ एक बूंद न जाने पाये, हो अपना अभियान।

फीकी पै नीकी लगै, कहिए समय विचारि,
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि।

–वृन्द

नहीं मांगते भोजन पानी
न ही अपनी निगरानी

इन्हें काट के मानव जाति
फिर भी करते मनमानी

लेकिन अति सदा घातक है
एहसास हुआ मानव को

तरू दिलाते तुम्हें भरोसा
भूतकाल में हुई जो भूलें
उन्हें सुधारने का है मौका।

एक गाँव

प्रशांत शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

एक समय की बात है। एक साधु प्रत्येक गाँव में जाता और भिक्षा मांगता, परंतु एक दिन साधु एक ऐसे गाँव में पहुँचा, जिसका प्रत्येक परिवार, स्वच्छ विचारों व्यवहार कुशलता एवं पर्यावरण प्रेम के लिए जाना जाता था, पेड़ पौधों से हरा भरा होने के कारण यह गाँव ऐसा प्रतीत होता था मानो बंजर धरती पर एक हरा भरा गुलदस्ता रखा हो, ऐसा वातावरण देख बाबा सहसा ही उस गाँव की ओर आकर्षित हुआ, गाँव वालों ने अपने आचरण के अनुसार बाबा को सम्मान पूर्वक बैठाया, भोजन कराया एवं भिक्षा भी दी। बाबा बहुत प्रसन्न हुए, परंतु उस समय गाँव वालों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होनें अपने लिए बाबा के वह शब्द सुने ''तुम्हारे गाँव में कोई प्राकृतिक आपदा आये और तुम सब उस आपदा के कारण एक दूसरे से बिछड़ कर दूर–दूर गाँव में चले जाओ'' उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि जो व्यवहार उन्होंने बाबा के साथ किया उसके लिए बाबा ने उन्हें वरदान देना चाहिए या अभिशाप! खैर कुछ समय पश्चात् बाबा के अभिशाप में छुपा हुआ वरदान सच हुआ।

कुछ समय पश्चात् बाबा पुनः एक के बाद एक गाँव में भिक्षा मांगने गये बाबा यह देखकर प्रसन्न हुए कि जो गाँव पहले हरियाली, पेड़–पौधों और व्यवहार रहित थे। आज मनोहारी एवं परिपूर्ण है। अभिशप्त गाँव वालों ने अपने आचरण के अनुकूल वैसा ही स्वरूप प्रदान किया जैसा उनका हरा–भरा गाँव था। अब बंजर जमीन पर एक हरा–भरा गुलदस्ता नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर भारत का भूखण्ड एक हरा–भरा गुलदस्ता दिख रहा था ऐसा देख शापित लोगों की समझ में बाबा के अभिशाप में छुपा वरदान समझ में आ गया।

पापा की बेटी

श्रीमती गीता वोहरा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

बचपन की धूप छाँव की
अनोखी यादों को याद करती
उनकी लाडली बेटी हूँ मैं
उनके हर कथन को
अपने में समाहित करती
उनकी आज्ञाकारी बेटी हूँ मैं
सही को सही, गलत को गलत
उनकी उनसे ही पहचान कराती
उनकी निर्भीक बेटी हूँ मैं
उनके आदर्शों, उनके दिखाए पथ पर
उनके सपनों को पूरा करती
उनकी दुलारी बेटी हूँ मैं
जीवन के इस कठिन संघर्ष पथ पर
निर्बाध गति से चलती जाती
उनकी हर एक इच्छा को एक वचन समझ
उसे निभाती बेटी हूँ मैं
पिता पुत्री के इस
अनोखे रिश्ते पर
गर्व करती बेटी हूँ मैं
जीवन में हर पुत्री को
ऐसा पिता मिले
इसी कामना से
उनको श्रद्धाजंलि अर्पित करती
उनकी गर्वीली बेटी हूँ मैं
संसार में यह खूबसूरत रिश्ता ऐसे ही फूले फले
इसकी कामना करती
उनकी प्यारी बेटी हूँ मैं

मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा जीवन में किसी न किसी रिश्ते की डोर में बँधा है। हर रिश्ता, चाहे वह माता पिता का हो या भाई–बहन या कोई और अपने आप में अनोखा होता है। ऐसा ही एक रिश्ता पिता तथा पुत्री का होता है। इसी रिश्ते को आलोकित करती ''पापा की बेटी'' नामक शीर्षक से यह मेरी स्वरचित कविता मेरे स्वर्गीय पिता को समर्पित है।

प्यासे व्यापारी

श्री एस.एल. मीणा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

एक तरफ बर्बाद वन, एक तरफ हो तुम ।
एक तरफ झुलसती दुनिया, एक तरफ हो तुम।
एक तरफ मर्यादा तोड़ती नदियां, एक तरफ हो तुम।
एक तरफ जलविहीन जनता, एक तरफ हो तुम।

अरे क्या कहने है तुम्हारे तुम ही वनों के व्यापारी
खेल भी तुम्हारा है, तुम्हीं हो विख्यात खिलाड़ी
बिछी हुई बिसात भी तुम्हारी, तुम्हारे ही पाँसे है
उपज वनों की बेच रहे हो, सभी कुछ लूट रहे हो।

गंगा–यमुना, नर्मदा–ताप्ती की छाती पर
तेजाब तुम उडेल रहे हो
कैसी तुम्हारी यह खुदगर्जी है
कब तक चलाओगे मन मर्जी

जिस पल डोलेगी धरती, अंगारे उगलेगा आसमां
सिर से रफू चक्कर हो जायेगी तुम्हारी ये मस्ती
कंक्रीट के वन, महल–चौबारे तब नहीं भायेंगे तुम्हें,
जब तरसेंगे तुम्हारे अपने बूंद–बूंद पानी को

बोलो व्यापारियों तब क्या होगा, कहाँ जाओगे आप
नगद सभी कुछ ले लिया है, उधार चुकाओगे कब
वर्तमान में मौज उडा लो वनों के हत्यारों
प्यासा तडपा लो नदियों, झीलों और तालाबों को

गंगा–यमुना, नर्मदा–ताप्ती को मैला कर डाला
लेकिन जब डोलेगी धरती, समुद्र मद–मस्त होगा
बोलो व्यापारियों तब कहां जाओगे आप
सुनो ! योजनाकारियों समय रहते सुधर जाओ

एक तरफ बर्बाद वन है एक तरफ हो तुम।
एक तरफ झुलसती दुनिया एक तरफ हो तुम।।

धरती माता कहती है

संजय पौनीकर
उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

वृक्ष लगाओ, वृक्ष बढ़ाओ, धरती माता कहती हैं।
हरियाली से मेरा श्रृंगार करो, धरती माता कहती हैं।

वनो को उजाड कर, तुमने कंक्रीट के जंगल बनाये हैं।
पंछियों के आशियाने, तुमने मिटाये हैं।
हरियाली और पंछियों की चहचहाट, इन जंगलों में तुमने खोई हैं।
कभी मैं थी हरी भरी, आज तुमने मुझे वीरान बनाया है।
वृक्ष लगाओ, वृक्ष बढ़ाओ, धरती माता कहती हैं।
हरियाली से मेरा श्रृंगार करो, धरती माता कहती हैं।

अगर वृक्ष बचेंगे तो मैं बचूंगी, तुम भी बचोगे, ये मैं तुम्हें समझाती हूँ।
मत काटो इन वृक्षों को ये तुम्हे फल–फूल और छाया ही नही,
प्राणवायु छोडकर तुम को जीवन देते हैं।
वृक्ष प्रकृति की अनुपम देन हैं, इसका तुम ना विनाश करो।
वृक्ष लगाओ, वृक्ष बढ़ाओ, धरती माता कहती हैं।
हरियाली से मेरा श्रृंगार करो, धरती माता कहती हैं।

आओ तुम सब मिलकर संकल्प ले लो आज।
अपने जन्मदिन और राष्ट्रीय पर्वों पर,
हजारों में वृक्ष लगाकर, बढ़ाकर
मुझे और खुद को सवारों आज।
वृक्ष लगाओ, वृक्ष बढ़ाओ, धरती माता कहती हैं।
हरियाली से मेरा श्रृंगार करो, धरती माता कहती हैं।

आतंकवाद

प्रताप सिंह बिष्ट
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

बस यही धारणा हम सब के अन्तःकरण में है,
कि आतंकवाद अपने अन्तिम चरण में है।

आतंकवादी लोगों को मारते और सताते हैं,
नेता उसे उनकी बौखलाहट व हताशा बताते हैं।

आतंकवादियों के विरूद्ध कड़ी कार्रवाई का आश्वासन देते हैं,
हर हृदयविदारक घटना के बाद वे लम्बे–चौड़े भाषण देते हैं।

आतंकवादी कुकर्मों से जो स्त्री, पुरूष, बच्चे मरते हैं,
उनके परिजनों को पचास हजार देने की बातें करते हैं।

और जो बर्बर, देशद्रोही और हत्यारे हैं, कैसी विडम्बना,
उनसे हम शान्ति और सद्भाव की वार्ता करते हैं।

आखिर कब तक बेगुनाह लोग व सुरक्षाकर्मी मरते रहेंगे,
और हम दिल्ली में आपातकालीन बैठकें करते रहेंगे।

शर्मनाक, हास्यास्पद और कायरतापूर्ण बात है,
निष्क्रिय बैठकर देखना कि हत्यारों के पीछे किसका हाथ है।

दृढ़ इच्छाशक्ति से दुश्मन को गलती का अहसास कराना होगा,
शहीदों, मासूमों, व सैनिकों के खून का कर्ज चुकाना होगा।

सबै दबावै निबल को, सबल पुरातन पाठ,
डारै जारि बहाय दै, अनिल–अनल–जल काठ।

–वृन्द

पेड़ है जीवन का आधार

श्री जय प्रकाश दाधीच
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

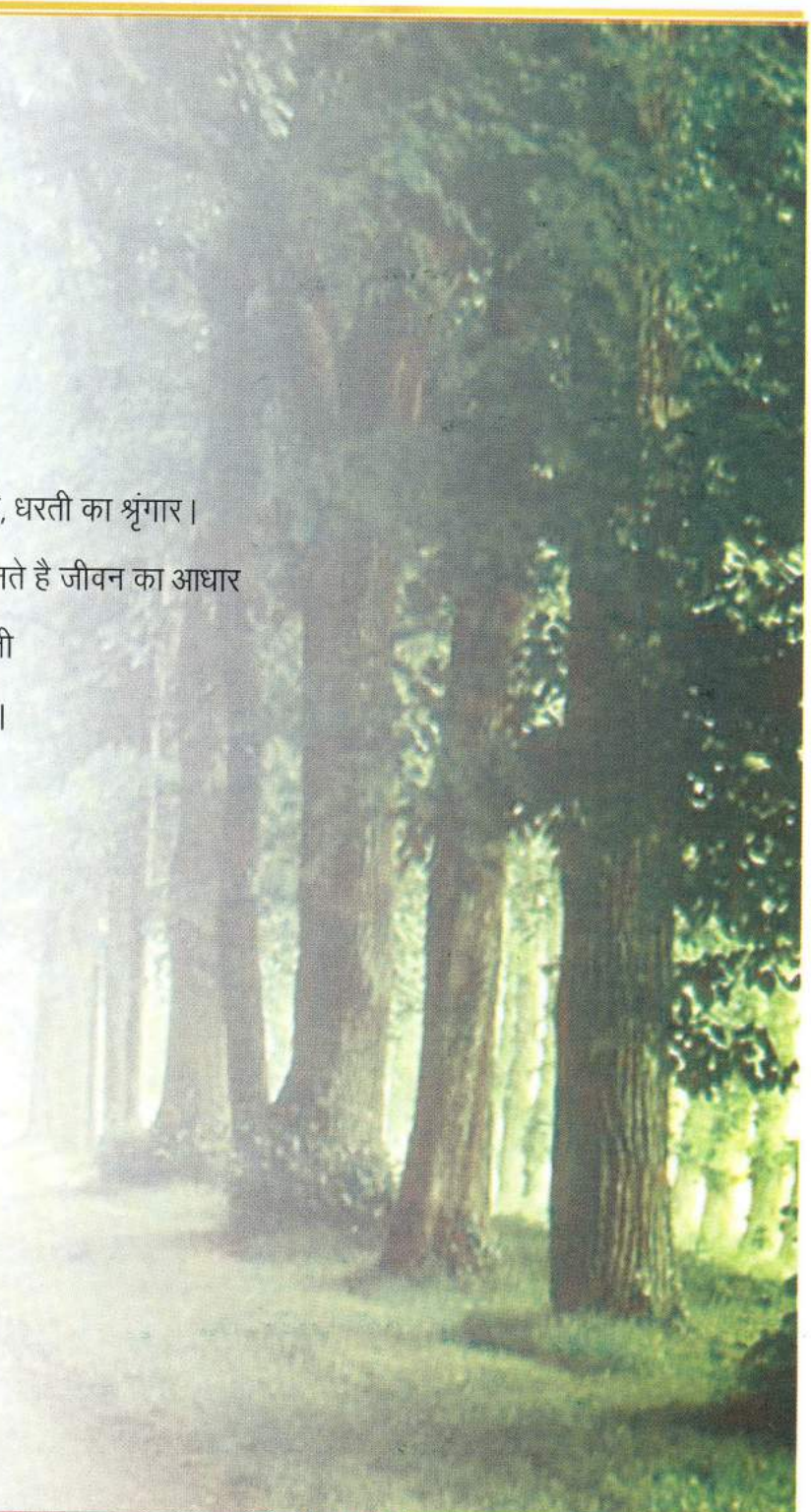

पेड़, फूल, फल और पत्तियां,
ये सब है जीवन का आधार,
पेड़ ही जीवन का स्वामी है
पेड़ ही इसका अमृत धार।
पेड़ ही हमको देता औषधि
और देता है फलाहार।।
वनस्पति और पेड़ों से होता है, धरती का श्रृंगार।
प्रकृति के उपकार अनेकों, बनते है जीवन का आधार
बिना इसके, धरती है कहलाती
मरूभूमि, परती भूमि, इत्यादि।
पेड़ हमें देते है, शुद्ध हवा
और निर्मल छाया
ये हर युग में बदल देते है
दधिचि समान काया
बच्चा एक, पर पेड़ लगाओ
प्यारे (मित्रों) लगभग चार
पेड़ लगाओ सभी जगह पर
यही है दाधीच का विचार।

हरा पेड़

फूल भी दूँगा तुम्हें, और मैं फल भी दूँगा
मैं हरा पेड़ हूँ, कटने से बचा लो मुझको
खुदा ने ये इनायत बक़्शी है मुझको
इन्सान को जीवन दूंगा मैं,
मैं हरा पेड़ हूँ, कटने से बचा लो मुझको।

तुम बिन मैं नहीं, मेरे बिन तुम नहीं,
फिर क्यूं ये दुश्मनी मुझसे,
साथ–साथ चलना है, जीवन की डगर में,
फिर ये दूरियाँ क्यूं मुझसे।
मैं हरा पेड़ हूँ, कटने से बचा लो मुझको।

तेरी सांसें भी मुझसे हैं, क्षुधा भी मुझसे,
धानी चूनर की लहर और खुशी भी मुझसे,
साथ है हर कदम हर पल का मुझसे,
फिर ये बेरूखियाँ क्यूं मुझसे।
हरा पेड़ हूँ, कटने से बचा लो मुझको।

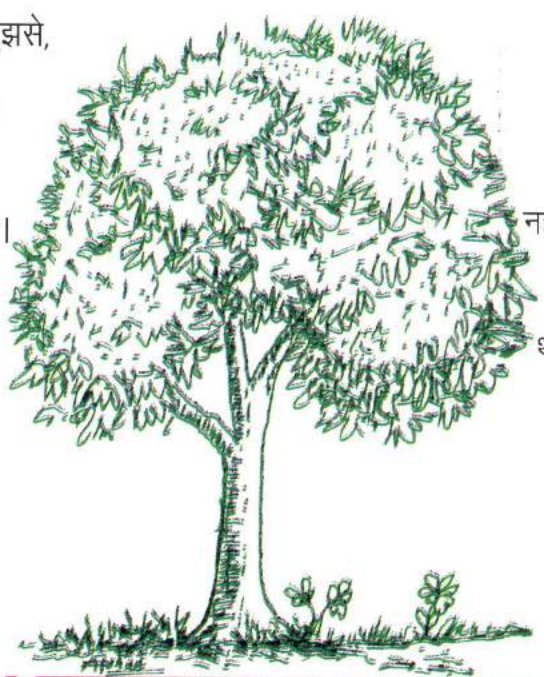

गीत

श्रीमती अफशां ज़ैदी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

न जाने कहाँ खो गया मेरा
पहले जैसा गाँव।

लोगों की बोली में छाये
चुप्पी और सन्नाटे,

दुखड़े नहीं किसी के कोई
अब मुस्काते–मुस्काते बाँटे,

भरे हुए से आज दिलों में
नफरत के सौ दाँव।

नहीं गूजते कोकिल के स्वर
कागा निशदिन बोले,

कोलाहल का दानव भोर से
रात गये तक डोले

सूखे सपने हो बैठी है
बरगद वाली छाँव

पगडंडी सुनसान पड़ी है
सड़कें हैं मुस्काती

नहीं गोरियों के मुखड़ों पर
वे मुस्कानें आती

थके हुए पंछी को मिलता
कहाँ अनूठा ठांव।

पश्चाताप

श्रीमती अर्चना जोशी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

कभी कभी जीवन में ऐसी घटनाएं घट जाती हैं जिन पर हमारा कोई बस नहीं चलता। जिनके घट जाने के बाद हम पछताने के सिवा कुछ नहीं कर पाते। ऐसी ही एक कहांनी या किस्सा है यह लगभग पचास वर्ष पुराना है यह बिल्कुल सच। लेकिन असली बात कहने से पहले इसकी पृष्ठभूमि में जाना आवश्यक होगा।

हम पाँच भाई बहनों में मैं सबसे बड़ा हूँ। मुझसे छोटे तीन भाई और सबसे छोटी बहन जो उस समय मात्र तीन वर्ष की थी। मैं बड़ी कठिन परिस्थितियों में पला, बढ़ा, दारिद्रय के चरम को छूता हुआ। कभी अधपेट सोया तो कभी फाका ही किया, चाहे रातों में मात्र पाँच रूपये प्रति माह के लिए दुकानों के बाहर चौकीदारी करनी पड़ी हो, गुरूद्वारों में रोटी खानी पड़ी हो। पर मेरी माँ जो निपट अनपढ़ थी लेकिन शिक्षा का महत्व समझती थी हर हाल में मुझे शिक्षित करना चाहती थी उसने मुझे शिक्षा का दामन नहीं छोड़ने दिया और मेरी पढ़ाई जारी रखी। खैर! इसी प्रकार धक्के–मुक्के खाते हुए मैं दसवीं कक्षा में पहुँच गया। साथ ही किसी भलेमानस की सलाह पर टाइप सीखना भी शुरू कर दिया। तभी किसी मित्र ने बताया कि कचहरी में लिपिक की आवश्यकता है और साथ ही आवेदन करने की सलाह भी दी। मैंने कहा, "अभी हाईस्कूल भी पास नहीं हूँ, यार"। उसने कहा, "तब तक परिणाम आ जाएगा, आवेदन कर तो सही"। उसके कहने पर आधे अधूरे मन से आवेदन कर दिया, सोचा बिना सिफारिश के कुछ होना सम्भव नहीं। वक्त जो भी रहा हो सिफारिश तो ऐतिहासिक सत्य है परन्तु आश्चर्य कि बिना किसी सिफारिश के मेरा चयन हो गया और हाईस्कूल भी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण कर लिया। घर में सबकी खुशी का ठिकाना न था, खासकर मेरी माँ का। उनके पुत्र ने उनका नाम पूरे गाँव भर में रोशन कर दिया था। मैं गाँव का पहला बच्चा था जिसने हाईस्कूल पास करने के साथ–साथ मात्र अठारह वर्ष की आयु में सरकारी नौकरी हासिल की थी। पिता बेहद सीधे–सादे थे वे भी मेरी इस उपलब्धि पर कम पुलकित न थे।

कचहरी की नौकरी मैं पा अवश्य गया था पर नौकरी करनी मुझे नहीं आती थी। मैं पहाड़ का बेहद सीधा सादा लड़का था, दुनियादारी और चालाकी से कोसों दूर–बिल्कुल भोला–भाला। कचहरी में पहले दिन मैं पूरी मेहनत और लग्न से काम सीखता रहा और बड़े बाबू जी के निर्देशों के अनुसार ही उत्साहपूर्वक काम करता रहा। शाम को जब बड़े बाबू से घर जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने लगभग ज़बरदस्ती कुछ नोट मेरी जेब में ठूँस दिए और बोले, 'ये तुम्हारे हैं।' मैं हैरान परेशान हो गया कि पहले ही दिन पैसे? सुना था तनख़्वाह पहली तारिख़ को मिलती है। मैंने बड़े बाबू से पूछा भी तो मुस्कराकर वे बोले "तुम्हारी मेहनत के हैं रख लो।" मैं अचरज में था परन्तु धीरे–धीरे इन रूपयों का रहस्य मुझे समझ में आने लगा। ये वे रूपये थे जिन्हें आजकल लोग कमीशन जैसे शब्द में लपेटकर लेते हैं। लेकिन मैंने कभी किसी से रूपये मांगे नहीं। जो बड़े बाबू दे देते मैं ले लेता। निर्धनता अपने आप में एक बड़ी विवशता होती हैं और आवश्यकताएं विवशता को बढ़ा देती हैं।

मुझे वेतन मिलने लगा और धीरे धीरे घर की आर्थिक स्थिति सुधरने लगी तो मैंने पहला काम यह किया कि अपने भाइयों को स्कूल में भर्ती कराने की सोची । मैंने सोचा जो अभाव मैंने झेले भाई बहनों को नहीं होने दूँगा। इन्हें खूब पढ़ाउंगा और किसी योग्य बनाऊगां। मुझसे छोटे भाई की स्कूल जाने की आयु निकल चुकी थी उसने कहा, "भैया, मैं दिल्ली जाकर अपना कुछ काम करना चाहता हूँ।" घर में सबकी सलाह पर हमने उसे दिल्ली भेज दिया जहाँ उसने ड्राइविंग सीखकर टैक्सी चलाना शुरू कर दिया। उससे छोटे दोनों को मैं स्कूल भर्ती कराने ले गया और क्रमशः पाँचवी व दूसरी कक्षा में भर्ती करा आया। तीसरे ही दिन मोहन (जो कि तीसरे नंबर का भाई था) की स्कूल में बच्चों के साथ मारपीट हो गई–कारण था बारह वर्ष के बालक का पाँचवी कक्षा के लिए अधिक लंबा होना, लिहाजा बच्चे "लंबू ढींग" कहकर चिढ़ाने लगे और इसी बात पर महाशय स्कूल न जाने पर अड़ गए। मुझे अपने सपने बिखरते से जान

पड़े। जबकि मेरे तीनों भाई मेरी बहुत इज्जत करते थे और मेरा कहा आँख मूंदकर मानते थे। लेकिन बहुत समझाने पर भी इस मामले में मेरी एक न चली और उसने स्कूल न जाना था न गया। हाँ, सबसे छोटा अवश्य स्कूल जाने लगा।

खैर! जीवन की गाड़ी ठीक ठाक चलने लगी। दो वर्ष बाद मात्र इक्कीसवें वर्ष में माता–पिता ने मेरा विवाह भी कर दिया। आर्थिक जिम्मेदारी के साथ–साथ पारिवारिक जिम्मेदारी भी मुझ पर आ गई। पत्नी ने सहर्ष मेरी जिम्मेदारियाँ संभाल ली। छोटी बहन को भी माँ पत्नी के संरक्षण में छोड़कर पिताजी के साथ गाँव चली गई। इधर मैं एक पुत्री का पिता भी बन गया। सब कुछ ठीक चल रहा था कि अचानक पिताजी का हृदयगति रूक जाने से गाँव में स्वर्गवास हो गया। मेरे लिए ये बहुत बड़ी क्षति थी। क्योंकि मैं घर में सबसे बडा था आर्थिक जिम्मेदारी का निर्वहन तो मैं कर ही रहा था अब समस्त बोझ मेरे कंधो पर आ गया। हम जैसे तैसे इस दुख से उबरने की कोशिश में लगे थे और अभी उबर भी न पाए थे कि ईश्वर को जैसे अभी और परीक्षा लेनी थी एक और वज्रपात हो गया। मुझसे छोटा भाई प्रेम, जो कि दिल्ली में मन लगाकर रोजी कमा रहा था और परिवार का एक सहारा बन सकता था, अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। मात्र बीस वर्षीय जवान बेटे की ऐसी हालत देख माँ तो दुःख से पागल हो उठी। हम सभी बेहद परेशान थे और हर संभव इलाज में जुट गए। झाड़ फूँक से लेकर डाक्टर–हकीम, तांत्रिक तक सब उपाय और प्रयास शून्य बनकर रह गए। ऐसे ही एक दिन एक भले मानस ने कहा, "बाबूजी, जहाँ आप इतना कर रहे हैं मेरी सलाह पर एक प्रयास और करके देख लें। रामपुर में एक मौलवी साहब हैं, जल अभिमंत्रित करके देते हैं, सुना है कि इस तरह के बीमार लोगों को वे ठीक कर देते हैं। आप एक बार जाकर देख लीजिए, ईश्वर ने चाहा तो आपका भाई अवश्य ठीक हो जाएगा।" उसने जिस विश्वास से यह बात कही और कुछ उदाहरण दिए। मुझे भी कुछ आस बँधी क्योंकि अन्य सभी उपाय करके हम हार चुके थे यहाँ तक कि बिजली के झटके भी कुछ न कर सके थे। मैं तुरंत ही उन मौलवी साहब के पास जाने को तैयार हो गया और अगली सुबह मैं रामपुर की बस में था।

कचहरी में मैं क्योंकि एस डी एम कार्यालय में नियुक्त था तो अक्सर बयान आदि लिखने का कार्य भी मुझे करना पड़ता था। तरह–तरह के अपराधियों और पुलिस वालों के वार्तालाप सुन–सुन कर मेरी प्रवृत्ति कुछ कुछ शक्की हो चली थी। उन बातों का मुझपर इतना असर होता था कि मैं स्वयं ही उन के बारे में विश्लेषण में लग जाता था कि वास्तव में यह अपराधी होगा या बेचारा यूँ ही फँस गया है। किसी पर सहज विश्वास नहीं कर पाता था। मिश्रित परिणामों की कल्पना करता हुआ और अपने खयालों में खोया हुआ मैं रामपुर बस अड्डे पर उतरा। बस से उतरते ही सामने एक होटल था मैं उसी तरफ चल पड़ा। बाहर ही एक व्यक्ति कुर्ता पजामा पहने हुए सर पर टोपी लगाए दिखाई दिया, जो शायद मुसलमान था और अभी अभी नमाज पढ़कर आया था। मैंने उसी से पूछ लिया "भाई मुझे मौलवी साहब से मिलना है कहाँ मिलेंगे ?" उसने तुरंत सलाम किया और कहा "हाँ हाँ मैं जानता हूँ मैं उसी तरफ जा रहा हूँ साथ ही चले चलते हैं, पर जरा पहले थोड़ी चाय पी लें।" यह बात सुनकर मेरे शक्की दिमाग ने सोचा, "बड़ा चालू है मुझसे फोकट की चाय पीकर ही मेरी मदद करने को तैयार है।" वैसे भी सर्दी का मौसम था और मैं भी तड़के ही घर से निकला था, उसपर मैं चाय का बेहद शौकीन भी हूँ इसलिए चाय की तलब मुझे भी हो रही थी, थकान भी लग रही थी मैंने भी सोचा, "चलो चाय पी ही लेता हूँ।" लेकिन जिद के कारण चाय पीने के लिए मैं उसकी मेज पर न बैठकर दूसरी मेज पर जा बैठा। जिद ये कि, "बच्चू मुझसे चाय पीने की सोच रहे हो मैं भी तुम्हारा गुरू हूँ।" खैर! हमने चाय पी उसने अपने पैसे दिए और मैंने अपने। वह शांत भाव से पास आकर बोला, "चलिए।" मैं उसके पीछे पीछे चल पड़ा, गली मुहल्लों को पार करता हुआ। इलाका मुसलमानों का था। आजादी के दौरान हुई हिन्दु मुस्लिम मारकाट देखी अवश्य न थी पर गाँव के बड़े बुजुर्गों से उसका वीभत्स वर्णन कई बार सुन चुका था जिससे मुसलमानों के प्रति एक भय और अविश्वास सा समाया हुआ था। पर इस समय उस टोपी वाले की मदद लेना मेरी मजबूरी थी। वह मुझे खामोंशी से लिए जा रहा था और मैं मन ही मन घबरा रहा था कि यदि यहीं कहीं ये मुझे मार काट कर फेंक दे तो घरवालों को लाश भी न मिले। रास्ते में उसने यूँ ही मेरे आने की वजह पूछी मैंने संक्षिप्त उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा को अधिक बढ़ावा नहीं दिया। मैं भीतर से बेहद डरा हुआ था वह अलग बात है कि ऊपर से मैं सामान्य और गंभीर बना हुआ था। वह चुपचाप

चलता रहा और मैं शंकाओं से घिरा हुआ उसका अनुसरण करता रहा। तभी अचानक वह एक दरवाजे के सामने रूककर बोला, "मुझे यहाँ जरा काम है थोड़ा ठहरना होगा।" कहकर बिना मेरी मंशा जाने उसने जोर से कुण्डी खटखटा दी। मैं शंकित हो उठा कि बच्चू आ गई शामत। थोंड़ी देर में दरवाजा खुला और एक अजीब बदबू के भमके से मेरा सर धूम गया और साथ ही मेरी दृष्टि भी। मेरी निगाह अनायास ही भीतर चली गई तो देखा वहाँ छोटे बड़े कई चमड़े के टुकडे पूरे आँगन में बिखरे पड़े थे और वहीं लगभग पंद्रह बीस आदमी अर्धचंद्राकार वृत्त में बैठे हुए थे सभी व्यस्त थे, इतने व्यस्त की उनमें से किसी ने भी मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखा। मैंने देखा उनके हाथ बड़ी तीव्र गति से चल रहे थे। एक चमड़े पर निशान लगा रहा था, दूसरा उसे काट रहा था, तीसरा फीते तैयार कर रहा था, चौथा उनपर अँगूठा लगा रहा था और इस प्रकार अंतिम छोर तक पहुँचते पहुँचते एक अच्छी चप्पल पॉलिश सहित तैयार हो रही थी। वह चप्पल बनाने का एक छोटा सा कारखाना था। मैं दिल ही दिल में उनकी कारीगरी और तन्मयता को सराहे बिना न रह सका। जितनी देर उस व्यक्ति ने अपनी बातचीत समाप्त की मैं इस छोर से उस छोर तक निगाहें दौड़ाता रहा। हम फिर चल पड़े और अंततः हम मस्जिद पहुँच गए। मस्जिद के सामने रूककर उसने मुझसे कहा मैं अभी देखकर आता हूँ मौलवी साहब हैं या नहीं। मैं यूँ भी संकोची प्रवृत्ति का हूँ फिर दूसरों के धार्मिक स्थल में पाँव आगे बढ़ते भी नहीं इसलिए भीतर जाने का साहस नहीं हुआ। वही भीतर गया और थोडी देर में मौलवी साहब को देखकर लौट आया और मुझे भी भीतर चलने को कहा। हम एक दालान के बीच से होते हुए मस्जिद के साथ ही लगे हुए एक आँगन में पहुँचे। मौलवी साहब एक लम्बी खिचड़ी दाढ़ी वाले बड़े सौम्य बुजुर्ग थे। मैंने उन्हें अपनी तरह से अभिवादन किया। उन्होने मेरा अभिवादन स्वीकार करते हुए आने का प्रयोजन पूछा। मैंने उन्हें संक्षेप में आदि से अंत तक सारी व्यथा सुनाई साथ ही कहा मैं हार चुका हूँ मौलवी साहब, बड़ी आस लेकर आपके पास आया हूँ आपकी कृपा से यदि मेरा भाई ठीक हो गया तो बड़ा उपकार होगा। वे बोले देखो बेटा मैं खुदा नहीं हूँ सारी बात विश्वास की है जब तुम इतने भरोसे पर इतनी दूर आए हो तो खुदा तुम्हारी मुश्किलें जरूर दूर करेगा। "उन्होंने पूछा कोई बर्तन है जिसमें पानी ले जाओगे?" मैंने यह तो सोचा ही न था कि बर्तन की आवश्यकता भी पड़ सकती है यूँ ही चल पड़ा था। तभी वह (टोपी वाला) बोल पड़ा मैं देखता हूँ और तुरंत गली में निकल पड़ा। वह घर घर घूमा कई दरवाजे खटखटाने पर एक घर से डब्बा मिला पर ढक्कन नदारद था। वह फिर मुहल्ले भर में उस डब्बे का ढक्कन ढूँढ़ता फिरा कई घरों में भटका तब जाकर कहीं ढक्कन मिला। उसने ही पानी भर कर मौलवी साहब के सामने लाकर रखा। मैं बैठा रहा। मौलवी साहब ने पानी को इबादित किया और डब्बा मेरी ओर सरकाते हुए कहा, "इस पानी को दिन में तीन बार थोड़ा थोड़ा अपने बीमार भाई को पिला देना अल्लाह चाहेगा तो तुम्हारा भाई ठीक हो जाएगा।" मैं डब्बा उठाने को ही था कि उसने फिर डब्बा उठा लिया और पूछा, "कि अब कहाँ जाइएगा।" मैं अब तक उसके प्रति अपने रूखे व्यवहार और उसके अति सहयोग भरे व्यवहार के कारण एक अजीब अहसास से भर चुका था। उसमें अपनी सोच पर शर्मिंदगी भी थी अपने शक्की स्वभाव पर क्रोध और उसकी सेवा भावना पर श्रद्धा। उसके पूछने पर मैं चौंकता हुआ सा बोला "भाई बस अड्डे ही जाउँगा ताकि घर पहुँचकर जल्द से जल्द भाई का इलाज शुरू हो जाए।" मुझे लग रहा था कि मैं उड़कर घर पहुँच जाऊँ और भाई का उपचार आरंभ हो जाए। मैं किसी चमत्कार की आशा कर रहा था। मुझे अगाध विश्वास हो चला था कि मेरा भाई अवश्य ही इससे ठीक हो जाएगा। वह मेरा मार्गदर्शक बनकर चल पड़ा। हम बस अड्डे पहुँचे। बस लगी हुई थी उसने डब्बा एक खाली सीट के नीचे रख दिया और मुड़कर खुदा हाफिज कहकर जाने लगा। जैसे उसकी जिम्मेदारी पूरी हो गई हो। मैं उसकी सादगी और भलमनसाहत से पहले ही पानी पानी हो चुका था और ग्लानि के बोझ से दबे रहकर मैं उससे विदा नहीं लेना चाहता था। इसका मैं वहीं प्रायश्चित कर लेना चाहता था इसलिए इस बार मैंने पहल की और कहा "बस छूटने में अभी समय है आओ एक एक कप चाय पीते हैं।" उसने कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और चुपचाप उसी होटल की मेज पर जा बैठा इस बार मैं भी उसी मेज पर बैठा और मैंने ही दो चाय और साथ में गाजर के हलवे का आर्डर दिया। हमने चाय व हलवा खाया। उस दौरान पहली बार मैंने सहज होकर उससे हलकी फुलकी बातें की। इस बार दोंनों के पैसे मैंने चुकाए। वह उसी प्रकार निर्विकार भाव से बैठा रहा न उसने कोई विरोध किया और न ही बिल देने की औपचारिकता दिखाई। वह सामान्य ही बना रहा। तभी बस का हार्न बज उठा। मैं कृतज्ञ था और मुझे पहली बार उसका

नाम जानने की जिज्ञासा हुई। यद्यपि हम लगभग तीन चार घंटे से साथ थे मैंने उसका नाम तक न पूछा था। पूछने पर उसने अपना नाम कासिद बताया। मैंने मन ही मन कहा यथा नाम तथा गुण। क्योंकि यदि कासिद न होता तो मैं शायद अभी तक यूँ ही भटक रहा होता। उसकी मदद किसी कासिद से कम न थी जैसे कोई देवदूत हो खास मेरे लिए भेजा हुआ। मैंने उससे हाथ मिला कर तहेदिल से उसका शुक्रिया अदा करते हुए कहा, "आपने अपना बहुत समय मेरे लिए खराब किया और अपने काम का नुकसान किया। कासिद भाई आप न होते तो मुझे बहुत भटकना पड़ता।" उसने कहा, "नहीं भाई जान शुक्रिया की कोई बात नहीं भाई भी कहते हैं और तकल्लुफ भी। यह तो मेरा फर्ज था आप हमारे इलाके में किसी आस से आए थे मैं न होता कोई और आपकी मदद करता। रही बात समय खराब करने की तो आपकी मदद से बढकर मेरे लिए समय का और कोई सदुपयोग हो ही नहीं सकता था क्योंकि जो सुकून मुझे इससे मिला है वह चंद रूपये और कमा लेने से नहीं मिल सकता था।" मैं उसकी नेकदिली से अभिभूत हो गया। वह मुझे बस की सीट तक छोड़ने आया और खुदा हाफिज कहते हुए हमने एक दूसरे से विदा ली। बस के आँखों से ओझल होने तक वह देर तक हाथ हिलाता रहा।

अब मैं बस में बैठा आत्मचिंतन कर रहा था और पूरे रास्ते धटनाक्रम का विश्लेषण कर रहा था। एक सीधे सच्चे निःस्वार्थ मददगार को मैं पूरे समय शंकित दृष्टि से देखता रहा, उससे कितनी बेरूखी से पेश आया। उसे बुरा समझता रहा जबकि मन मेरा अपना कलुषित था। मैं बेहद शर्मिंदा था और अपने व्यवहार पर ग्लानि का अनुभव कर रहा था। हालाँकि उसका जिम्मेदार कचहरी का दूषित वातावरण ही था। मुझे पत्नी की बातें याद आईं जो मेरी तथाकथित ऊपरी कमाई को पसंद नहीं करती थी और मुझसे लगभग रोज ही कचहरी की नौकरी छोड़ने को कहती थी। उसका कहना था कि यहाँ का वातावरण तुम्हारा स्वभाव बदल देगा, तुम्हारी सादगी कहीं खो जाएगी। इस तरह की कमाई हमें नहीं चाहिए, ईमानदारी की कमाई में बरकत भी है और मानसिक शांति भी। इस घटना के बाद अब मुझे भी उसकी बातें सही प्रतीत हो रही थी। मैं बेहद ग्लानि का अनुभव कर रहा था कि उस अनजान इन्सान ने निस्वार्थ मेरी मदद की और जहाँ मुझे मेरे काम का समुचित वेतन मिलता है वहाँ मैं जरूरतमंदों से फालतू पैसे क्यों लेता हूँ।

इस घटना ने मेरा जीवन बदल दिया मैंने निश्चय किया कि अभी देर नहीं हुई है। मैं अपनी सादगी को खोने नहीं दूँगा और कहीं और नौकरी के लिए प्रयास करूँगा।

जल्दी ही मैंने वह नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी कर ली। मेरा भाई तो ठीक नहीं हो पाया और कालांतर में उसकी मृत्यु हो गई। लेकिन मैं आज भी उसे और उस घटनाक्रम को नहीं भूला हूँ जिसने मुझे सही मार्ग दिखा दिया और मुझसे मेरी पहचान करा दी।

रानी रही न कैकयी, अमर भई यह बात।
कौन पुरबले पापते, बन पठयो जगतात।।
बन पठयो जगतात, कन्त सुरलोक सिधारेउ।।
जेहि सुत काजै मरेउ राउ नहिं वदन निहारेउ।।
कह गिरिधर कविराय, भई यह अकथ कहानी।
जस अपजस रहि गयउ, रही नहिं कैकयी रानी।।

–गिरिधर

एक मुलाकात

श्रीमती शिवानी शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

ये कहानी जीवन चक्र की उन सामाजिक ज्वलंत समस्याओं की ओर इंगित करती है, जो सदियों से चली आ रही हैं और हम उनका पालन एक भेड़चाल की तरह कर रहे हैं। जिनका किसी के जीवन के दुखों और उसकी भावनाओं के साथ कोई विशेष सरोकार नहीं है। जो पालन की जाती है, तो सिर्फ एक जर्जर परम्परा की तरह।

छुट्टी के दिनों में मैं अपने घर जाने को आतुर होने के साथ वहाँ जल्दी पहुँचने के लिए काफी उत्सुक थी। मैं हजारीबाग बस स्टैण्ड से बस में बैठी थी और एक डेढ़ घण्टे के भीतर ही अपने घर रामगढ़ पहुँचने वाली थी, वहाँ बस स्टैण्ड पर उतरी ही थी और अपने साथ लाए बैग को लेकर ऑटो पकड़ने की कोशिश कर ही रही थी कि तभी अचानक मेरी नजर अपने कुछ ही दूरी पर खड़ी एक लड़की पर गई, जो साधारण सा सलेटी रंग का सूट पहने और दुपट्टा सिर पर से ओढ़े हुए थी। श्रृंगार विहीन चेहरा जो बहुत ही साधारण रंग रूप में पहचाना सा लगा था। उसको जब मैंने ध्यान से देखा तो याद आया अरे! ये तो मानसी है, जो कुछ साल पहले मेरे साथ कॉलेज में पढ़ा करती थी। मैं उसके नजदीक गई और उसके कन्धे को थपथपाकर धीरे से हल्की सी मुस्कुराहट के साथ हैलो– कहा। उसने घूम कर देखा और बदले में हैलो का जवाब हैलो से दिया। फिर मैंने कहा, "मानसी"? "एम आई राइट?" उसने कहा, "हाँ, और तुम?" कैसी हो तुम ? बहुत दिनों के बाद मिल रहे हैं, शायद, कॉलेज के बाद। " मैंने उत्सुकतावश उससे दो प्रश्न कर दिए।

वह बोली "हाँ, बिल्कुल और तुम इला?"
"हाँ!" मैने मुस्कुराहट के साथ जवाब दिया।

मैंने पूछा, कैसी चल रही है लाइफ? तुम्हारी शादी तो हम सब सहेलियों से पहले हो गई थी। कैसा चल रहा है वैवाहिक जीवन ? तुम्हारे पति, और परिवार में सब कैसे हैं? इतना सुन कर वो कुछ असहज सा महसूस कर रही थी क्योंकि चिंता की कुछ रेखाएं उसके चेहरे पर दिखने लगी थीं। उसके हाव–भाव देखकर मुझे अपने आप में अजीब सा महसूस होने लगा था और सोच रही थी, मैंने क्यों पूछा, क्या जरूरत थी मुझे ये सब पूछने की? पर इतने लम्बे अन्तराल के बाद मिलने वाली सहेली से यही तो पूछ सकती थी, और क्या पूछती?

कुछ औपचारिक बातों के पश्चात हम पास ही खड़े एक चाय के स्टॉल पर लगे बैंच पर बैठ गए ताकि बातों का सिलसिला कुछ आगे बढ़े। तभी मानसी की आवाज ने हमारे बीच पसरी खामोशी को तोड़ा। वह जबरदस्ती मुस्कराने की कोशिश करते हुए बोली "बी.ए. के फर्स्ट ईयर में मेरी शादी हो गई थी और मैंने कॉलेज छोड़ दिया था। उस समय के हिसाब से जो भी अच्छा लड़का माँ बाप ढूंढ सकते थे ढूंढा और मैं शादी के बाद अपनी दुनिया में खो गई थी। घर परिवार, जमीन जायदाद सभी कुछ अच्छा था। पति भी सर्वगुणसम्पन्न। परिवार भी ज्यादा बड़ा नहीं था, दो भाई और माता पिता। परन्तु मेरी किस्मत ही अच्छी नहीं निकली। शादी को अभी तीन महीने ही हुए थे कि मेरे पति और उनके बड़े भाई के बीच किसी सांझी (कम्बाइंड) जमीन को लेकर वाद–विवाद उत्पन्न हो गया। पहले बातों में फिर घर में भी वाद–विवाद ने पैर पसार लिए। परिवार वालों ने बीच–बचाव की काफी कोशिश की परन्तु बात सुलझने की बजाय और ज्यादा बढ़ गई। मेरे पति सीधे स्वाभाव के आदमी थे, ज्यादा दुनियादारी के हेर फेर की समझ नहीं थी उनमें, जबकि उनके बड़े भाई तेज–तर्रार और हर कीमत पर अपना काम निकालने वालों में से थे। दुनिया ऐसी ही है इला, हर कोई अपना स्वार्थ देखता है, किसी की तकलीफ या दर्द का रिश्ता, जो पहले सा हुआ करता था आपसी संबंधों में वो अब दम तोड़ चुका है।" मानसी की बातों में अब दर्द और भी साफ दिखाई देने लगा था।

मानसी आपबीती सुना रही थी और उसके चेहरे पर घृणा और कटुता के भाव साफ दिखाई दे रहे थे। मानसी के शब्दों में : एक दिन वो हुआ जिसकी कल्पना शायद किसी ने स्वप्न में भी नहीं की थी, मेरे पति उस दिन सुबह–सुबह रोज की तरह फसल देखने के लिए खेत पर चक्कर लगाने जा रहे थे।

उन्हें घर से निकले हुए अभी आधा पौना घंटा ही हुआ था कि अचानक पड़ोस का लड़का दौड़ता हुआ घर में घुसा और मौसी–मौसी कहकर मेरी सास को पुकारने लगा। वह एक सांस में पुकार रहा था, जिससे उसकी सांस भी बुरी तरह फूल रही थी। मैं भी आवाज सुनकर बाहर आई, तभी वो बता रहा था कि मौसी खेतों में दोनों भाईयों का झगड़ा हो गया और बात मारपीट पर उतर आई और बड़े भइया ने गुस्से में फड़वा उठा कर छुटके भइया के सिर पर दे मारा, जिससे बहुत खून बह निकला और शायद छुटके भइया की हालत नाजुक है। इतना सुनते ही मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। मैं बहोशी सी महसूस करने लगी और मेरे मुंह से निकला हे! भगवान ये क्या हो गया और गिर पड़ी।

इतना कहते ही मानसी की सूनी–सूनी आंखों से आंसू बह निकले। वातावरण बहुत गमगीन हो गया था। मैंने अपना हाथ उसके कंधे पर रखा और चाय वाले को एक गिलास पानी लाने को कहा। तभी एक छोटा सा लड़का कांच के गिलास में पानी लेकर आया। मैंने उठाकर मानसी की तरफ पानी का गिलास बढ़ाया और उसे दो कप चाय बनाने के लिए भी कह दिया।

मानसी कुछ संयत हुई, शायद जीवन ने अब उसे अपने को संयत रखना तो सिखा दिया था। फिर वह आगे बताने लगी, "दो दिन तक अस्पताल में जिन्दगी और मौत के बीच झूलते–झूलते तीसरे दिन उन्होंने अपनी सांसे छोड़ दीं। इसी के साथ बिखर गई मेरी खुशियाँ मेरी जिन्दगी, मेरे सपने।" वो धीमी–धीमी सुबकियों के साथ अपने आँसुओं से अपने दर्द को बहाने लगी।

यह सुनकर भीतर ही भीतर मैं इतना क्षोभ महसूस कर रही थी कि जैसे किसी ने मुझे अंधेरी कोठरी में डाल दिया हो। इसी बीच दो कप चाय भी आ गई। मैं और मानसी अपने आंसुओं को पोंछते हुए चाय सिप करने लगे। बातों का सिलसिला आगे जारी रखते हुए मैंने पूछा, "आजकल क्या कर रही हो मानसी ?" मैं शायद अब और उसकी गुजरी जिन्दगी के बारे में कुछ और नहीं जानना या पूछना चाहती थी। क्योंकि अब मुझ में इतनी हिम्मत नहीं थी कि मैं उसकी दुख भरी दास्तान सुन पाती, इसलिए मैंने यह सवाल किया।

अब वह काफी संयत दिख रही थी किंतु थी खामोश। खामोशी तोड़ते हुए वह बोली पति की मौत के बाद मैं मायके आ गई। अब तुम तो जानती ही हो, कि हमारा परिवार बहुत ही धार्मिक प्रवृत्तियों से जुड़ा है इसीलिए माधव आश्रम में ही कुछ लिखा–पढ़ी का काम देख लेती हूँ और आश्रम की सेवा एवं पूजा पाठ में समय व्यतीत करती हूँ।

मैंने कहा, पर मानसी उस समय तो तुम्हारी उम्र बहुत कम थी। क्या तुम्हारे माता पिता ने तुम्हारी दूसरी शादी के बारे में नहीं सोचा? यह सुनकर उसने एक ठण्डी सांस भरी और कहा, "नहीं। तू तो जानती ही है कि हमारे परिवार वाले आज भी बड़ी धार्मिक प्रवृत्तियों के हैं और धार्मिक कर्मकाण्डों के सिवा और कुछ नहीं जानते, इसलिए इस बात का तो सवाल ही नहीं उठता। वैसे भी हमारे समाज में पति के जाने के बाद सभी कुछ बदल जाता है। इला! जो चला जाता है, वो तो तर जाता है परन्तु अपने पीछे छोड़ जाता है सिर्फ कुछ यादें और एक जीती जागती लाश।" बात को पूरी करते–करते उसने कहा, "अब चलती हूँ, देर हो जाएगी, आज रविवार है ना, इसीलिए महाराज का प्रवचन है, नहीं तो देर हो जाएगी। आज तुमसे बातें कर के बहुत अच्छा लगा, महसूस हुआ, जैसे गुजरे वक्त का कोई सुहाना झोंका इस निर्जन जीवन को छू गया है।" हम दोनों बैंच से उठकर वापस सड़क के किनारे आ गए। तभी एक ऑटो आया और मैं अपना बैग लेकर उसमें बैठ गई। मैंने हाथ हिला कर उसे बाय किया उसने प्रतिक्रिया तो की लेकिन एक कशिश उसके चेहरे पर साफ पढ़ी जा सकती थी। मैं घर पहुँचते–पहुँचते मानसी के ही बारे में सोचती रही। क्या उसका यही जीवन रहेगा, अकेला, बेरंग ? क्या धर्म की दीवार के साथ टेक लगाकर ये अपना पूरा जीवन बिता देगी ? क्या लाभ ऐसे धर्म का जो किसी की जिन्दगी को एक दया का पात्र बना दे और धकेल दे उसे खोखले धार्मिक आडम्बरों के अंबार में, और भुला दे, उसकी पहचान, खुशियां, उसका व्यक्तित्व, उनकी भावनाएं। इसी कशमकश में कब घर पहुँच गई पता ही न चला। आज भी बार–बार मानसी का चेहरा मेरी आँखों के सामने घूमता है, उसकी आँखें जो इस दर्द और सूनेपन का अहसास करा रही थी। जैसे कह रही हों–देख लो! मैं जिन्दा तो हूँ। लेकिन जिन्दगी मेरे पास नही है।

जीवन एक कैनवास

श्रीमती शिवानी शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

जीवन एक परिमापित परिधि नहीं है, जिसको आप सटीक नाप में परिबन्ध कर सकें यह एक निरन्तर चलने वाली धारा है जिसका कार्य मात्र अपने गन्तव्य तक बहना और सिर्फ बहना ही है। यह एक अव्यक्त वायु का झोंका है, जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्पर्श से प्राणवन्त करता है और इसके बिना व्यक्ति का कोई औचित्य ही नही हैं।

यदि हम अपने जीवन को तटस्थ हो कर देखें तो लगता है कि जैसे जीवन एक कैनवास है जिस पर हमारा कोई अधिकार ही नहीं हैं। हमारी नियति यही है कि हम उसमें भरे प्रत्येक रंग में सिर्फ समयानुसार चित्रकार के ब्रुश की भांति केवल डूबे रहें और एक रंग से लिप्त होने के पश्चात पुनः दूसरे रंग में डूबें। यह चित्रकार सभी काम कुशलता से करता रहता है और हमें कुछ समझने का अवसर नहीं देता क्योंकि कैनवास उसके लिए भावहीन होता है। वह चित्रकारी तो करता है और उन रंगों को रंगने में, मिश्रित करने में उसकी उड़ान अपनी ही कल्पनाओं की होती है। और कैनवास की ? वो तो एक मात्र उसके पुते रंगों में ही खोकर उसमें मिल जाती है और दिखाती रहती है हमेशा। इस प्रकार मानव–चरित्र एक चित्र मात्र है।

मानव चरित्र के पहलुओं का रहस्य ही जीवन का मूल तत्व है। किन्ही दो व्यक्तियों की सूरत नहीं मिलती। सब मनुष्यों के हाथ पाँव आँखें इत्यादि अंग होतें हैं पर इतनी समानता रहने पर भी विभिन्नता मौजूद रहती है इसी भांति सभी मनुष्यों के चरित्र में बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताऐं होती हैं। यही विभिन्नताएं चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता–अभिन्नतत्व में भी भिन्नतत्व और भिन्नतत्व मे अभिन्नतत्व का प्रतिपादन करती हैं।

संतान प्रेम प्राणी चरित्र का एक व्यापक गुण है। ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जिसे अपनी संतान प्यारी न हो। लेकिन इस संतान प्रेम की मात्राऐं है, इसके भेद हैं। कोई तो संतान के लिए मर मिटता है उसके लिए कुछ छोड़ जाने के लिए स्वयं नाना प्रकार के कष्ट झेलता है। लेकिन अनुचित ढंग से धन–संचय नहीं करता। उसे शंका होती है कि कहीं इसका परिणाम हमारी संतान के लिए बुरा न हो। दूसरी ओर कोई औचित्य का जरा भी विचार नहीं करता और जिस तरह भी हो धन संचय करना ही ध्येय समझता है, चाहे दूसरों का कितना भी अहित क्यों न करना पड़े। वह संतान प्रेम पर अपनी आत्मा का भी बलिदान कर देता है। तीसरी ओर एक संतान प्रेम है, जहाँ संतान का चरित्र प्रधान कारण होता है। जब पिता पुत्र का कुचरित्र देखकर उससे उदासीन हो जाता है और समय आने पर उसके लिए कुछ करना व्यर्थ समझता है। संतान प्रेम की एक दशा यह भी है जब पिता पुत्र को कुमार्ग पर चलते देखकर उसका घातक शत्रु हो जाता है। और यह भी संतान प्रेम है जब पिता के लिए पुत्र घी का लड्डू होता है जिसका टेढ़ापन उसके स्वाद में बाधक नहीं होता। एक ऐसा संतान प्रेम भी देखने में आता जहां शराबी और जुआरी पिता पुत्र प्रेम के वश में होकर सारी बुरी आदतें छोड़ देता है। इसी प्रकार अन्य मानवीय गुणों के और भी मापदण्ड हैं।

यदि हम स्त्री पक्ष की ओर दृष्टि डालें तो जितनी संवेदना, प्रेम, त्याग आदि आंतरिक मानवीय गुण विधाता ने स्त्री चरित्र में दिए वही उसके एवं उससे संबंधित रिश्तों को परिपूर्णता प्रदान करता है। स्त्री अपने सभी रिश्तों को लेकर सम्पूर्ण समर्पण की भावना को अपने चारित्रिक अवलोकन में डालती है। उसके लिए उसका प्रत्येक रिश्ता पहले से जुड़े रिश्तों से अधिक महत्वपूर्ण एवं सुदृढ़ होता है। यदि हम संक्षेप में भी उसे माता के स्वरूप में अवलोकित करें तो स्त्री अपने बालक को हृदय से लगाकर जितनी गम्भीर और निर्भर है, उतनी और किसी अवस्था में नहीं। वह अपनी संतान की रक्षा के समय जैसी उग्र चण्डी है वैसी और किसी स्थिति में नहीं। परन्तु हमारे पुरुष प्रधान समाज की यह एक विडम्बना ही है कि समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे नारीत्व, पत्नीत्व, मातृत्व के साथ स्वीकार नहीं करता। यह उनकी

कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को प्रतिष्ठित कर पूजता है। युग युगांतर से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं बल्कि सहनशीलता के लिए ही सराहना करता आ रहा है।

इस प्रकार जीवन समाज के बदलते हुए विचारों एवं निरंतर उत्पन्न होते रहने वाली जीवनचर्या की यथार्थ परिस्थितिथियों के संघर्षण से उदभूत है। यह व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्धों का एक संश्लिष्ट समीकरण है। यह एक ऐसा कैनवास है जिस पर बिखरे रंग अपने अनिर्वचनीय वैविध्य और अकल्पनीय गहनता के कारण आदिकाल से ही समाज, दर्शन और धर्म के निरंतर चिंतन का विषय रहे हैं। क्योंकि जीवन से ही तो इन तीनों का उद्गम है।

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

अच्छा सा कोई मौसम, तन्हा सा कोई आलम
हर वक्त का रोना तो, बेकार का रोना है।

बरसात का बादल तो दीवाना है क्या जाने
किस राह से बचना है, किस छत को भिगोना है।

ग़म हो या खुशी दोनो कुछ देर के साथी हैं
फिर रस्ता ही रस्ता है, हँसना है न रोना है।

यह वक्त जो मेरा है, यह वक्त जो तेरा है
हर गाम पे पहरा है, फिर भी इसे खोना है।

आवारामिज़ाजी ने फैला दिया आंगन को
आकाश की चादर है, धरती का बिछौना है।

–निदा फ़ाज़ली

अधिकार

श्री रमाकान्त मिश्र एवं श्रीमती रेखा मिश्र
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

बाहर झमाझम पानी बरस रहा था। लेकिन मैं वर्षा की इन शीतल फुहारों का, जो इतनी भीषण गर्मी के उपरांत आई थी, कुछ भी आनंद नहीं ले पा रही थी। मेरे अंतर्मन में गहन अवसाद की घटाटोप थी। मैंने सूनी दृष्टि से हवेली की पुरानी मगर ठोस दीवारों को जैसे सहम कर देखा। कितना कुछ जुड़ा था इनके साथ, सुख के क्षण–दुःख की घड़ियां, हर्ष का उल्लास–वेदना की टीस, अभिसार की उत्कट सिसकारियां–वैधव्य की पराजित सिसकियां, कितना कुछ। सब जैसे रेत का महल हो, ओस की बूंद हो, सिनेमा के चित्र हों या रात्रि के स्वप्न। कुछ भी तो नहीं रहा लेकिन इन सबकी स्मृति शेष है और चिता तक पहुँचने तक रहेगी। और ये हवेली, ये तो जैसे साक्षी हो सबका, जैसे विश्वास दिलाती हो कि हां ये सब सच है, समय के मुकदमे की सबसे विश्वस्त गवाह।

लेकिन नहीं, इतना ही तो नहीं थी हवेली। ये तो किसी अंतरंग सहेली से भी अधिक अंतरंग साथी थी। रात–दिन की अटल सखी। ऐसी सखी जो न अभिसार की निर्लज्जता में दूर हुई और न प्रसव की नग्नता में। जो न सौभाग्य के ऐश्वर्य में दूर रही न वैधव्य की रिक्तता में।

बल्कि सत्य तो यह था कि आज ये मेरे होने का प्रमाण थी।

लेकिन दिव्य इसे, उसके जीवन के इस अभिन्न अंश को, अनावश्यक मानकर बेच देना चाहता था। उसके सारे तर्क, उसकी सारी भावनायें पुत्र के अर्थशास्त्र के सम्मुख व्यर्थ थीं।

अब बचा भी क्या था, हवेली और उससे जुड़ी अस्सी बीघे जमीन के सिवाय। सब कुछ दिव्य पहले ही बेच चुका था।

कई विचार मन में उठे। जिनमें आत्महत्या का भी एक विचार था। लेकिन जैसे उसने खुद को धिक्कारा। तुम इतनी कायर कैसे हो गई?

सारी रात वर्षा होती रही और मैं विचारों, संवेदनाओं के झंझावात में उलझी रही। प्रातः के मध्यम उजास ने मुझे कुछ भी प्रेरणा न दी। मैं संज्ञाशून्य सी बैठी रही। हवेली में जाग हुई।

दिव्य के साथ रजनी आई। उसने मुझे स्नान करने का सुझाव दिया। मैं यंत्रवत नित्यकर्म में लग गई। दस बजे चलना था। वर्षा लगातार हो रही थी। मैं तैयार हो गई। नाश्ता करने का मन नहीं हुआ, केवल दो घूंट चाय पी।

मोटर दस बजे से पहले ही निकल पड़ी। बहू, बेटे के साथ अगली सीट पर थी। मैं पीछे एक कोने में चुपचाप और बेहद शांत बैठी हुई थी। मुझे उन बकरों की याद आई जो बलि चढ़ाने को ले जाये जाते थे। एकाएक उनकी चेष्टायें शांत हो जाती थीं जैसे मृत्यु के सम्मोहन ने वशीभूत कर लिया हो।

कचहरी में वर्षा के बावजूद बहुत भीड़ थी। एडवोकेट देवेंद्र प्रसाद ने अपने चेंबर में मेरा स्वागत किया। मैंने हाथ जोड़ कर प्रत्युत्तर दिया। देवेंद्र प्रसाद मेरे पति के अभिन्न मित्र राजेंद्र प्रसाद के छोटे भाई थे। इस नाते वे मेरा अत्यंत सम्मान करते थे।

"तो अब तो आप मुम्बई में ही रहेंगी?"

मैने सूनी नजरों से देवेंद्र को देखा। बोली कुछ नहीं।

"अच्छा भी है। वहां बेटे–बहू की सेवा मिलेगी। फिर यहां सुविधायें भी तो कुछ नहीं है। अगर एक सिर दर्द की दवा लेनी हो तो 20 कि.मी. जाइये।"

मैं कुछ न बोली।

"हां, लेकिन एक बात है। आज अगर भाई साहब जीवित होते तो वे हवेली कदापि न बिकने देते।"

बात मेरे कलेजे में तीर सी लगी। लेकिन मैं बोली फिर भी कुछ नहीं।

"अरे रामसमुझ वो धनवंती देवी वाले केस को तैयार कर दिया?" देवेन्द्र अपने मुंशी से बोले।

"हां, साहब।"

"ठीक है उसकी फाइल मुझे दे दो। उसकी पैरवी में मैं जाऊँगा।"

"आप?" रामसमुझ आश्चर्य से बोला।

"हां, मैं।" देवेन्द्र बोले। फिर मुझसे मुखातिब हुए, "भाभी जी, आपने सेठ जमुनादास का नाम तो सुना होगा?"

मैंने दृष्टि उठाकर एक बार देखा भर, बोली कुछ नहीं। सेठ जमुनादास के नाम से मैं परिचित थी।

"...उनकी मौत के बाद लड़कों ने बंटवारा कर दिया। एक लड़के ने दुकान संभाल ली दूसरे ने दुकान के अपने हिस्से के एवज में पैसा लेकर दिल्ली में व्यवसाय जमा लिया।" देवेन्द्र फाइल पर सरसरी निगाह भी डाल रहे थे और बोलते जा रहे थे, "सेठजी का पुराना घर मध्यवर्गीय इलाके में था, लेकिन बहू रहना चाहती थी नये शहर की पॉश कॉलोनी में। सो बेटे ने मकान बेच दिया। अब कोई साल भर हुआ बेटे–बहू ने बुढ़िया को घर से निकाल दिया। यहां कोई आश्रम–वाश्रम तो है नहीं, बेचारी दर–दर की ठोकरें खाती रही। कभी इस दुकान के आगे पड़कर सो जाती, तो कभी उस दुकान के। जब मुझे पता चला तो मैंने एक मकान का प्रबंध कर दिया। मैंने कहा कि पुत्रों पर मुकदमा करो, भरण–पोषण की मांग करो। तो बेचारी कहने लगी भइया तुम जिस दिन कहो तुम्हारे घर से चली जाऊँ लेकिन जिन्हें खून देकर सींचा है उनपर मुकदमा नहीं करूँगी। इस पर मैं चुप रह गया। लेकिन देखिये तो इन नमकहरामों की करतूत। क्या कहने लगे–कि बुढ़िया का चरित्र ठीक नहीं। उसके जवानी में तो कई यार थे ही अब भी हैं जो उसको रख रहे हैं। इसीलिये उसको घर से निकाल दिया।"

मैं अविश्वास से सुन रही थी।

"इतने पर भी जब वे मुकदमे को राजी न हुई तो मैंने कहा भाभी आप को अपने स्वर्गवासी पति के सम्मान का भी ख्याल नहीं। बड़ी मुश्किल से उनको राजी किया अब न सिर्फ भरण–पोषण बल्कि मानहानि का भी दावा किया है। बच्चा को आटे दाल का भाव पता चल रहा है।" देवेन्द्र कुछ क्षण रूके। फिर उदास स्वर में बोले। "आज कल कुछ पता नहीं चलता, अपनी औलाद ही दुश्मन हो जाती है। अपने हाथ खुद नहीं काट लेने चाहिये। जिनको अंगुली पकड़ कर चलना सिखाया हो उनका मोहताज नहीं होना चाहिये।"

"आप ये क्या उल्टी–सीधी बात कर रहे हैं।" बहू ने क्रुद्ध होकर कहा।

"मैं तो जीवन के रंग बता रहा हूँ।"

"आप हमारा अपमान कर रहे हैं।"

"तुम्हें तो मैं जानता भी नहीं। अलबत्ता भाभी श्री ने न जाने कितनी बार खाना खिलाया होगा। मुझे पढ़ाने लिखाने और यहां स्थापित करने में भाई श्री का मेरे बड़े भाई से कम योगदान नहीं रहा।" देवेंद्र बोले।

बहू अगर न बोलती तो संभवतः सहानुभूति के भाव ज्वार से मैं बाहर ही न आती। मुझे स्व. ओमप्रकाश शर्मा के उपन्यास की एक पंक्ति स्मरण हो आई। बच्चों को प्यार करें, ये समझ आता है, बच्चों से डरने का क्या कारण हो सकता है। संतान से सेवा व भरण–पोषण प्राप्त करना विधिक ही नहीं नैतिक अधिकार भी है। पुत्र की आवश्यकताओं के लिये प्राणोत्सर्ग भी किया जा सकता है किंतु पुत्र को सुख साधन जुटाने के लिये स्मृतियों का नाश कहां तक उचित है? मैं पति के अनेक जीवंत संस्मरणों में डूबने लगी...

...उस रात तीन बजे महफिल खत्म हुई थी। मैं न सोई थी न जागी थी। जब वे आये तो मैं जाग रही थी। पति का आमंत्रित करता हाथ मैंने क्रोध से झिटक दिया था। पति अवश्य कुछ चकित हुये थे। मैंने कभी भी उनके काम निमंत्रण को अस्वीकार नहीं किया था।

"नाराज हो ?"

मैं कुछ न बोली थी।

"हाँ, कुछ देर तो जरूर हो गई।"

मैं किलस गई। कुछ देर? लेकिन बोली कुछ नहीं।

"देखो, तुम हमारे लिये बहुत कुछ सहती हो। यह भी सहन कर लो। हम अपना स्वभाव न बदल पायेंगे। सच तो यह है कि तुम्हारी अरुचि जान कर हमें अब इनका पूरा आनंद भी नहीं आता। लेकिन हम अपने जीते जी इन्हें मना नहीं कर पायेंगे।"

मैं फिर भी चुप रही थी।

"साथी, ये मेले भी हम तक ही हैं। तुम तरस जाओगी, हम न रहेंगे तो ये मेले भी न रहेंगे।"

"क्या जो मुंह में आये कह देते हो।" मैं बोल पड़ी थी।

"हमारी खातिर इन्हें भी सहन कर लो।" वे हंस कर बोले थे।

कितना सच कहा था उन्होने! उनके जाते ही दुनिया ही उजड़ गई, मेले क्या? इस पुरानी पुश्तैनी हवेली में अब इंसानों को तरस जाती हूँ मैं!

...बारिश के बाद का जमाना था, बाहर बाग में उनके साथ चहल कदमी कर रही थी। बारिश से धुली–धुली हवेली को वे मुग्ध होकर निहार रहे थे।

"क्या देख रहे हैं?"

"अपने पुरखों को।"

"पुरखों को?"

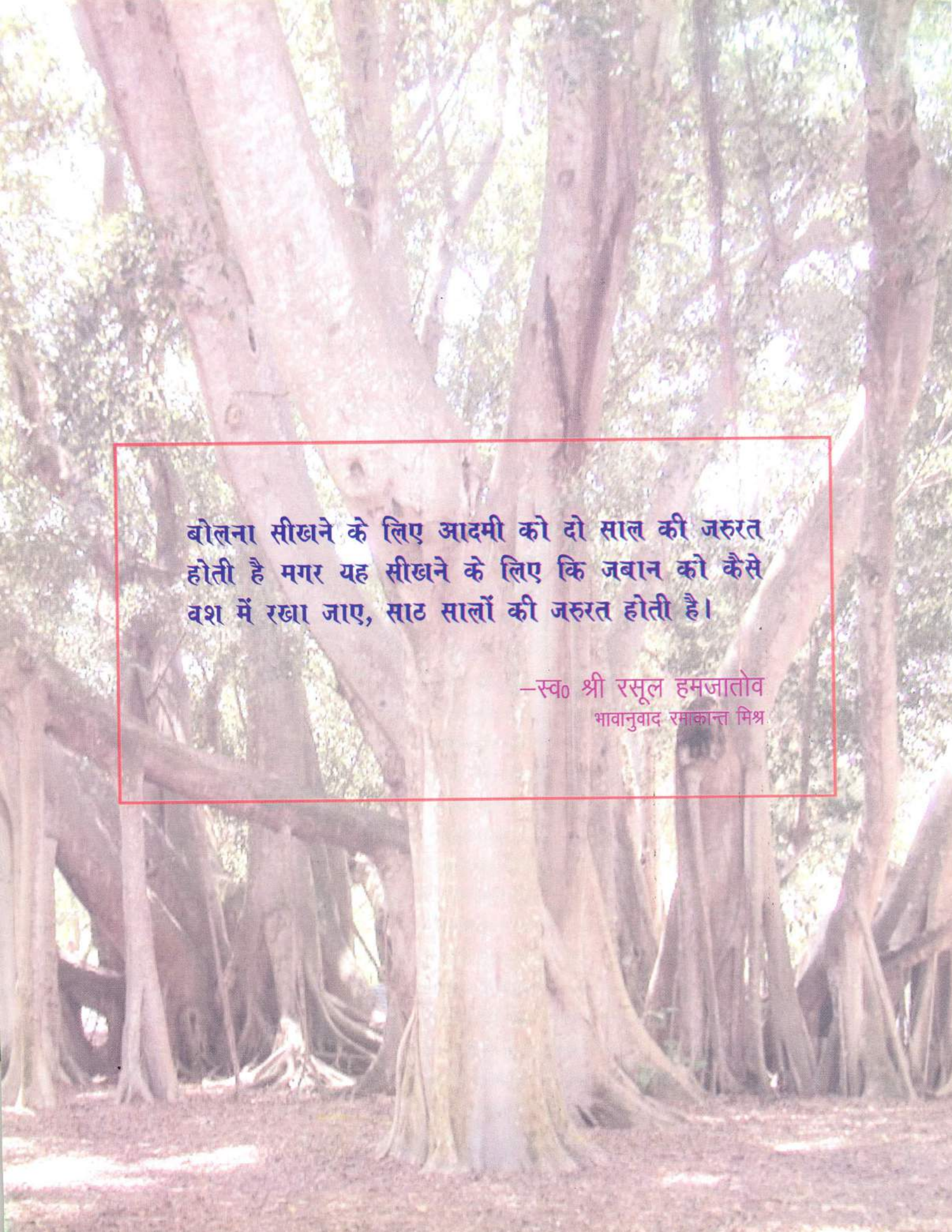

बोलना सीखने के लिए आदमी को दो साल की जरुरत होती है मगर यह सीखने के लिए कि जबान को कैसे वश में रखा जाए, साठ सालों की जरुरत होती है।

—स्व० श्री रसूल हमजातोव

भावानुवाद रमाकान्त मिश्र

लेखक परिचय

नाम एवं पता	फोटो

नाम एवं पता	फोटो

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

डॉ. रवीन्द्र कुमार उप महानिदेशक विस्तार निदेशालय	
श्री राजपाल सिंह सहायक महानिदेशक मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय	
डॉ. राजीव पाण्डेय वैज्ञानिक–डी विस्तार निदेशालय	
श्री रमाकान्त मिश्र अनुसन्धान अधिकारी मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय	
श्रीमती गीता वोहरा निजी सचिव मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग विस्तार निदेशालय	
श्री छत्रपाल सिंह सैनी उच्च श्रेणी लिपिक प्रशासन निदेशालय	

श्री एम.पी. सिंह सहायक महानिदेशक अनुश्रवण एवं मूल्यांकन प्रभाग अनुसन्धान निदेशालय	
श्री विजयराज सिंह रावत वैज्ञानिक–ई बी.सी.सी. प्रभाग	
डॉ. आर. एस. रावत अनुसन्धान अधिकारी बी.सी.सी. प्रभाग	
श्रीमती अर्चना जोशी निजी सचिव विस्तार प्रभाग विस्तार निदेशालय	
श्री अनूप चौहान अनुसन्धान सहायक–प्रथम सांख्यिकी प्रभाग विस्तार निदेशालय	
श्री प्रताप सिंह बिष्ट नियंत्रक (से.नि.)	

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून			
श्रीमती जयश्री आरडे चौहान प्रमुख विस्तार प्रभाग		**डॉ. लोखोपूनी** प्रमुख अकाष्ठ वन उपज प्रभाग	
डॉ. एन.एस.के. हर्ष वैज्ञानिक–एफ एवं प्रमुख वन व्याधि प्रभाग		**डॉ. सतेन्द्र देव शर्मा** वैज्ञानिक–ई फॉरेस्ट इनफॉरमेटिक्स प्रभाग	
डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी रावत वैज्ञानिक–ई वन पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण प्रभाग		**श्री वी.के वार्ष्णेय** वैज्ञानिकी–ई रसायन प्रभाग	
श्री अमित पाण्डेय वैज्ञानिकी–ई वन व्याधि प्रभाग		**डॉ. ए.के. शर्मा** वैज्ञानिक–डी अकाष्ठ वन उपज प्रभाग	
श्री एम.जेड. सिंहसन उप वन संरक्षक अकाष्ठ वन उपज प्रभाग		**डॉ. चरण सिंह** वैज्ञानिक–सी विस्तार प्रभाग	
डॉ. के.पी. सिंह वैज्ञानिक–बी वन कीट विज्ञान प्रभाग		**श्री वी.के. धवन** अनुसन्धान अधिकारी संवर्धन प्रभाग	

नाम एवं पता	फोटो
श्री सुरेश चन्द्र अनुसन्धान अधिकारी वन व्याधि प्रभाग	
श्री अजय गुलाटी अनुसन्धान सहायक–प्रथम विस्तार प्रभाग	
श्री तिलकराज कक्कड़ फोटो आर्टिस्ट	
श्री प्रशांत शर्मा अवर श्रेणी लिपिक फॉरेस्ट इंर्फोमेटिक्स प्रभाग	
कुमारी मोनिका त्यागी फॉरेस्ट इंर्फोमेटिक्स प्रभाग	
श्री सचिन कुमार जे.आर.एफ. वन कीट विज्ञान प्रभाग	

नाम एवं पता	फोटो
श्री एस.आर. बलौच अनुसन्धान अधिकारी अकाष्ठ वन उपज प्रभाग	
श्रीमती अफशां जैदी अनुसन्धान सहायक–द्वितीय वन संवर्धन प्रभाग	
श्रीमती रोशनी चौहान अनुसन्धान सहायक–द्वितीय वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग	
श्रीमती शिवानी शर्मा कम्प्यूटर ऑपरेटर संसाधन सर्वेक्षण एवं प्रबंध प्रभाग	
श्री विवेक त्यागी जे.आर.एफ. वन कीट विज्ञान प्रभाग	
श्री रघू रंजन राय विद्यार्थी (सम)विश्वविद्यालय	

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
डॉ. टी. एस. राठौड़ निदेशक		**डॉ. प्रदीप चौधरी** प्रमुख वन संवर्द्धन प्रभाग	
डॉ. डी . के. मिश्रा वैज्ञानिक–ई वन संवर्धन प्रभाग		**डॉ. रंजना आर्या** वैज्ञानिक–ई एवं प्रमुख अकाष्ठ वनोपज प्रभाग	
डॉ. आभा रानी वैज्ञानिक–डी वन पारिस्थिति प्रभाग		**डॉ. माला राठौड़** वैज्ञानिक–डी अकाष्ठ वनोपज प्रभाग	
श्री कैलाश चन्द गुप्ता हिंदी अधिकारी		**श्रीमती अनुराधा भाटी** पुस्तकालयाध्यक्ष	
श्रीमती संगीता त्रिपाठी अनुसन्धान अधिकारी अकाष्ठ वनोपज प्रभाग		**डॉ मीता शर्मा** अनुसन्धान अधिकारी	
श्री एन.के० बोहरा अनुसन्धान अधिकारी वन संवर्धन प्रभाग		**श्री आर. आर. लोहरा** अनुसन्धान सहायक–प्रथम अकाष्ठ वनोपज प्रभाग	

नाम एवं पता	फोटो

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

श्री एस. एल. मीणा अनुसन्धान सहायक–प्रथम वन संवर्धन प्रभाग	
श्री अमीन उल्लाह खान अनुसन्धान सहायक–द्वितीय वन पारिस्थितिकी प्रभाग	
श्री जय प्रकाश दाधीच अनुसन्धान सहायक–द्वितीय	
श्री आर. के. मीणा अनुसन्धान सहायक–द्वितीय अकाष्ठ वनोपज प्रभाग	
श्री मनीष मेहरा क्षेत्र सहायक वन संवर्द्धन प्रभाग	

नाम एवं पता	फोटो

उष्णकटिबन्धीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

डॉ. असीम कुमार मण्डल निदेशक	
श्री संजय पौनीकर अनुसंधान सहायक–प्रथम वन कीट प्रभाग	
कुमारी नीलू विश्वकर्मा तकनीकी सहायक कृषि वानिकी प्रभाग	

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर

डॉ. एस. सी जोशी निदेशक	

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट			
डॉ. ताराचन्द प्रभागाध्यक्ष जैवप्रौद्योगिकी एवं आनुवंशिकी प्रभाग		**श्री आलोक यादव** वैज्ञानिक–बी पारिस्थितिकी एवं जैवविविधता प्रभाग	
डॉ. पी. के. दास वैज्ञानिक–बी वन संवर्धन एवं वन प्रबंधन प्रभाग		**डॉ. वनीत गिस्टु** वैज्ञानिक–बी पारिस्थितिकी एवं जैवविविधता प्रभाग	
श्री शंकर शर्मा हिन्दी अनुवादक			
हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला			
श्री मोहिन्द्र पाल निदेशक		**कुमारी शिल्पा** अनुसन्धान सहायक–द्वितीय पारिस्थितिकी एवं जैव विविधता प्रभाग	
श्री दुष्यन्त कुमार अनुसन्धान सहायक–द्वितीय पारिस्थितिकी एवं जैव विविधता प्रभाग			

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं और उनसे सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् और उसके संस्थानों की नीति, कार्य या विचार को न तो प्रतिबिम्बित करती है और न ही उसका प्रतिनिधित्व करती है। प्रकाशन का उद्देश्य राजभाषा का प्रसार व परिषद् तथा संस्थानों के कर्मियों की सृजनशीलता को बढ़ावा देना है।

अभिलाषा

मन समर्पित, तन समर्पित
और यह जीवन समर्पित
चाहता हूं देश की धरती तुझे कुछ और भी दूं

मां तुम्हारा ऋण बहुत है, मैं अकिंचन
किन्तु इतना कर रहा फिर भी निवेदन
थाल में लाऊं सजा कर भाल जब भी
कर दया स्वीकार लेना वह समर्पण

गान अर्पित, प्राण अर्पित
रक्त का कण–कण समर्पित
चाहता हूं देश की धरती तुझे कुछ और भी दूं

मांज दो तलवार को, लाओ न देरी
बांध दो कस कर कमर पर ढाल मेरी
भाल पर मल दो चरण की धूल थोड़ी
शीश पर आशीश की छाया घनेरी

स्वप्न अर्पित, प्रश्न अर्पित
आयु का क्षण–क्षण समर्पित
चाहता हूं देश की धरती तुझे कुछ और भी दूं

–श्री राम अवतार त्यागी

मुद्रक - अवि प्रिन्टर्स, २१ ई.सी. रोड, देहरादून, फोन - 0135-2659970

प्रकाशित

मीडिया एवं प्रकाशन प्रभाग, विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद)

डाकघर-न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248 006

भारत